कोन्स्तान्तिन फ़ेदिन

आग्नेय वर्ष

(दो भागों में)
भाग २

राजस्थान साहित्य ... संस्थान
पं. सं. 519
क्रमांक
3-1-84
अजमेर

प्रगति प्रकाशन
मास्को

अनुवादक : योगेन्द्र नागपाल

К. ФЕДИН,
„НЕОБЫКНОВЕННОЕ ЛЕТО“,
Книга 2
На языке хинди

Konstantin Fedin
NO ORDINARY SUMMER
Part 2

© हिन्दी अनुवाद • प्रगति प्रकाशन • १९८१

Ф $\frac{70302-081}{014(01)-81}$ 672-81

4702010200

१८

मेरकूरी अव्देयेविच मेश्कोव को रागोज़िन के सामने हाज़िर हुए अभी एक महीना भी नहीं हुआ था और उसका मन अभी इस विचार का थोड़ा सा भी आदी नहीं होने पाया था कि उसके सिर पर नंगी तलवार लटक रही है, इतने में फिर से वित्त-विभाग से बुलावा आ गया। मेरकूरी अव्देयेविच मानो सलीब पर चढ़ने चल दिया।

किन्तु बुरी-बुरी आशंकाओं के विपरीत रागोज़िन उससे अच्छी तरह मिला। उसकी बातों में प्रोत्साहन का पुट था, हां, बातचीत लंबी खींचने की इच्छा उसमें न थी। पता चला कि बैंक में की गई जांच-पड़ताल से मेश्कोव के अपनी पूंजी के बारे में बयान की पूरी तरह से पुष्टि हो गयी है। वह सचमुच ही सब कुछ खो बैठा था। अपने स्वभाव के विपरीत जिस भोलेपन से उसने 'स्वतंत्रता ऋण' के वायदों पर भरोसा कर लिया था (और जिसका पहले उसे बेहद अफ़सोस था), वही अब उसके लिए वरदान सिद्ध हो रहा था। वह कंगाल था और इसलिए निश्चिंत हो सकता था। मेश्कोव जब यह समझ गया कि खतरा टल गया है, तो उसके दिमाग में ख्याल आया: "पहले

कभी भी पैसे ने इन्सान को इस तरह नहीं बचाया है, जैसे कि अब खाली जेब बचा रही है।" ऐसी मुंहफट बात कहने की तो उसकी हिम्मत नहीं हुई, सो उसने इसी विचार को अलंकृत करके पेश किया:

"पहले ज़माने में आदमी बुरे दिनों के लिए भला बचत कैसे न करता? मैंने तो, प्योत्र पेत्रोविच, आप से कुछ छिपाया नहीं है और छिपाना चाहता, तो भी न छिपा सकता: आपको तो याद है मैं कैसे रहता था। खैर जो बीत गया, सो बीत गया। हां, बुरा मैंने किसी का नहीं किया। जो कुछ भी था मेरे पास मैंने दिन-रात मेहनत करके रत्ती-रत्ती जोड़ा था, और वह भी बस यही सोचते हुए कि बुढ़ापा आयेगा, तो क्या करूंगा। अब हालांकि मेरी एक टांग कब्र में लटक रही है, तो भी मन निश्चिंत है: सिर छिपाने को जगह मेरे पास रहने दी है, काम मुझे दे दिया है, और अगर हाथ-पांव जवाब देने लगे, तब भी सोवियत सत्ता सभी मेहनतकश नागरिकों की भांति मेरी देखरेख का इंतज़ाम कर देगी। और भला क्या चाहिए?.."

"अच्छा तो बात यहीं खत्म करते हैं, मेहनतकश नागरिक मेश्कोव," रागोज़िन ने कहा। वह मानो मेश्कोव को समझने की कोशिश करते हुए अपनी पैनी नज़रों से उसकी ओर देख रहा था, साथ ही वह अपना कौतूहल दिखाना भी नहीं चाहता था। शीघ्र ही उसने पूछा: "सोना आपके पास नहीं है, यह बात पक्की है?"

"बिल्कुल नहीं है।"

"अच्छा, आपका मामला साफ़ हो गया है। आप चैन से सहकारी दुकान में काम कर सकते हैं। सहकारी दुकान में ही हैं न आप?"

हां, मेश्कोव सहकारी दुकान में ही काम करता था, और उसका ख्याल था कि वह रागोज़िन को सौ बार यह बता चुका है। उसने आभार प्रकट करते हुए सिर झुकाया। वह खुश था कि सलीब पर चढ़ना नहीं पड़ा और सारा मामला इतनी अच्छी तरह रफ़ा-दफ़ा हो गया, मगर जब वह बाहर निकला, तो उसके मन में विरोध की भावना उठ रही थी। इस आश्वासन से कि वह चैन से नौकरी करता रहे, यह नौकरी उसे और भी बुरी लगने लगी थी। रागोज़िन ने मानो उस पर रहम करते हुए उसे यह नौकरी दान में दी थी। और यह रहम उसके लिए बोझ बन रहा था, क्योंकि हर

नुक्कड़ के पीछे उसके लिए जो दस खतरे मुंह बाये खड़े थे, उनमें नौकरी ग्यारहवां खतरा बनकर जुड़ रही थी और यह खतरा भी सबसे भयानक था।

अभी थोड़े दिन हुए कुछ लोग दुकान में आये थे। उन्होंने मेश्कोव को रुक्का दिखाकर ट्रेड यूनियनों के लिए कागज़ मांगा और पूरी गाड़ी लादकर आराम से चले गये। खाते में आर्डर दर्ज करते हुए मेश्कोव के मन में सहसा ऐसा संशय उठा कि उसके हाथ-पांव ठंडे हो गये और वह टेलीफ़ोन की ओर लपका। तब उसे पता चला कि किसी ट्रेड यूनियन ने माल नहीं मंगाया था और रुक्का फ़र्ज़ी था। बदहवास सा वह भागा-भागा मिलीशिया गया। वहां जब तक रपट लिखी जाती रही, उसे यही लगता रहा कि अब वह यहां से नहीं निकल पायेगा, उसे सीधे जेल भेज दिया जायेगा। दुकान पर लौटकर उसने पाया कि खुफ़िया विभाग के एजेंट उसका इंतज़ार कर रहे हैं। इस नये डर से तो वह बेहोश ही हो चला था। पर तभी पता चला कि एक सुखद संयोग ने उसे बचा लिया है। हुआ यह था कि शहर के बाहरी इलाके में इन एजेंटों ने माल से लदे छकड़े को एक घर के अहाते में घुसते देखा। इन्हें कुछ शक हुआ और उन्होंने छकड़े को रोक लिया। अब ये एजेंट मामले की गांठ खोलने यहां दुकान में आये थे। मेश्कोव की निर्दोषता सहज ही सिद्ध हो गयी।

इस खतरे से छुटकारा पाने पर उसने गिरजे में प्रभु के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए पूजा की। परन्तु इससे उसे मन में व्याप्त भय से छुटकारा नहीं मिला। उसका तो यह विश्वास दृढ़ हो गया कि यह नौकरी ही उसे ले डूबेगी। अगर वह सुखद संयोग न हुआ होता, तो भला कौन इस बात पर विश्वास करता कि भूतपूर्व व्यापारी मेश्कोव माल की हेराफेरी में शामिल नहीं है? आखिर आजकल लोग जैसे सोचते थे, उसके हिसाब से तो भूतपूर्व स्वामी के नाते मेश्कोव के लिए धोखाधड़ी करना स्वाभाविक ही था।

नहीं, वह चैन से नौकरी नहीं कर सकता था। अब उसके सिर पर जो नया खतरा मंडराता रहा था और जो रागोज़िन की दया से टल भी गया था, उससे छुटकारा पा लेने के बावजूद, उसके मन में गहरी व्यथा थी, जो उसे अंदर ही अंदर खाये जा रही थी। उसके

पांव उसे जिधर जाना था, उधर नहीं, वल्कि दूसरी ही दिशा में लिये जा रहे थे। हां, वह इस वात का भी फ़ायदा उठा सकता था कि दुकान पर कोई उसका इंतज़ार नहीं कर रहा था, क्योंकि वह ऊपर से वुलावा आने पर गया था।

मेञ्कोव को सारी उम्र गई-गुज़री सड़कें-गलियां ही पसंद रही थीं। उसकी स्वर्गीय पत्नी वालेरिया इवानोव्ना कई वार यह सहती-सहती झुंझला उठती थीं: "हे भगवान, क्या तुम हमेशा नावदान सूंघते चलते हो?" पर उसने अपनी आदत नहीं वदली थी – घूमने निकलता, तो भी पिछवाड़े-पिछवाड़े ही चलता, उजाड़ जगहों में ही जाता। वह दिखावापसंद नहीं, वल्कि स्वभाव से घुन्ना ही था और उसे मानो यह डर रहता था कि वेवजह भीड़भाड़ वाली जगह में जाकर लोगों को यह याद न दिलाये कि वह धनी है।

चहल-पहल भरी सड़क से मुड़कर उसने कुछ गलियां और निर्जन वुल्वार पार किया, जहां रोज़-विलो जैसी धूसर झाड़ियां उग रही थीं। फिर वह दूर तक चले गये खड्ड के किनारे-किनारे चला, जो कूड़े और राख से आधा भरा हुआ था, आखिर उसे पार करके टीलों की पगडंडियों पर कब्रगाह की ओर वढ़ चला। खूव गर्मी पड़ रही थी और हवा में फैली धूल में से छनकर आती रोशनी कंपकंपाती सी लग रही थी, ज़मीन सूखे से पथरा रही थी।

मेञ्कोव ने वालेरिया इवानोव्ना की कब्र पर प्रार्थना पढ़ी और पुश्ते पर वैठ गया। वह यहां मन की शांति के लिए आया करता था – वसंत में वेलचा लेकर कब्र का ढूह ठीक-ठाक करने, सलीव को मज़वूती से टिकाने और त्योहारों के दिन फाटक के पास लड़ती-झगड़ती भिखारिनों को भीख वांटने। सलीवों के वीच शोक-प्रार्थना का एकल स्वर गूंज रहा था: "तव संत्रस्त हुआ आकाश और स्तव्ध धरती..." और वह मन ही मन दोहरा रहा था: सचमुच ही आकाश संत्रस्त हो उठा है! सचमुच ही सारी धरती स्तव्ध है! क्या-क्या घट रहा है! क्या कुछ नहीं हो रहा! परमात्मा का शुक्र मनाओ, वालेरिया इवानोव्ना, कि उसने तुम्हारी आंखें मूंद दी हैं, और तुम्हें अव परमात्मा के भय के अलावा और कोई भय नहीं देखना होगा। उसने कब्र के सामने खड़े होकर सिर झुकाया, उसका मन अव शांत

हो गया था और चित्त में व्याप्त विनम्रता मानो उसे मनोवल प्रदान कर रही थी। कब्रगाह से निकलकर वह आश्रम की ओर चल दिया।

पुरुषों के मठ के ऐन पीछे टीले पर एक छोटा सा जंगल चला गया था। थोड़ी दूर पर उसमें बलूत वृक्षों से घिरा आश्रम था। चारदीवारी के पीछे से पीले रंग में पुती नीची-नीची इमारतें और एक गिरजे का गुम्वद दीख पड़ते थे। इधर कुछ समय पहले इन इमारतों में एक अनाथालय खोल दिया गया था। यहां लड़के रहते थे, जिन्हें पहले बिगड़े हुए कहा जाता था और अव पिछड़े हुए या विकारग्रस्त। अतीत में जिस जंगल में शांति का राज था, वहां अव दिन चढ़े से सांझ ढले तक लड़कों का हो-हल्ला होता रहता था। क्रांति के वाद आश्रम के द्वार एक वार जो खुले, तो फिर वंद नहीं हुए। हां, वलूत कुंज यहां घने थे और आश्रम काफ़ी वड़ा था, सो जीवन में पूर्ण परिवर्तन आ जाने पर भी यहां अव तक कुछ ऐसे स्थान थे, जहां एकान्त मिल सकता था।

ऐसे ही एक छायादार कुंज में विल्कुल अलग-थलग वनी छोटी सी इमारत में विशप का निवास था। यह विशप सामान्य पादरीगण से अलग ही प्रकृति के थे। यह तो नहीं कहा जा सकता कि वह अपने से वरिष्ठ पादरियों की अवहेलना करते हों, धार्मिक नियमों और रीति-रिवाजों की तो वात ही दूर रही। सभी नियमों का वह वड़ी श्रद्धा से पालन करते थे। अपने जैसे अन्य पादरियों से जिस वात में वह भिन्न थे, वह था उनका रहन-सहन। वैसे अगर वह साधारण मठवासी होते तो ऐसे रहन-सहन पर सव केवल गहरा संतोष ही प्रकट करते। परन्तु उनके पद के लिए ऐसा रहन-सहन अमान्य था, जो एक साधारण मठवासी को तो आदर का पात्र वना सकता था, परन्तु जो विशप के उच्च पद की गरिमा के लिए अशोभनीय था।

इस विरोधाभास के कारण ही विशप की स्थिति विशिष्ट थी। वह विल्कुल सादा जीवन व्यतीत करते थे, प्रायः भिखारी की ही भांति, मानो एक साधारणतम मठवासी से अधिक उनकी कोई आवश्यकताएं ही न हों। उनके भक्त उनके लिए वहुत कुछ लाते थे, लेकिन वह वड़ी वेफ़िक्री से और निस्स्वार्थ भाव से सव कुछ वांट देते थे। उनकी इस कमज़ोरी का लाभ उठाने तरह-तरह के लोग वहां

आते रहते थे, यहां तक कि पास के लड़के भी मौका-बेमौका मज़ा लेने चले आते थे। माया के प्रति उनकी इस उदासीनता से ही लोगों के मन में उनके लिए आदर भाव उठता था और उनके भक्तों की संख्या धीरे-धीरे, किन्तु निरन्तर बढ़ रही थी। एक सच्चे धर्मात्मा के रूप में उनकी ख्याति फैल रही थी। लोग अपने मन का बोझ हल्का करने, पश्चाताप करने उनके पास आते थे। बिशप की ख्याति की तुलना पुराने ज़माने के उन संतों की ख्याति से तो नहीं की जा सकती, जिनके दर्शन करने झुंड के झुंड भक्त आया करते थे। पर इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता था कि उनका खूब नाम है और न ही इस बात से कि उनकी कीर्ति उनके सदाचार और धार्मिकता पर लोगों के विश्वास पर आधारित है। लेकिन ठीक इसी वजह से चर्च के सत्ताधारी उनसे नाखुश थे और यहां तक कि उन्हें तरह-तरह से तंग करते थे। आर्कबिशप और उनके साथ-साथ धार्मिक परिषद के दूसरे सदस्य बिशप की सादगी को धूर्तता तथा उनकी निस्स्वार्थ भावना को पादरीगण की धन-लोलुपता पर चोट करने का प्रयास समझते थे, बिशप की लोकप्रियता में वे अहं की तुष्टि और शालीनता के पीछे संत बनने का प्रलोभन देखते थे। संक्षेप में, बिशप के भक्तों की दृष्टि में उनके जो सद्गुण थे, वही शत्रुओं की नज़रों में पाप थे।

मेश्कोव ने जीवन में पहली बार चर्च की राय की अवहेलना करने की हिम्मत की। बिशप की संगत में आते ही उसे उन पर ऐसी श्रद्धा हो गई कि जिन लोगों को बिशप के पूर्णतः निष्पाप होने में कोई संदेह था, उनको वह बुरा-भला कहने लगा और बिशप के शत्रुओं से तो उसे मरते दम तक के लिए नफ़रत हो गई।

विनीत मन से मेश्कोव ने आश्रम में प्रवेश किया। बड़े अरसे से उसके मन में एक विचार उठ रहा था और अब अंततः उसने एक अडिग संकल्प का रूप धारण कर लिया था। आश्रम की बाड़ के साथ-साथ चलते हुए मेश्कोव सोच रहा था कि अभी घंटा भर पहले वह कुमार्ग पर चलता हुआ शैतान के चाकर रागोज़िन के भट[1] में जा रहा था और उसे लग रहा था कि मौत उसके सामने मुंह बाये खड़ी है, किन्तु अब वह सन्मार्ग पर चलता हुआ प्रभु के सेवक के आश्रम में जा रहा

है, उसका हृदय निश्शंक है, उसके होंठ प्रभु का गुणगान कर रहे हैं और कानों में वह मधुर नाद है, जो पवित्र आत्मा में गुंजायमान होता है।

भद्दा सा चोगा पहने, घुंघराले वालों वाले बूढ़े सेवादार ने उसका स्वागत किया, वाहर की कोठरी लांघता हुआ वह उसे अंदर की कोठरी तक ले गया, वहां "परम पिता परमेश्वर, दयावान हों..." कहते हुए उसने द्वार खटखटाया, खोलकर अंदर गया, क्षण भर में ही लौट आया और मेश्कोव से कहा कि धर्माचार्य ने अंदर वुलाया है।

कोठरी के एक कोने में शीशे में जड़े देवचित्र रखे हुए थे और उनके आगे दीपक जल रहा था। उनके सामने खड़े होकर मेश्कोव ने माथा, छाती और फिर कंधों को छूकर सलीव का निशान वनाया, कमर झुकाकर हाथ की विचली उंगली से दरी का स्पर्श किया और फिर विशप का आशीर्वाद लेने आगे वढ़ा। गोलाईदार कुर्सी में वैठे विशप थोड़ा आगे को झुके और अस्वस्थता के कारण उठ न सकने के लिए क्षमा मांगी। उनका चेहरा फूला-फूला सा था, जैसा हृदय रोगियों का होता है। उनकी दाढ़ी इतनी झीनी थी कि उसमें भारी अण्डाकार चेहरा उतना ही स्पष्ट दिखता था, जितना दाढ़ी साफ़ मुंडी होने पर दिखता। दाढ़ी के लंवे, सफ़ेद वाल हल्के गाजरी से रंग की त्वचा पर अलग-अलग चिपका दिये गये लगते थे। जहां तक उनकी छोटी-छोटी आंखों में गति का प्रश्न है, उनमें ज़रा भी चंचलता न थी, किंतु उनकी प्राय: रंगहीन, जलीय पारदर्शिता से दृष्टि में एक स्थायी वेचैनी का आभास होता था। कोठरी की खिड़की छोटी सी ही थी, लेकिन कुंज में चिलचिलाती धुप थी, सो अंदर काफ़ी उजाला था।

अपने स्वास्थ्य के वारे में प्रश्न का विशप ने कोई उत्तर नहीं दिया, वस जोड़ों पर फूले हाथ धीरे से दोनों ओर को फैलाये और माला के फ़ीरोज़ी दाने जल्दी-जल्दी फेरने लगे। मेश्कोव पर लगी उनकी दृष्टि मानो कह रही थी कि वह सीधे अपनी वात वताये, किस काम से आया है।

"एक निश्चय किया है, महाराज, वस आपका आशीर्वाद चाहिए। वर्षों से मन में कामना थी कि गृहस्थी छोड़कर किसी मठ में चला जाऊं। अव निश्चय करने का समय आ गया है। आशीर्वाद दें, महाराज!"

मेश्कोव एक बार फिर नतमस्तक हुआ।

"अच्छी तरह सोच लिया है न? जल्दबाज़ी तो नहीं कर रहे?" विशप ने हौले से पूछा।

"नहीं, महाराज। साठ बरस का हो गया हूं।"

"सो तो देख रहा हूं। कोई-कोई पंद्रह वर्ष की आयु में ही संन्यास लेकर ऐसे लगता है कि जन्म से ही संन्यासी रहा हो, और कोई बुढ़ापे में भी मठ में आता है, तो पराये घर में लगता है।"

"मेरी तो मन से इच्छा है, महाराज।"

"बैठ जाओ, न। शांत हो जाओ। अगर निश्चय पक्का है, तो घबराने की क्या बात है।"

"निश्चय तो पक्का ही है, महाराज। दिन-रात बस एक ही चिंता है: कैसे आत्मा का उद्धार हो।"

"परमात्मा तुम्हारी मदद करे! पर आत्मा का उद्धार तो कहीं भी हो सकता है। संसार से नाता तोड़कर मठ में रहने के बजाय संसार में रहकर आत्मा की चिंता करना अधिक श्रेयस्कर बताया गया है।"

"सांसारिकता का बोझ नहीं सहा जाता..."

"समझता हूं। घृणा को दबा पाना आसान नहीं," विशप ने सहानुभूति के साथ सिर हिलाया और फिर से थोड़ा आगे को झुककर अपनी दृष्टि मेश्कोव के चेहरे के पास ले गये और सहसा बड़े हौले से अपनी बात पूरी की: "जो है, उसे स्वीकार कर लो, बस इसी में उद्धार है।"

मेश्कोव ने गहरी सांस ली और धूप में बिजली के तपे तार जैसी इस दृष्टि से बचने की कोशिश करते हुए विनम्रतापूर्वक कहा:

"इतना आत्म-बल नहीं है, महाराज!"

"तो अपनी दुर्बलता से विवश होकर यह निश्चय किया है?"

"पापी हूं, महाराज!"

"परमपिता को दुर्बलता नहीं, मन की दृढ़ता प्रिय है।"

विशप ने मानो निढाल होकर पीठ कुर्सी पर टेक ली, माला फेरनी बंद कर दी। उनकी उंगली सलीब वाले बड़े दाने पर टिकी हुई थी। सहसा उन्होंने सख्ती से पूछा:

"संसार से मन कड़वा हो गया, सो मठ में शरण लेना चाहते हो?"

"नहीं", मेश्कोव ने दृढ़तापूर्वक कहा। "मन की कड़वाहट वस जल्दी करा रही है, महाराज। इच्छा तो जवानी से ही है। उन दिनों मैं दूसरे कारिंदों के साथ मालिक के यहां रहता था। वे सब पुरातनपंथी थे, मुझे भी अपने पंथ की शिक्षा देने लगे। मैं तो उनके वहलावे में आ ही चला था, पर तभी एक भले आदमी ने सलाह दी कि मैं ऐथंस पर्वत के संत जेरोम से परामर्श मांगूं। उसका कहना मानकर मैंने चिट्ठी लिख दी, जवाब में उन्होंने मुझे हमारे आर्थोडोक्स पंथ का पालन करने का उपदेश दिया और साथ ही एक पुस्तक भी भेजी। तव से धार्मिक पुस्तकें पढ़ने लगा और मठवासी हो जाने की अभिलाषा जागी। पर उन्हीं संत से परामर्श मिला कि मां के जीते ऐसा न करूं, हां वाद में अगर प्रभु को मंजूर हुआ तो अपनी मनोकामना पूरी कर लूं। पर मां के जीते मेरा विवाह हो गया। वैसे, गृहस्थ जीवन में भी प्रभु से सदा यही प्रार्थना करता रहा कि अगर मैं विधुर हो जाऊं, तो प्रभु मुझे जीवन के अंतिम दिन मठ में काटने का अवसर दें। अव मैं विधुर हूं, नाती की मेरे सिर पर ज़िम्मेवारी थी, सो जल्दी ही उसका सौतेला पिता आ रहा है। वस अव इस संसार में मेरा कोई वंधन नहीं।"

.उसकी वात सुनकर विशप थोड़ी देर चुप वैठे रहे, फिर वोले: "हुं! फिर क्या है? दान कर दो अपना सव कुछ और चलो मेरे साथ!"

"दान करने को तो कुछ वचा ही नहीं, महाराज," मेश्कोव के सारे वदन में मानो उत्साह की झुरझुरी दौड़ गई। "मेरे लिए जो एकमात्र मूल्यवान वस्तु वची थी–'संतों की जीवनियां'–वह मैं आपको सौंप चुका हूं और जो कुछ मेरे पास वचा है, उसे तो चाहे उठाकर घूरे पर फेंक दो।"

उसने कोठरी की दीवारों पर नज़र दौड़ाई। विशप मुस्करा दिये।

"क्या देख रहे हो? अपनी भेंट नहीं नजर आती? मैंने उसे आगे भेंट कर दिया है। अभी कुछ दिन पहले एक देहात का पादरी आया था, जीवन की कठिनाइयों का रोना रो रहा था, कोई पूजा-वूजा करने ही नहीं आता, जनता की उदारता का स्रोत सूख गया है। परमात्मा को भुला वैठे हैं। मुझे उस पर तरस आ गया, वोला: "ले ये जीवनियां,

ले जा, शायद ज़िले का कोई शौकीन ख़रीद ले।" खुद तो पादरी ने जाने कब से संतों की जीवनियां नहीं पढ़ी होंगी। बिल्कुल बिगड़ गया है, नाक बैंजनी हो रही है। जीवनियां भी बेचकर पी डालेगा। ख़ैर, भगवान मालिक है उसका!"

मेञ्कोव ने धीरे से सिर हिलाया।

"क्यों, अफ़सोस हो रहा है?" चुभते से लहजे में बिशप ने पूछा।

"यह सोचकर मुझे खुशी होती थी, महाराज, कि पुस्तकें आपके पास हैं।"

"देखा," बिशप ने अभी भी मुस्कराते हुए उलाहना दिया। "अपनी ही नहीं, दूसरों की चीज़ों का भी दुख है। अरे भई, जब भेंट कर दी, तो फिर क्या उसका ख्याल करना?"

"पापी हूं, महाराज।"

"यह बात है! अच्छा तो कहां जाना चाहते हो, कौन से मठ में? आजकल तो मठों का हाल भी कोई अच्छा नहीं है: हमारे संन्यासी भाई भी देखो मोर्चे के सिपाहियों जैसे एक दूसरे पर टूट पड़ेंगे..."

"ख़्वालीन्स्क के पास एक मठ है, वहीं जाने की सोच रहा हूं, महाराज। आप सलाह दें..."

"हां, जानता हूं यह मठ। सुंदर जगह है, शांत। पर वहां पुरातन-पंथी भी पास ही हैं। और वहां वाले तो हमारे संन्यासियों से तेज़ हैं। कही तुम्हें अपने पंथ में मिला लिया तो?" बिशप ने चुटकी ली।

"महाराज, अपने आर्थोडोक्स पंथ की रक्षा करना जानता हूं: इसी आश्रम में कभी इन पुरातनियों का मुंह काला करना सीखा था।"

"अच्छा, यही सही," बिशप ने चैन की सांस लेते हुए कहा। "प्रभु का वरदान, पा सके सो पाये! जाओ, परमात्मा तुम्हारा साथ दे।"

मेश्कोव ने देवचित्र के सामने खड़े होकर प्रार्थना पढ़ी, फिर बिशप के सामने घुटने टेके। उन्होंने हाथ बढ़ाकर मेश्कोव को चूमने दिया और उसे आशीर्वाद दिया। मेञ्कोव चलने को हुआ, पर फिर थम गया, बिशप के रुग्ण, लटक से गये चेहरे पर प्रश्न भरी दृष्टि डाली और यह प्रतीक्षा करने लगा कि कब वह उसे बोलने का इशारा करें।

"अब क्या परेशानी है?" उसके मन की बात समझते हुए बिशप ने पूछा।

"एक सवाल है, महाराज," मेश्कोव ने दवे स्वर में कहा, "१३३५ – इस संख्या का क्या अर्थ है?"

बिशप की पारदर्शी आंखें देर तक एकदम निश्चल रहीं, उनमें किसी तरह का ज़रा सा भी जो रंग था वह भी मानो धीरे-धीरे विलुप्त हो गया, फिर पलकें सिकुड़ते-सिकुड़ते मिच गईं, और फिर जब आंखें खुलीं, तो उनकी अंगारों सी दहकती पुतलियों ने मानो मेश्कोव को झुलस डाला।

"कहां से आये ये विचार?"

मेश्कोव ने विश्वासपूर्वक पर साथ ही अत्यंत संकोच के साथ जवाब दिया:

"एक पुस्तक पढ़ी थी, महाराज, जिसमें लोगों और साम्राज्यों के इतिहास को बाइबिल से मिलाया गया है। इस ग्रंथ के अंत में भविष्यवाणी के शब्द दिये गये हैं: 'धन्य है वह, जो सब्र करता है और एक हज़ार तीन सौ पैंतीस दिन पूरे करता है।'"

"किसने लिखा है यह ग्रंथ?"

"कोई विद्वान लगता है – वान बीनिंगेन नाम है।"

"जर्मन-वर्मन है क्या?"

"ऐसा तो कुछ नहीं लिखा। बस यही लिखा है कि पुस्तक सेंसर द्वारा स्वीकृत है।"

"हां, कोई आश्चर्य की बात नहीं है," बिशप तरसभरी आवाज़ में बोला। "सेंसर वाले तो अंधे थे, अज्ञानवश समाजवाद की किताबें भी छापने देते थे।"

"पर, महाराज, इस पुस्तक में तो समाजवाद की बुराई की गई है।"

"तो क्या हुआ, रोम के कैथोलिक पोप भी समाजवाद की खूब बुराई करते हैं।"

"लेकिन, महाराज, पुस्तक में तो पोपों को भी आड़े हाथों लिया गया है।"

"इससे भी कोई बात नहीं बनती, क्योंकि समाजवादी भी पोपों को खूब जली-कटी सुनाते हैं।"

मेश्कोव ने यों हतप्रभ होकर सिर झुका लिया कि अब बिशप पर ही यह निर्भर था कि वह या तो पथभ्रष्ट को दण्ड दें या क्षमा कर

दें। वह थोड़ी देर तक चुप रहे, जितना कि अपनी पूर्ण विजय की अनुभूति के लिए आवश्यक था, और फिर बड़े हौले से हंसकर दो-तीन वार अपने घुटनों पर माला से चोट की, मानो पीट रहे हों।

"अरे, विदेसी शैतान की हमें क्या ज़रूरत जबकि हमारा अपना ही कम नहीं," बड़े खुश अंदाज़ में उन्होंने पूछा।

फिर उनके चेहरे पर क्रोध का भाव आ गया। उन्होंने दाढ़ी का एक वाल चुटकी से पकड़ा और धीरे-धीरे उस पर उंगलियां फेरीं।

"घर जाकर आग जलाना और अपने उस वान... क्या नाम है उसका?.. उस जर्मन विद्वान को फूंक डालना," कठोर स्वर में वह बोले। "और बहुत अकलमंद मत बनो; अपनी बुद्धि से सब कुछ समझने की कोशिश मत करो, क्योंकि बुद्धि तो तुम्हारी छोटी सी ही है। भविष्यवाणियां कोई अंकगणित नहीं हैं, परमात्मा का शब्द हैं। ज़रा सोचो तो: मनुष्य कुछ समझ सकता, इसके लिए प्रभु के मेमने को मनुष्य की भाषा में बोलना पड़ा। और हमारी यह भाषा क्या है? हमारी बुद्धि की निर्बलता – यह है हमारी भाषा। परमात्मा कहता है 'एक दिन' और हम समझते हैं चौबीस घंटे। सम्भव है परमात्मा के एक दिन में हमारे सभी पूर्वजों और सभी वंशजों का जीवन ऐसे समाता हो, जैसे बादाम के छिलके में गिरी? अब समझ लो बाइबिल की संख्याएं! समझने की नहीं, आस्था रखने की आवश्यकता है। निष्कपट मन से आस्था रखो। और यह याद रखो कि स्वयं हमारे शिक्षक ने अपने द्वितीय अवतरण के बारे में क्या कहा है: 'उस दिन और उस घड़ी का ज्ञान प्रभु के पुत्र को भी नहीं है, केवल परमपिता परमेश्वर ही जानता है।'"

उन्होंने रुककर सांस ली, एक बार फिर बाल पर उंगलियां फेरीं और फिर नम्र स्वर में बात पूरी की:

"अच्छा, जाओ अब। थक गया मैं। संन्यास लोगे तो अपने गुरु को इस सेंसर द्वारा स्वीकृत विधर्मी के अपने पाप के बारे में बताना। हो सकता है, वह तुम्हें कुछ प्रायश्चित करने को कहे। मैं तुम्हें क्षमा करता हूं, जाओ। तुम्हें अभी कठोर परीक्षा से गुज़रना है। जाओ अब..."

मेश्कोव को घर लौटते हुए ऐसा लग रहा था मानो वह अपने शरीर का बोझ कहीं बहुत पीछे छोड़ आया हो। अतीत एक गहरी

खाई से अलग हो गया था, और बुढ़ापे में, जवानी की भांति आनंदमय भविष्य सहज ही सम्भव प्रतीत हो रहा था। बेशक, अतीत से कब का कुछ न बचा था, सिवाय घिसे हुए जूतों के, परन्तु अगर वह अतीत किसी चमत्कारवश फिर से जी उठता, तो मेश्कोव उसे अपना न सकता। उसने भविष्य के लिए जिस आशीर्वाद की याचना की थी और जिसे अब पा लिया था, उसका तकाज़ा यह था कि वह बीते दिनों को याद तक न करे। उसे एक नया व्यक्ति बनना ही नहीं था, उसे प्रतीत हो रहा था कि वह वैसा नया व्यक्ति बन गया है–उसने यह निर्णायक कदम इतनी श्रद्धा के साथ उठाया था कि स्वयं ही भाव-विभोर हो उठा था।

घर पहुंचते ही मेश्कोव को एक नया समाचार मिला। वैसे तो यह समाचार उसके लिए अप्रत्याशित नहीं था। साथ ही इससे उसकी मुक्ति का क्षण और निकट आता था, जो अब उसके जीवन का एकमात्र ध्येय थी। इस समाचार से वह अत्यंत प्रसन्न था, क्योंकि इससे उसके सब बंधन कट रहे थे, पर साथ ही इससे उसके मन में हल्की सी उदासी भी छा गई थी, क्योंकि इसका अर्थ था कि वह अभी अपने निकट सम्बन्धियों को छोड़ भी न पाया था, उनसे यह कह तक न पाया था कि वह उन्हें छोड़कर जा रहा है और उन्हें न उसकी सलाह की, न उसकी हमदर्दी की ज़रा भी ज़रूरत रही थी।

मेज़ पर इस्तरी किया मेज़पोश बिछा हुआ था, जिसे खास तौर पर इस मौके के लिए संदूक से निकाला गया था। चारों ओर सब कुछ इसी मेज़पोश की भांति सजल था और उमंग से वैसे ही फूला-फूला था, जैसे कलफ़ लगे मेज़पोश की उठ-उठ रही तहें।

लीज़ा श्वेत वस्त्र पहने थी। उसका सिर मानो ऊंचा उठ गया था। उसका केश-परिधान फिर से हल्का-फुल्का हो गया था। पतली सी उंगली पर एक बार फिर अंगूठी रही थी–नई-नई पतली सी, ठीक वैसी ही जैसी अनातोली मिखाइलोविच की उंगली पर थी। लीज़ा सारी तैयारी कर चुकी थी–मेज़ के चारों ओर चार कुर्सियां उनकी प्रतीक्षा में रखी हुई थीं। वीत्या नारंगी रंग की नई रेशमी कमीज़ पहने था, कमीज़ इस्तरी की हुई थी और उस पर अभी कोई दाग नहीं लगा था। अनातोली मिखाइलोविच ओज़्नोबिशिन ने गर्मियों का हल्का कोट पहन

रखा था, जिसके पीतल के बटनों पर शाही उकाब बने हुए थे – उन पर कपड़ा चढ़ा दिया गया था।

मेश्कोव दरवाज़े पर प्रकट हुआ, तो तीनों चुप हो गये, जहां खड़े थे, वहीं खड़े रह गये। मेश्कोव ने भौंहें तानकर बेटी से पूछा:

"रजिस्टरी करा ली?"

"जी हां, करा ली।"

वह अपने कमरे में चला गया और क्षण भर बाद हथेली जितना बड़ा देवचित्र लेकर बाहर आया, जिसका तांबे का चौखटा हरा पड़ चुका था, देवचित्र लेकर उसने पहले लीज़ा को आशीर्वाद दिया, फिर ओज़्नोबिशिन को, और ऐसा करते हुए उसके मन में यह विचार उठा कि अब उसे एक ही बेटी से दूसरा दामाद मिल गया, और फिर उसने वीत्या के सिर पर हाथ फेरा।

"देखो, इन्हें अपना पिता समझना," मेश्कोव ने कहा। "इनका कहना मानना, आदर करना। अब यही घर में सबसे बढ़कर होंगे, तुम्हारी मां से भी बढ़कर। समझे? और मैं..."

"चलिये, बैठ जायें," लीज़ा बोली।

"बैठने से पहले मैं चाहता हूं कि आप लोग मेरी बात सुन लें," शनैः शनैः पर आग्रहपूर्वक मेश्कोव ने कहा। "तुमने अपनी ज़िंदगी बदल ली है, और मैंने भी बदलने का फ़ैसला किया है। बहुत पहले मैंने एक संकल्प किया था, उसे पूरा करते हुए अब मैं अपने शेष दिन मठ में बिताने जा रहा हूं। ईसा के वास्ते भूल-चूक माफ़ कर देना।"

उसने बेटी और ओज़्नोबिशिन के सामने सिर झुकाया। लीज़ा उसकी ओर ज़रा बढ़ी और असमंजस में अपने ऊंचे माथे पर हाथ फेरा।

"पिता जी, आपने पहले तो कभी इसका ज़िक्र नहीं किया..."

"सोचते ज़्यादा हैं, बोलते कम हैं। और मुंह से बात निकालकर, बात बदलते नहीं। तुम्हारी ओर से मैं निश्चिंत हूं, तुमने भले आदमी से शादी की है। वीत्या के सिर पर भी हाथ है। अब मुझे अपनी आत्मा की भी चिंता करनी चाहिए। सोते-जागते बस यही एक सोच है।"

तीनों उसकी ओर देखते रहे थे और कुछ सकुचाते हुए, मानो किसी बात पर लज्जित से चुप खड़े थे। वीत्या ने पूछा:

"नाना, अब तुम चोला पहन लोगे?"

"वीत्या!" लीज़ा बोली।

मेश्कोव ने उसांस रोकी।

"मेरा कमरा आपको मिल जायेगा," उसने ओज़्नोविशिन से कहा।

ओज़्नोविशिन ने अपनी स्त्रियों जैसी छोटी-छोटी हथेलियां रगड़ीं और झिझकते हुए कहा:

"आप, वो... यह सब मत सोचिए। लीज़ा और मुझे कुछ खास नहीं चाहिए।"

"खास तो मैं कुछ दे ही नहीं सकता," मेश्कोव ने कहा। "इसीलिए निश्चिंत होकर जा रहा हूं। अच्छा चलो, अब बाकी बातें बैठकर कर लेंगे।"

उसने मेज़ पर नज़र डाली। यहां पुरानी पोर्ट वाइन की स्याह-हरी बोतल रखी थी और वोद्का की मीना झिलमिला रही थी। ऐसी सजी हुई मेज़ उन्होंने जाने कब से नहीं देखी थी, खाने की भीनी-भीनी महक उन्हें दावत दे रही थी।

"वाह, भई, वाह!" वह फुसफुसाया। "सो मैंने सोवियत ब्याह भी देख लिया।"

उसने बाहर का दरवाज़ा कसकर बंद किया और सब बैठ गये। वह नाती और बेटी के बीच बैठा।

"यह तो एक तरह से सगाई हुई," उसने कहा। "अब गिरजे में विवाह संस्कार कब होगा? संस्कार के बिना दाम्पत्य जीवन सुखी नहीं हो सकता। जब तक मैं यहां हूं, यह काम भी कर लो।"

"पर, पिता जी, ऐसे अचानक क्यों आप?" लीज़ा ने पूछा। वह अभी भी अपने आपको दोषी अनुभव कर रही थी, हालांकि खुद भी नहीं जानती थी कि क्यों।

मेश्कोव ने उसका कंधा छुआ, यह एहसास दिलाते हुए कि जो अवश्यम्भावी है उसे स्वीकार ले।

"अचानक नहीं, बिटिया। आज ही मुझे अपने धर्मगुरु की अनुमति मिली है। सो बस..." उसने फिर से मेज़ पर नज़र डाली, मुस्कराया और नीची आवाज़ में बोला: "लाओ, थोड़ी डालो तो। बस, आखिरी बार यह पाप सही। फिर सदा के लिए खत्म।"

सबने आंखों के इशारे से एक दूसरे को प्रोत्साहन दिया और चुपचाप पी ली। वे यह भूल ही चुके थे कि कब ऐसी दावत हुई थी, सो पूर्णतः

इसके रसास्वादन में लीन हो गये। वीत्या ने चटखारा भरा, उसने पहली बार पोर्ट वाइन चखी थी।

"कहां से ले आये यह सब?" मेश्कोव ने विस्मय के स्वर में पूछा और ओज़्नोविशिन को प्रशंसा की दृष्टि से देखा। "वाह, जान आ गई। बिल्कुल पहले जैसा स्वाद है, है नहीं?.. अच्छा, आप तो वकील हैं, एक बात बताइये। आजकल तो सबके लिए काम करना ज़रूरी है, तो फिर मैं कैसे नौकरी छोड़ूं कि कोई परेशानी न हो?"

"बीमार पड़ना होगा।"

"हां, वो तो मैंने सोचा था। पर कौन सी बीमारी पकड़ूं?"

"इसका जवाब तो डाक्टर दे सकता है, वकील नहीं।"

"पर अगर मैं अपनी ढलती उम्र में भी बिल्कुल स्वस्थ हूं, तो?"

"आप ऐसे डाक्टर के पास जाइये, जो यह मानता है कि बिल्कुल स्वस्थ व्यक्ति होते ही नहीं।"

"जो सबको जन्म से ही रोगी समझता है?"

"जो यह मानता है कि आवश्यकता होने पर किसी को भी रोगी माना जा सकता है।"

"जो यह मानता है?" मेश्कोव ने आंख मारी और अंगूठे को तर्जनी से यों रगड़ा मानो नोट गिन रहा हो।

"बिल्कुल," ओज़्नोविशिन ने भी उसी लहजे में हामी भरी और मीना की ओर हाथ बढ़ाया।

मेश्कोव को अचानक ही सरूर आ जाता था। वह कभी भी यह तय नहीं कर पाता था कि किस क्षण अपने पर नियंत्रण खो बैठता है। एक छलांग में वह रोज़मर्रा की ज़िंदगी से एक विशिष्ट संसार में जा पहुंचता, जहां सभी रंग पारभासी होते, रंगीन कांच की भांति। और यह संसार उसे कुछ करने की अल्हड़ चुनौती देता।

लीज़ा बचपन से ही परिचित लक्षणों से यह क्षण निर्धारित कर लेती थी: मेश्कोव के नथुने फड़कने लगते थे, और वह उंगलियों के झटकों से अपनी दाढ़ी को इधर-उधर यों छिटकाने लगता था, मानो वह आहत हो और साथ ही रोष में भी। लीज़ा ने मीना परे हटा दी। मेश्कोव ने चुपचाप तिरछी नज़रों से बेटी की ओर देखा। फिर मानो अपनी सफ़ाई देते हुए बोला:

"अभी तो मैंने संन्यास नहीं लिया है, अभी लोभ, मोह का दास हूं। मठ में जाकर संसार के बंधनों से मुक्त हो जाऊंगा, तब सच्ची मुक्ति का आनंद पाऊंगा।"

"आपका कहना सही है," ओज़्नोबिशिन ने हामी भरी। "सच्ची मुक्ति इसी में है कि इन्सान अपने आप से मुक्त होता है।"

"पर क्या यह सही है कि अपने आप से मुक्त होता है?" मेश्कोव ने संशय प्रकट किया।

"मेरे ख्याल में सही है। क्योंकि धार्मिक व्यक्ति अपने आपको पूरी तरह प्रभु की इच्छा पर छोड़ देता है।"

"बिल्कुल। इन्सान अपनी इच्छा अपने गुरु की इच्छा के सुपुर्द कर देता है, और गुरु के रूप में परमात्मा की इच्छा को स्वीकार करता है। अतः यही कहना सही होगा कि इन्सान अपनी इच्छा से मुक्त होता है, न कि अपने आप से। अपने आप से तो हम मृत्यु के साथ मुक्त होंगे। अपने नश्वर शरीर से मुक्त होंगे।"

मेश्कोव स्वयं अपने तर्ककौशल पर विमुग्ध हो रहा था, उसने वोद्का की ओर हाथ बढ़ाया। पर लीज़ा ने पहल करके उसका जाम अधूरा भर दिया। उसने अपनी घनी भौंहें फैलाई और फिर सिकोड़ीं।

"तुम क्या पिता पर हुक्म चलाना चाहती हो," उसने अपने आक्रोश को दबाते हुए कहा।

पर तभी किसी ने दीवार पर दस्तक दी और दरवाज़े के बाहर कोई खांसा। यह दीवार बड़े कमरे को उस गलियारे से अलग करती थी, जो मकान के नये निवासियों के रास्ते के लिए बनाया गया था। दीवार बिल्कुल पतली सी थी, सो दस्तक की आवाज़ उनके वार्तालाप में धमाके की तरह गूंजी। लीज़ा ने दरवाज़ा थोड़ा सा खोला।

बाहर गलियारे में बूढ़ा कारीगर मत्वेई खड़ा था, जो अब इसी घर के एक कमरे में रहता था। उसकी काम करने की छोटी सी ऐनक नाक पर खिसक आई थी और उसके ऊपर से नज़र ताक-झांक करने के लिए नहीं, बस यों ही कमरे में पड़ रही थी। वह धीमी आवाज़ में लीज़ा से कुछ कह रहा था।

"पिता जी, कोई फ़हरिस्त-वहरिस्त बनाने आये हैं," पिता की ओर सिर घुमाकर लीज़ा ने कहा।

"फ़हरिस्त? कैसी फ़हरिस्त?" मेश्कोव ने पूछा। गुस्से से भरकर उठते-उठते उसने वोद्का का अधूरा जाम पूरा भरा और गटाक से पी लिया।

वेटी को दरवाज़े से हटाते हुए उसने एक झटके से ठोड़ी के ऐन बीच से दाढ़ी को दो हिस्सों में छिटक दिया।

"कैसी फ़हरिस्त?" एक बार फिर वह बोला। "फ़हरिस्त बनाने को कुछ बचा भी है?"

"मकानों की फ़हरिस्त बना रहे हैं," अलसाई आवाज़ में मत्वेई ने जवाब दिया। "जानना चाहते हैं कि रिहायशी क्षेत्रफल कितना है। मैंने कहा आपको कमरों की लम्बाई-चौड़ाई पता होगी।"

"आपसे कहने को किसने कहा था?"

"कहने की बात ही क्या है? बजाय इसके कि लोग फ़ीता लेकर नापते फिरें, आप बता दीजिये और बात खत्म।"

"क्यों न नापते फिरें? इस काम की ही तो उन्हें तनख्वाह मिलती है? नापने दो उन्हें।"

"ऐसे काम जल्दी हो जाता, नहीं तो उन्हें एक-एक कमरे का चक्कर लगाना पड़ेगा।"

"तो मैं क्या करूं? घर तो मेरा नहीं है।"

"ठीक है, ठीक है, मेरकूरी अव्देयेविच," बूढ़ा हंस दिया, "पर आपकी ही दावत में विघन पड़ेगा।"

"दा-वत?" मेश्कोव धीरे से बोला। कमरे में पड़ती बूढ़े की नज़र के सामने वह दीवार बन जाना चाहता था, जहां तक बन पड़ता था, पंजों के बल ऊपर उठ गया था। "दा-वत?" एक-एक अक्षर पर ज़ोर देते हुए उसने फिर कहा। "अच्छा! यह दिखा है तुम्हें यहां! दावत! इसीलिए दूसरों के दरवाज़े में ताक-झांक हो रही है!"

"ताकना क्या है, सारे घर में तो ठर्रे की बू फैल रही है," मत्वेई ने घिन के साथ सिर झटकाया।

"ठर्रे की?" मेश्कोव की ऊंची उठती आवाज़ में धमकी थी। "जी नहीं, श्रीमान, माफ़ करना!"

"पिता जी!" लीज़ा ने उसे टोका।

पर उसे मानो यही चाहिए था कि कोई उसे टोके। वह गला फाड़कर चिल्लाया:

"ठर्रा नहीं, साफ़ वोद्का है! ज़ार के ज़माने की वोद्का! सुन लिया? जा, अब दौड़के, कर दे रपट कि मेश्कोव तेरे ठर्रे की जगह ज़ार की वोद्का पीता है। जा, जा, दौड़के जा, कर दे रपट, बेहया बुड्ढा!"

"धत् तेरे की, खुद तू बेहया बुड्ढा है!" बूढ़ा घूम गया, उसने झटके से नाक से ऐनक उतारी और गलियारे में चल दिया।

"जा, जा, दौड़के जा," मेश्कोव चिल्लाये जा रहा था। उसने दरवाज़े को धम से बंद कर दिया था और अब पंजों पर उचक-उचककर गुस्से में कमरे के एक कोने से दूसरे कोने तक का चक्कर काट रहा था। "जा, जा बता दे सबको कि मेश्कोव ने ज़ार की मोहर वाली वोद्का छिपा रखी है! मेश्कोव दावतें उड़ाता है! शादी के जशन मनाता है! और अपने फटीचर पड़ोसियों को, इन कंगालों को दो बूंद भी नहीं देता! जा, जा, दौड़के जा, दौड़के!"

बूढ़े ने ज़ोर से दीवार पर ठोकर मारी और गलियारे में गरजा:

"अरे क्यों आसमान सिर पर उठाता है! सबको पता है तेरी असलियत क्या है!"

मेश्कोव दीवार पर मुक्के मारने लगा:

"तेरी यह मजाल! तू अपनी असलियत देख! तू पराये घर में घुस आया है! तू दूसरों के यहां ताक-झांक करता फिरता है! किसने मेरा सब कुछ लूटा है? किसने मुझे भूखे-नंगों के बराबर कर दिया है? सब तेरे हथकंडे हैं, तुम सब चोर-उचक्कों के। सब कुछ छीन लिया, आखिरी रद्दी बांड तक! खुद ही अपनी 'स्वतंत्रता ऋण' छापे ठगों ने, खुद ही बेचे और खुद ही वापस ले लिये! अभी भी कमबख्तों का जी नहीं भरा। घूमते-फिरते हैं, ताक-झांक करते हैं, और क्या फ़ीते से नापने को रह गया है, और क्या हथिया लें, क्या छीन लें! ठीक है, नोच लो मेश्कोव को, बोटी-बोटी नोच लो! कलेजा चीर डालो मेश्कोव का! तुम्हारा कोई भला नहीं होने का! पराया धन किसी को नहीं फलता! बन पाये तुम अमीर! मालिक बनने चले हैं!"

वह दौड़के मेज़ तक गया, वोद्का का पूरा जाम भरा, गले में उंडेल लिया, मुंह खोले हवा खींचता खड़ा रहा और सहसा कुर्सी पर ढह गया।

लीज़ा इस सारे वक्त खिड़की की ओर मुंह किये खड़ी थी। एक जमाना था जब पिता के यों चीखने-चिल्लाने पर वह भयभीत हो जाती थी। उसे लगता था कि क्रोध में आकर उसका बाप थप्पड़ मार सकता है, पीट सकता है, जान तक से मार डाल सकता है। अब उसे ज़रा भी डर नहीं लग रहा था। पिता पर रहम से उसका दिल दुख रहा था। पिता की बेबसी भी उसे तुच्छ लग रही थी और उस पर शर्म आ रही थी। उसे याद आया कि सपने में उसने पिता को किस रूप में देखा था – मरियल और दब्बू सा। उसे मदद करनी चाहिए थी, परन्तु पिता के प्रति पुरानी विरक्ति उसे ऐसा करने से रोक रही थी। वह इतना दुर्बल और दयनीय था और लीज़ा की अपनी श्रेष्ठता उसके लिए बोझिल पड़ रही थी, और वह पिता के लिए कुछ नहीं कर सकती थी। इस वक्त पिता पर तरस के साथ-साथ उसे झुंझलाहट भी हो रही थी, क्योंकि वह ओज़्नोबिशिन के सामने शर्मिंदा थी। बाप ने जो बवेला खड़ा किया था, उससे उसके मन में टीस उठ रही थी, पर वह यह नही सोच रही थी कि वह क्यों चीख-चिल्ला रहा है। वह केवल अपने पति के बारे में सोच रही थी, जो इस दिन से उसके पारिवारिक जीवन का एक अंग बननेवाला था और जो अब इस ख्वामखाह के शोर से, ऐसे भोंडे तौर पर इस घर का सदस्य बन रहा था। मुड़कर देखे बिना ही, मानो अपनी पीठ से ही वह महसूस कर रही थी कि ओज़्नोबिशिन किंकर्तव्यविमूढ़ सा खड़ा है।

अचानक सन्नाटा छा जाने पर उसकी यह जड़ता खत्म हुई और सिर घुमाने पर उसने देखा कि उसका बाप कोहनियां मेज पर टिकाने की कोशिश कर रहा है और बुदबुदा रहा है:

"मैंने इनका क्या बिगाड़ा है? क्यों इन्होंने मुझे अपराधी बना दिया है? क्यों मेरे पीछे पड़े हुए हैं? क्यों मुझे यों नीचा दिखा रहे हैं? क्या मेरा काम इनसे बुरा था? हर काम आदमी पेट भरने के लिए करता है। क्यों मेरे दाने पर इनकी भूखी नज़रें हैं?"

"धीरज रखिये," ओज़्नोबिशिन ने बर्तनों को चुपके से बूढ़े की लड़खड़ाती कोहनियों से दूर करते हुए कहा।

सहानुभूति पाकर मेश्कोव तुरंत ही पसीज गया, उसकी आंखें डबडबा आईं और ज़ुबान पर उसका बस और भी कम हो गया:

"पाप हो गया, मुझसे ... पाप हो गया ... प्रायश्चित करूंगा ... दिन-रात प्रभु की प्रार्थना करूंगा ... माफ़ कर दो मुझ किस्मत के मारे को ... मैं चला जाऊंगा ... तुम चैन से रहना! पुराने ज़माने में जैसे बूढ़े उत्तर के जंगलों में चले जाते थे ... वैसे ही मैं भी ... वनवासी हो जाऊंगा ... हाय, वीत्यां, तुझे कैसे छोड़ जाऊंगा! मुझे माफ़ कर दो ... मरते दम तक प्रभु से तुम्हारे लिए प्रार्थना करूंगा ... हे, प्रभु, क्षमा करो ..."

उसका सिर मेज़ के सिरे से जा टकराया।

लीज़ा ने वीत्या की ओर देखा। उन्होंने मेश्कोव को उठाया और उसके कमरे में ले चले। वह ज़रा भी भारी नहीं था, ढुलमुल सा और अजीब ही छोटा सा। उन्होंने उसे विस्तर पर लिटा दिया। वह वार-वार वीत्या को पकड़ने की कोशिश कर रहा था, आखिर उसने नाती का गाल चूम लिया। वीत्या ने उसके जूते उतारे, हाथ झाड़े और गाल पोंछा। उसने नाना को कभी भी ऐसा नहीं देखा था और अव उसे पहली वार अपनी श्रेष्ठता की अजीव सी, वोझिल अनुभूति हुई। उसने अपनी नारंगी आतलसी कमीज़ झटकी और उस पर नज़र दौड़ाई। कमीज़ पर सिलवटें पड़ गई थीं, पर वह साफ़ थी। लीज़ा ने पिता को कम्वल ओढ़ा दिया और वे उसे अकेला छोड़कर वाहर आ गये।

ओज़्नोविशिन हिचकिचाते हुए पत्नी के पास आया और उसके कंधों पर अपनी वांह रखी। वह उसकी ओर देखने का साहस नहीं जुटा पा रही थी। आखिर वोली:

"पिता जी पर नाराज़ मत होना ... वैसे तो वह अच्छे आदमी हैं। वस ... अपना हुक्म चलाने की आदत है ..."

"मैं कतई नाराज़ नहीं," ओज़्नोविशिन ने कहा। वह जल्दी से जल्दी पत्नी को दिलासा देना चाहता था। "जिस आदमी में अहं हो, उसी के लिए झुकना मुश्किल होता है, उसके लिए नहीं, जिसका कोई अहं ही नहीं। समझने की वात है।"

सहसा वह उससे दूर हो गई, गुस्से से एक गहरी उसांस भरी। अपनी इस खीज पर शर्मिंदगी से उसका चेहरा लाल हो गया:

"ओह, कैसा अहं! वह तो वस अपने अलावा और किसी को सह ही नहीं सकते!"

वह मेज़ के पास बैठ गई और देर तक वीत्या पर नज़रें टिकाये बैठी रही और फिर चैन की सांस ली:

"शुक्र है, हमें छोड़कर जा रहे हैं।"

१६

आंसुओं से भीगा चेहरा लिये अल्योशा लिलक की झाड़ियों में घास पर लेटा हुआ था। दोरोगोमीलोव के झाड़-झंखाड़ भरे बाग के हर कोने को वह अच्छी तरह जानता था, फिर भी हर बार वह यहां एक नयापन पाता था, जिससे उसका मन खुश हो उठता था। यहां वह बड़ों से वैसी बातचीत करता था, जिसके लिए और कहीं साहस नहीं जुटा पाता था।

पान की शक्ल की सख़्त पत्तियों के नुकीले सिरे उसके गालों को छू रहे थे। उसे लग रहा था कि पत्तियां इस तरह चूमकर उससे सहानुभूति दिखा रही हैं। यहां हर चीज़ में अपनापन था – जड़ों से फूटकर निकले नये अंकुर नन्हे वृक्षों से लगते थे, पतंगों के लाल परों पर काली-काली आंखों वाले बूढ़ों के से चेहरे बने लगते थे, मैलो की कच्ची, दूधिया फलियां उसे रात को पहनने की क़मीज़ के कपड़े के बटनों जैसी लगती थीं।

पत्तियों की छाया में इस एकांत जगत से कहा जा सकता था – देखो, तुम अल्योशा का दर्द समझते हो, तुम्हें उससे सच्चा प्यार है, वैसे ही जैसे वह तुम्हें जी-जान से चाहता है। पर क्या पापा को अल्योशा से प्यार है? ज़रा भी नहीं!

दूसरी बार आर्सेनी रोमानोविच ने उसे वोल्गा पर ले चलने को कहा है। और दूसरी बार पापा ने मना कर दिया है। उसने सारी बंसियां देख-दाखकर तैयार कर रखी थीं। सारी जालियां ठीक-ठाक कर ली थीं। वीत्या नये कांटे भी ले आया था – बिल्कुल छोटे-छोटे भी और ओल्गा अदामोव्ना की बालों की सूइयों जितने बड़े भी। सारी तैयारी हो चुकी थी। और फिर से पापा ने मना कर दिया!

आर्सेनी रोमानोविच ने उसे कितना अच्छा तिरेंदा दिया था! माही का इतना लम्बा धारीदार कांटा! एक धारी काली, एक सफ़ेद, एक काली, एक सफ़ेद। सारी वोल्गा पर किसी के पास ऐसा तिरेंदा न

मिले। हां, कांटे के एक सिरे पर छेद हो गया था। और अगर छेद में से कांटे में पानी भर गया, तो तिरेंदा डूब जायेगा। पर आर्सेनी रोमानोविच ने अटारी पर मधुमक्खियों के छत्ते का चौखटा ढूंढ़ लिया था और वह छेद में मोम भर देना चाहते थे। वैसे तो मोम पड़ा-पड़ा चकमक सा सख्त हो गया था। पर आर्सेनी रोमानोविच के पास स्पिरिट लैम्प है, उस पर मोम पिघलाया जा सकता है। हां, स्पिरिट अभी नहीं है, सो लैम्प जलता नहीं। पर मिट्टी के तेल से भी काम चलाया जा सकता है। अभी थोड़े दिन पहले ओल्गा अदामोव्ना कहीं से मिट्टी का तेल खरीद लाई थीं और अल्योशा को पता था कि उन्होंने उसे कहां छिपा रखा है।

अल्योशा की सारी मुसीवतों की जड़ ओल्गा अदामोव्ना ही हैं। वही हर वक्त आर्सेनी रोमानोविच की चुगली करती रहती थीं: बुड्ढा वेचारे अल्योशा को विगाड़ डालेगा! ज़रूर उन्हें आर्सेनी रोमानोविच से जलन होती होगी, तभी ऐसे कहती फिरती हैं! आखिर वह आर्सेनी रोमानोविच का मुकावला थोड़े ही कर सकती हैं! उनका मुकावला कौन कर सकता है! मां को छोड़कर दुनिया में अगर सवसे प्यारा कोई है तो आर्सेनी रोमानोविच ही। यदि अल्योशा से कोई पूछे कि वह बड़ा होकर क्या वनना चाहता है, तो वह जवाव देगा: आर्सेनी रोमानोविच।

वह सारे जीवन भर आर्सेनी रोमानोविच जैसा ही होना चाहता है, पर मन ही मन समझता भी है कि वह कभी ऐसा नहीं वन पायेगा। भला वह कभी हर चीज़ के वारे में इतना कुछ जान पायेगा, जितना आर्सेनी रोमानोविच जानते हैं? कहां से उसके पास ऐसा घर, ऐसा वाग और वे ढेर सारी चीजें आयेंगी, जिनसे गलियारा भरा हुआ है? और वह ठीहा? वह डूवतों को वचाने का चक्का? भला अल्योशा के पीछे लड़के ऐसे झुंड वनाकर चला करेंगे? और क्या कभी उसे ऐसी नौकरी मिलेगी, जैसी आर्सेनी रोमानोविच की है? पापा को देखो न, उनकी तो कोई नौकरी है ही नहीं। मन तो उनका भी करता होगा। और आर्सेनी रोमानोविच की टोपी? उनकी दाढ़ी? अल्योशा भला कहां ऐसी दाढ़ी वढ़ा पायेगा!

नहीं, अल्योशा भली भांति समझता है कि वह कभी आर्सेनी रोमानोविच नहीं वन पायेगा। वह तो वस दूसरे लड़कों की तरह उनके

साथ रहना चाहता है। टीलों पर, नदी किनारे घूमना चाहता है। आज़ाद, निडर होकर और सदा, सदा!

अल्योशा के आंसू सूख गये थे। उसने चेहरा पोंछा और मैलो की वटनों जैसी फलियां तोड़कर वहीं बाग में खा लेने का फ़ैसला किया, ताकि कोई उसे देख न ले। नहीं तो सबको अल्योशा के पेट की चिंता होने लगेगी। अभी उस दिन ओल्गा अदामोव्ना बाज़ार से मीठी, काली बेरियों का कसोरा खरीद लाई थीं। अल्योशा खाने बैठा ही था कि पापा ने कसोरा उठाकर कूड़े की बाल्टी में फेंक दिया। "देवी जी, अगली बार आप खट्टी बेरियां ले आना, उनसे जल्दी हैज़ा हो जायेगा!" गुस्से में उन्होंने कहा था।

पापा यों भी हर बात से डरने लगे थे। कभी वह कहने लगते कि वे सब भूखों मर जायेंगे। या उदास होकर ठंडी सांस भरते: "आस्या, यहां किसी को हमारी ज़रूरत नहीं है।" या कभी ऐसी बात कहते, जो अल्योशा बिल्कुल ही न समझ पाता: "अल्योशा तो शायद बुढ़ापे में कुछ देख ले, पर आस्या, हम तुम कुछ नहीं देख सकेंगे।"

"पापा, अगर तुम्हें ठीक दिखाई नहीं देगा, तो ओल्गा अदामोव्ना जैसी ऐनक खरीद लेना," तब अल्योशा ने कहा था।

"वाह रे, मेरे बुद्धू," पापा ने जवाब में कहा था।

ये सब बातें याद करते हुए अल्योशा ने आखिरी फलियां खा लीं और झुरमुट में से निकलकर पगडंडी पर आया। यहां उसने सिर उठाया और सहसा ऊपर गलियारे की खुली खिड़की में फ़ौजी को देखा, जो बाग की ओर पीठ किये खड़ा था। उसकी छोटे-छोटे बालों वाली गुद्दी और एकदम सपाट पीठ देखकर वह तुरंत ही उसे पहचान गया और तुरंत ही सहम गया।

हाथ झाड़कर वह घर की ओर भागा। उसका जूता उतर गया, दौड़ते-दौड़ते ही वह जूते के पिछल्ले को मलते हुए पंजा घुसाने की कोशिश कर रहा था। वह बेहद जल्दी में था। दिल की धड़कन उसके कानों में गूंज रही थी।

गलियारे में पापा और मां ज़ूबिन्स्की से बात कर रहे थे।

"जी, मैंने कहा न, मामला तय हो चुका है," ज़ूबिन्स्की विनम्रता-पूर्वक कह रहा था।

"पर यह तो हमारी सारी ज़िंदगी का सवाल है," मां ने हौले से जवाब दिया और अपनी असाधारणतया बड़ी आंखों से ज़ूविन्स्की की ओर देखा।

"मुझे अफ़सोस है। मैं समझता हूं, यह घोर असभ्यता है। किन्तु मैं क्या कर सकता हूं? मोर्चों पर स्थिति ऐसी है कि क्षमा कीजिये, शैतान जाने क्या से क्या हो जाये! मैं तो आज्ञा का पालन कर रहा हूं। परसों मकान खाली हो जाना चाहिए। इसे फ़ौजी महकमे के नाम कर दिया गया है। आप कृपया नागरिक दोरोगोमीलोव से कह दीजिये कि यह निर्णय अंतिम है।"

ज़ूविन्स्की ने एड़ियां बजाईं, टोपी पहनी और सल्यूट मारा।

अब फिर से, दूसरी बार अल्योशा ने सीढ़ियों पर उसके भारी बूटों की पटापट सुनी।

पापा चुपचाप गलियारे में से कमरे में चले गये। अल्योशा चुपके से दरवाज़े के पास सरक गया और सांस रोके खड़ा हो गया। दौड़कर आने से अभी तक उसका दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था। अभी तक उसका डर दूर नहीं हुआ था। ज़ूविन्स्की के शब्द – अंतिम निर्णय – घंटे की घनघनाहट की तरह धीरे-धीरे हवा में विलय नहीं हुए थे, बल्कि उनकी गूंज बढ़ती जा रही थी, मानो कोई इंजन चला आ रहा हो। इंजन अब सड़क पर बढ़ रहा है। अब वह बाग में घुस आया है और पेड़ों को कुचल रहा है। वह घर में घुस आया है और गलियारे में आर्सेनी रोमानोविच की इतनी अच्छी, प्यारी-प्यारी चीज़ें रौंद रहा है। अभी उसके भार से अल्योशा के पैरों तले फ़र्श ढह जायेगा।

"यह बात है!" खामोशी को चीरती पापा की तीखी आवाज़ आई। उन्होंने मुड़कर मां की ओर देखा और क्षण भर बाद चिल्लाये:

"ऐसे मत देखो अपनी इन कासनी आंखों से!"

अल्योशा ने पहले कभी पापा को यों चिल्लाते नहीं सुना था।

पापा ने तम्बाकू की डिबिया उठाई, धम से पलंग पर बैठ गये और कांपती उंगलियों से सिगरेट बनाने लगे। मां उनके पास गईं, उनके सिर पर हौले से हाथ फेरा, जैसा अल्योशा को फुसलाने के लिए किया करती थीं।

"निराश मत होओ," वह बोलीं। "मेरी बात मानो। अभी उस जल्लाद इज़्वेकोव के पास जाओ। उससे बात करो, हमारी हालत की तस्वीर खींचो।"

"तस्वीर खींचो!" पापा ने मां की नक्ल उतारी। "अब तस्वीर खींचने का नहीं, हथौड़े मारने का वक्त है। फिर भी कोई नहीं सुनेगा... मैं उस छोकरे के सामने ज़लील होऊं? हमारी हालत! यह हालत नहीं है, यह अनर्थ है! समझीं?! हमारे लिए यह प्रलय है! कफ़न है! कब्र है! सूली है! मौत है!"

"ज़लील होने का क्या मतलब?" मां बोलीं। "जब बारिश हो रही हो, तो तुम छाता खोलते हो। इसका मतलब यह नहीं कि तुम बारिश के सामने ज़लील हो रहे हो।"

पापा उछलकर खड़े हो गये, फिर क्षण भर खड़े रहकर शांत स्वर में बुदबुदाये:

"मेरी टोपी कहां है?"

उन्होंने बाल्टी में से चुल्लू भर पानी लेकर छिड़क दिया और गीला हाथ बालों पर फेरा, कंघी की, टाई ठीक की। फिर मां का हाथ पकड़कर देर तक अपने होंठ उस पर रखे रहे।

"अच्छा, नाराज़ मत होना," अस्फुट स्वर में उन्होंने कहा।

गलियारे में बेटे पर उनकी नज़र पड़ी। अल्योशा दरवाज़े में से सरककर मां के पास जाना चाहता था। पर पापा ने उसे पकड़ लिया, छोटे बच्चे की तरह कोहनियों से उसे सिर के ऊपर उठा लिया, फिर थोड़ा नीचा करके माथा चूमा। अल्योशा का कलेजा बल्लियों उछलने लगा, उसने पूछा:

"पापा, पापा, आप सचमुच आर्सेनी रोमानोविच को वह अंतिम निर्णय की बात नहीं बतायेंगे न? है, न?"

पापा ने उसे फ़र्श पर खड़ा कर दिया।

"जा, मां तुझे सब कुछ समझा देंगी..."

बाहर सड़क पर अलेक्सान्द्र व्लादीमिरोविच पास्तुख़ोव को अजीब सा लग रहा था। लोगों की ओर उसका ध्यान आकर्षित नहीं हो रहा था, गर्मी भी उसे महसूस नहीं हो रही थी, यहां तक कि उसकी घ्राण-शक्ति भी मंद पड़ गई लगती थी। उसके लिए सब कुछ एक विचार में सीमित होकर रह गया था और यह विचार एक शूल की भांति मन में चुभ रहा था। उसने इसे "मृत्यु दण्ड सुननेवाले व्यक्ति की अंतिम घड़ी" की संज्ञा दी। एक ओर एक यथार्थ था, जिसका

महत्व सबसे बढ़कर था, दूसरी ओर, इस यथार्थ का कोई अर्थ ढूंढ़ पाने की उत्कट इच्छा थी – यही दो बातें एक साथ उसके दिमाग पर हावी थीं। यथार्थ यह था कि उसे मृत्यु दण्ड सुना दिया गया था। इस यथार्थ में कुछ अर्थ ढूंढ पाने के प्रयासों से उसके मस्तिष्क में अंतर्विरोध की लहरें रह-रहकर उठ रही थीं: कभी वह इस दण्ड को स्वीकार कर लेता और कभी उस पर भड़क उठता।

गृहयुद्ध भी एक यथार्थ था। इस युद्ध के अलग-अलग ब्योरों पर विचार किये बिना पास्तुख़ोव उन्हें अभिन्न समग्रता में देखता था, ठीक वैसे ही जैसे "मृत्यु" शब्द में ही दण्डप्राप्त व्यक्ति जीवन से बिछुड़ने के दसियों ब्योरे देखता है।

वह नगर की शांत सड़कों पर चला जा रहा था, पर पास ही कहीं, गलियों-सड़कों के पार उसे निरंतर बढ़ते कोलाहल का आभास हो रहा था। लगता था मानो जुलाई का ज्वालामुखीय विस्फोट नगर की बेखबर शांति भंग करने बढ़ता चला आ रहा है।

जुलाई में व्रांगेल की काकेशियाई सेना वोल्गा के तट पर धीरे-धीरे कमीशिन नगर की ओर बढ़ती चली आ रही थी। एक महीने से भी कुछ पहले ही येकातेरीनोदार में दक्षिणी रूस की सेना के नाम जारी किये गये आदेश में देनीकिन ने कोल्चाक को रूस का सर्वोच्च शासक स्वीकार कर लिया था, और इसके उत्तर में सर्वोच्च शासक ने जनरल को "गहरे आभार" का तार भेजा था। पूर्वी और दक्षिणी रूस की प्रतिक्रांतिकारी शक्तियों के इस प्रकार मिल जाने के शीघ्र ही बाद देनीकिन अधिकृत नगर त्सरीत्सिन पहुंचा। वहां अपनी फ़ौजों की परेड के बाद उसने एक नये आदेश पर हस्ताक्षर किये, जो आत्मविश्वास भरे इन आडम्बरपूर्ण शब्दों के साथ आरम्भ होता था: "रूस के हृदय – मास्को – पर अधिकार करने के अंतिम लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए हम आदेश देते हैं..."

इस आदेश में प्रत्येक श्वेत जनरल के अलग-अलग कार्यभार विस्तार-पूर्वक निर्धारित किये गये थे। यह आदेश पढ़कर बेबस ही तोलस्तोय के 'युद्ध और शांति' के जनरल फ़्फ़ूल की याद आती थी, रूसी जनरल की बेढब सिली वर्दी पहने उस जर्मन विद्वान की, जो रणक्षेत्र के मानचित्र का अध्ययन करते हुए सैद्धांतिक योजनाएं बनाने में ही निपुण था। इस आदेश के अनुसार व्रांगेल को सरातोव – र्तीश्चेवो – बलाशोव के

मोर्चे पर निकलना था तथा पेंज़ा और नीज्नी नोवगोरोद से होते हुए मास्को की ओर बढ़ना था। सिदोरिन को वोरोनेज – कोज़्लोव – र्याज़ान की दिशा में तथा येलेत्स – कशीरा की दिशा में हमला करना था। माइ-मायेव्स्की को कूर्स्क – ओर्योल – तूला होते हुए मास्को पर धावा बोलना था। दक्षिण में कीयेव और ख़ेर्सोन, निकोलायेव और ओदेस्सा पर कब्ज़ा करने का लक्ष्य रखा गया था।

परन्तु उधर फ़्रूंज़े ने वसीली चपायेव को उराल्स्क पर कब्ज़ा करने का आदेश दिया था, और देनीकिन का 'मास्को आदेश' जारी किये जाने के एक दिन पहले ही चपायेव की फ़ौजें उराल्स्क की ओर बढ़ने लगी थी। कज़्ज़ाकों की हार हुई और पांच दिन बाद वे दक्षिण की ओर भाग चले। इसके और पांच दिन बाद फ़्रूंज़े के आदेश के अनुसार निर्धारित तिथि को चपायेव ने उराल्स्क पर पड़े सफ़ेद गार्डों के घेरे को तोड़कर अपने रिसाले के साथ नगर में प्रवेश किया। इसके चौबीस घंटे बाद ही पूर्वी मोर्चे पर लाल सेना को एक और विजय प्राप्त हुई: ज़्लातोऊस्त नगर पर अधिकार कर लिया गया, जबकि उराल पर्वतों के पार खदेड़ दिये गये कोल्चाक के सफ़ेद गार्ड साइबेरिया में पीछे हटने लगे।

रात्रि के अंधकार में जंगल में भटकता व्यक्ति यह जानता है कि कहीं प्रकाश है, खुला रास्ता है। परन्तु इस ज्ञान से उसकी यह अनुभूति दूर नहीं होती कि वह अंधकार में है और बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं है। पास्तुख़ोव को उराल्स्क की ख़बर मालूम थी, ज़्लातोऊस्त के बारे में भी उसने सुना था। उसे यह भी पता चल गया था कि लाल गार्ड त्सरीत्सिन पर जवाबी हमला करने की तैयारी कर रहे हैं। किन्तु अपनी सभी इंद्रियों से उसे सरातोव के पास ही पास आते जा रहे मोर्चे की घुटन की ही अनुभूति हो रही थी। युद्ध ज्वार की भांति नगर पर चढ़ता चला आ रहा था, नगर के सिंहद्वार पर युद्ध की तूती बज रही थी, युद्ध पास्तुख़ोव पर टूट रहा था, पास्तुख़ोव पर, उसकी आस्था और अल्योशा पर, गिलास में सजाये उसके फूलों पर, उसकी हस्तलिपियों, उसके विचारों पर, भविष्य की उसकी आशाओं पर, उसके सारे जीवन पर। इतिहास ने, समय ने, कैलंडर ने, घड़ी की सूइयों ने पास्तुख़ोव को युद्ध की सज़ा सुना दी थी। मृत्यु दण्ड सुना दिया था। यह एक यथार्थ था।

इस यथार्थ में भला कोई अर्थ कैसे ढूंढ़ा जा सकता था? क्योंकर अलेक्सान्द्र पास्तुख़ोव उस युद्ध में जान गंवाये, जिसका उसने आह्वान नहीं किया था, जिसे वह नहीं चाहता था, जिससे वह दूर-दूर ही रहने की कोशिश करता आया था? आखिर दण्ड तो अपराध के लिए, दोष के लिए, उल्लंघन के लिए दिया जाता है। उसने जीवन की किस सीमा का उल्लंघन किया है? उसका दोष क्या है? वह क्रांतिकारी लाल पक्ष का नहीं है, इसलिए उसे प्रतिक्रांतिकारी सफ़ेद पक्ष का माना जायेगा। वह सफ़ेद पक्ष का नहीं है, इसलिए उसे लाल पक्ष का माना जायेगा। उसे इसीलिए सजा सुनाई गई है कि वह न लाल है, न सफ़ेद। पर क्या सारी दुनिया या लाल है, या सफ़ेद? अगर पास्तुख़ोव पीला है तो? मार डालो उसे! नीला है तो? तो भी मार डालो! पर पीले या नीले क्यों नहीं मारते, लाल और सफ़ेद ही क्यों मारते हैं? वैसे तो हरे भी हैं, और वे भी मारते हैं। मज़े की बात यह है कि ये हरे भाई-बंधु कहलाते हैं – भाई-बंधु जो मारते हैं, हरे भाई, जंगल में छिपते-फिरते भगोड़े। उसी जंगल में जहां पास्तुख़ोव अंधकार में भटक गया है। वह भटक गया है, उसकी मृत्यु निश्चित है। यह एक यथार्थ है। और इस यथार्थ का कोई अर्थ नहीं समझा जा सकता। क्योंकि मृत्यु दण्ड पानेवाला दूसरों के लिए अपनी मृत्यु का महत्व तो समझ सकता है, लेकिन अपने लिए अपनी मृत्यु का महत्व नहीं समझ सकता: किसी कारण से इतिहास को, समय को, कैलंडर को, घड़ी की सूइयों को उसकी मृत्यु की आवश्यकता है, पर स्वयं उसे इस मृत्यु की कोई आवश्यकता नहीं है। उसके लिए, पास्तुख़ोव के लिए, जो मर जायेगा, मृत्यु में कोई अर्थ नहीं है। और उसका मस्तिष्क मृत्यु के इस विचार का विरोध करता है।

परन्तु उसका मस्तिष्क सहसा मृत्यु को स्वीकार कर लेना चाहता है, हालांकि वह स्वयं यह नहीं चाहता। वह यह सोचता है: मनुष्य के लिए ऐतिहासिक परिस्थितियां ऐसा ही यथार्थ हैं, जैसा कि स्वयं उसकी प्रकृति। उसे अपना जीवन-काल बढ़ाने के लिए प्रकृति की शक्तियों से संघर्ष करने का अवसर प्राप्त है। परन्तु विजय अंततः प्रकृति की शक्तियों की ही होती है और उसकी मृत्यु। उसे यह अवसर प्राप्त है कि वह परिस्थितियों को देखते हुए अधिक सशक्त रुख अपनाये और अपना जीवन-काल बढ़ाने के लिए संघर्ष करे। परन्तु अगर वह यह पूर्वानुमान

लगाने में असमर्थ है कि कौन सा रुख उसके जीवन की रक्षा करेगा, और वह असामयिक मृत्यु का शिकार हो जाता है, तो उसके लिए बस यही शेष रह जाता है कि वह इस बलि में कोई अर्थ ढूंढ़े। बलि की निरर्थकता में अर्थ ढूंढ़े। और वह यह अर्थ ढूंढ़ रहा है। अगर एक युवा, स्वस्थ, प्रतिभाशाली व्यक्ति, जैसा कि पास्तुख़ोव अपने आप को समझता है, व्यर्थ की ही बलि चढ़ जाता है, तो लोग उसकी मृत्यु की निरर्थकता समझ जायेंगे। लोग एक, दो, दस पास्तुख़ोवों को मार डालेंगे और सहसा यह पायेंगे कि उन्हें बेकार ही मारा। वे यह देखेंगे कि यह क्षति केवल निष्फल ही नहीं है, बल्कि इससे कोई लाभ नहीं, यह हानिकारक है। वे यह समझ जायेंगे, होश में आ जायेंगे और तब निरर्थक बलि सार्थक हो जायेगी।

परन्तु यहां फिर से पास्तुख़ोव के विचारों का क्रम अपने प्रस्थान-बिंदु पर आ पहुंचता है। यह सच है कि बलि सार्थक हो सकती है। किन्तु बलि का अर्थ उन लोगों के लिए ही है, जिनके लिए बलि दी गई है, उनके लिए नहीं जिन्होंने बलि दी है। जिसने "अपने भाई-बंधुओं के लिए" अपनी बलि दी, उसने कुछ नहीं पाया। पानेवाले भाई-बंधु हैं। कौन हैं ये भाई-बंधु? किनकी खातिर पास्तुख़ोव का अंत होना चाहिए?

वह अपने मित्रों, अपने बंधुओं के बारे में सोचता है। कहां हैं वे? आस्या? अल्योशा? अगर वह मर गया, तो उन्हें दुख झेलने पड़ेंगे। सेंट पीटर्सबर्ग के उसके मित्र? वे धरती पर जाने कहां-कहां तितर-बितर हो गये हैं और उन्हें उससे कोई वास्ता नहीं है। थियेटरों के डायरेक्टर, अभिनेता मण्डलियां? वे उसकी मृत्यु से कुछ सीखेंगे तो क्या, उन्हें बस उसके मरने का अफ़सोस ही होगा। पास्तुख़ोव के मर-मिट जाने पर किसको लाभ होगा? दो-तीन कलमघिस्सुओं को, जिनके मार्ग में पास्तुख़ोव की सफलता बाधक थी। वे मिलकर अखबार में उसकी मृत्यु सूचना छपवा देंगे और फिर तलवों से घड़ियालू आंसू पोंछते हुए इस खुशी से नाचेंगे कि अब पास्तुख़ोव का कोई भी नया नाटक नहीं छपेगा। तो क्या उन्हें नाचने-कूदने का अवसर देने के लिए ही उसे मरना चाहिए?

नहीं, पास्तुख़ोव के कोई मित्र नहीं हैं। शायद सारी विपदा यही है

कि उसका कोई मित्र नहीं है? सम्भव है अगर उसके मित्र होते, तो वे यह निश्चय करने में उसकी मदद करते कि वह किधर जाये? अगर इतिहास, समय, कैलंडर, घड़ी की सूइयां – सबने उसे मृत्यु दण्ड सुना दिया है, तो वह किस खातिर अपनी बलि दे? पास्तुख़ोव को अपना मार्ग चुनना था, हां, हां, अपना मार्ग चुनना था! उसके सारे जीवन का, सारे अस्तित्व का सार एक ही बात में है और वह यह है कि पास्तुख़ोव अपना मार्ग चुन ले!

इस तरह मृत्यु दण्ड पानेवाले व्यक्ति की अनुभूति लिये पास्तुख़ोव इज़्वेकोव के यहां पहुंचा। उसे स्वागतकक्ष में रुकने को कहा गया। वह समझता था कि यहां उसका अनादर किया जा सकता है और वह इस अनादर के लिए तैयार था। उसके ठवन तक में यह भाव था कि वह सब कुछ सह लेगा। लेकिन यह उसकी गलतफ़हमी थी: उसका अनादर करने का इरादा किसी का नहीं था। आधेक घंटे में इज़्वेकोव बेहद जल्दबाज़ी में बाहर निकला:

"माफ़ करना, टेलीफ़ोन पर कुछ ज़रूरी बातें थीं। चलिये, अंदर चलिये। आपको एतराज़ न हो तो मैं खाना खा लूं?"

आफ़िस के बगल में छोटे से कमरे में पहुंचकर इज़्वेकोव ने दो प्लेटों पर पड़ा हुआ कपड़ा उठाया। एक प्लेट में बाजरे का दलिया था और दूसरी पर एक सेब, जो अभी पूरी तरह पका नहीं था, और सबसे सस्ती डबलरोटी का एक टुकड़ा।

"लीजिये, सेब खाइये," इज़्वेकोव ने कहा।

"जी नहीं, धन्यवाद। मुझे डर है मैं आपके काम में बाधा डालूंगा। वैसे मेरा काम छोटा सा ही है।"

"नहीं, नहीं, बिल्कुल नहीं," चम्मच से दलिया मुंह में डालते हुए इज़्वेकोव ने उसकी बात काटी। "खा लीजिये सेब। हमारे सोवियत बागों का है, रोकोतोव्का का। गये हैं कभी वहां?"

"हां। बड़ी प्यारी जगह थी।"

"अब भी है।"

"आपने देखी है?"

"नहीं। मैं कल्पना कर सकता हूं।"

पास्तुख़ोव के मन में इस नौजवान के प्रति कौतूहल जागा, जो

ठंडा दलिया ऐसे मज़े से खा रहा था, जैसे किसी बहुत ही नफ़ीस खाने से उसकी भूख जागी हो। वैसे उसकी यह भूख पास्तुख़ोव का कौतूहल नहीं जगा रही थी (इन दिनों शायद ही कोई ऐसा आदमी था, जो बिना भूख के खाना खाता हो)। उसे तो इस बात से कौतूहल हो रहा था कि खाना खाते हुए भी उसके चेहरे पर किसी चिंताजनक विचार की छाप बनी हुई थी, पर यह विचार प्रत्यक्षत: उसके खाने में ज़रा भी विघ्न नहीं डाल रहा था।

"आजकल तो क्या बाग, क्या खलिहान सभी एक जैसे हैं।"

"एक जैसे अच्छे, या एक जैसे बुरे?"

"यही बहुत है कि सब एक जैसे हैं। मेरे विचार में मानवजाति का सारा दुर्भाग्य इन समानता की शिक्षाओं के कारण ही है। जीवन का कोई सामान्य, सबके लिए एक जैसा रूप नहीं बनाया जा सकता, न ही मनुष्य के सुख का कोई एक जैसा रूप हो सकता है।"

इज़्वेकोव ने होंठों पर जीभ फेरी और मानो पास्तुख़ोव को आंख मारी।

"बहुत जी हो रहा फ़लसफ़ा झाड़ने का, है न? चेख़ोव के नायकों की तरह। ठीक है, हो जाये। तो पहले एक भ्रम दूर करना चाहिए। सामान्य का अर्थ एक जैसा नहीं है। सामान्य का अर्थ है, जो सबका है, एक जैसा नहीं। यह जो सामान्य है वह विविधतापूर्ण होगा, लेकिन सबके लिए समान रूप से उपलब्ध होगा। हर कोई अपनी इच्छा के अनुसार काम चुनेगा, कोई बागबानी करेगा, कोई सर्जन बनेगा, कोई हल चलायेगा, कोई इंजन। परन्तु हर किसी के लिए सुख समान रूप से उपलब्ध होगा।"

"अगर वह इस सुख से इन्कार नहीं कर देगा, तभी न," पास्तुख़ोव बोला।

"इन्कार करने में कोई फ़ायदा नहीं होगा।"

"किसी को फ़ायदा नहीं होगा, किसी को होगा। यह जो युद्ध चल रहा है, यह इसी बात का प्रमाण है।"

"हां, जब तक कि बंटवारा चल रहा है। जिन लोगों से अतिरिक्त सम्पदा छीनी जा रही है, उनका फ़ायदा उन लोगों के सुख से इन्कार करने में ही है, जिन्हें यह अतिरिक्त सम्पदा दी जा रही है," इज़्वेकोव मुस्करा दिया।

पास्तुखोव को उसके चेहरे पर एक नये संतोष की झलक दिखाई दी – अपनी श्रेष्ठता का चंचलताभरा संतोष। इज़्वेकोव बड़े मज़े से बात कहता और ऊपर से दलिया खा लेता, मानो सहज ही ढूंढ़ लिये गये तर्कों के लिए अपने आपको मज़ाक में इनाम दे रहा हो।

"यह सब विचारों का खेल है," पास्तुखोव ने कुछ रुखाई से कहा। "जीवन की प्रेरक शक्ति तो भावनाएं हैं।"

"और विचार भी!" इज़्वेकोव ने चट से जवाब दिया। "बल्कि विचार ही सर्वोपरि हैं, क्योंकि वे भावनाओं को संचालित करने का प्रयास करते हैं।"

"नहीं, यह ठीक नहीं है," पास्तुखोव ने कुछ झुंझलाते हुए विरोध किया। "पहले तो पीड़ा हुई, इशारा हुआ, चीख निकली, फिर ही शब्द उच्चारित हुआ। विचारों का जन्म भावनाओं से होता है, इसका उलट नहीं होता। जी हां, उलट नहीं होता। कटुता, घृणा, प्रेम सदा चेतना से अधिक सशक्त होते हैं। हम युद्ध नहीं चाहते, किन्तु उसके बिना काम नहीं चलता।"

"हम निरर्थक युद्ध नहीं चाहते, अर्थात वह युद्ध, जो बुरे इरादों के लिए लड़ा जाये।"

"आप ऐसा युद्ध चाहते हैं, जो प्रेम से प्रेरित हो? ऐसा युद्ध, जो अपने इरादों से, अपने उद्देश्य से भला युद्ध हो, क्यों? परन्तु इसका अर्थ यह है कि आप चेतना से आगे जो भावना है उसे उदात्त बनाना चाहते हैं, घृणा की भावना को सार से समृद्ध करना चाहते हैं, क्योंकि युद्ध घृणा से ही उत्पन्न होता है। और यह भावना उस विचार से अधिक प्रबल है, जिसे आप इससे आगे रखना चाहते हैं। युद्ध की बुराई उसके उद्देश्यों की भलाई से अधिक प्रबल है।"

इज़्वेकोव ने खाली प्लेट एक ओर को सरका दी और सख़्ती से पास्तुखोव की आंखों में आंखें गड़ाकर देखा।

"'आप' का यहां क्या मतलब है? कौन हैं ये?" उसने नीचे स्वर में पूछा।

पास्तुखोव क्षण भर को चुप रहा, फिर कंधे बिचकाकर जवाब दिया:

"मेरा मतलब व्यक्तिगत तौर पर आप से नहीं है। परन्तु चूंकि आपने 'हम' कहा है... मैं आम तौर पर बात कर रहा हूं..."

3*

"अपने आप को अलग रखने के लिए?"

"क्या इसकी मनाही है?"

"यह आपका हक है। मैं तो सिर्फ़ यह जानना चाहता था कि 'हम' बात कर रहे हैं, या 'हम' और 'आप'। प्रत्यक्षत: यहां दूसरा वाला मामला है। तब मैं केवल 'हम' लोगों की बात करूंगा। जी हां, इस युद्ध में हम घृणा से प्रेरित हैं। परन्तु हमारी घृणा अंधी नहीं है। इसकी नज़र तेज़ है। यह है न्याय की नज़र। हम गरीबों की, अभागों की न्यायोचित लड़ाई लड़ रहे हैं, मानवोचित जीवन के अधिकार के लिए लड़ रहे हैं। हम युद्ध नहीं चाहते, हम सबके लिए शांति चाहते हैं। पर हमारे खिलाफ़ हिंसा बरती गई है, हम पर युद्ध थोपा गया है। हमने इस चुनौती को स्वीकार किया है। हम युद्ध के विरुद्ध लड़ रहे हैं। इसलिए हमारा युद्ध बुरे इरादों के लिए नहीं है, निरर्थक नहीं है। यह युद्ध, जैसा कि आपने कहा है, भला युद्ध है। इसका महान अर्थ है और उदात्त ध्येय। अगर हम हथियार डाल देंगे, तो हम अपराधी होंगे, क्योंकि हमें क्षमा नहीं किया जायेगा, हमें कुचल डाला जायेगा और अभागे और भी अधिक अभागे हो जायेंगे।"

पास्तुख़ोव ने इज़्वेकोव को रोकने के लिए हाथ उठाया। रास्ते में उसके मन में जो व्यथा उठी थी, वही फिर सहसा लौट आई थी, उसे दबाते हुए, हौले-हौले वह बोला:

"आप जिन ध्येयों की चर्चा कर रहे हैं, उनकी महानता में मुझे कभी भी संदेह नहीं रहा है। मैं इतना भोला-भाला नहीं हूं और आखिर इतना हीन व्यक्ति भी नहीं हूं कि सार्थक संघर्ष से डरूं। परन्तु सच मानिये, मैं यह देखकर आतंकित हो उठता हूं कि भलाई के लिए संघर्ष में इन्सान को इतनी बुराई करनी पड़ती है!"

इज़्वेकोव ने चुपचाप सेब उठाया, सहज ही उसके दो टुकड़े कर दिये और मुस्कराते हुए आधा सेब पास्तुख़ोव की ओर बढ़ाया:

"चख देखिये..."

पास्तुख़ोव देर तक हिला-डुला नहीं, मन में गहरी दबी आशंका लिये वह हरे-सफ़ेद आधे सेब को देखता रहा, जिसके गूदे पर चू आई रम की बूंदें चमचमा रही थीं।

"अच्छा, मैं ख़ुद ही खा देखता हूं," इज़्वेकोव ने फिर से मुस्कराते

हुए कहा और आधे सेब को दांतों से कच से दो टुकड़ों में काट लिया।

बचपन से ही सुने हुए आदम-हव्वा के किस्से की ओर संकेत इतना प्रत्यक्ष था कि पास्तुख़ोव ने उस पर कुछ कहने की ज़रूरत नहीं समझी। वह टकटकी लगाये यह देख रहा था कि कैसे इज़्वेकोव सेब के साथ रोटी चबा रहा है। किरील के उभरे-उभरे जवड़े ज़ोर से चल रहे थे। लगता था वह खाने का आनंद लेने में पूरी तरह मग्न है। पर उसकी नज़रों में किसी चिंताजनक और साथ ही स्वप्निल विचार की झलक बनी हुई थी। सेब चबाते हुए वह बोला :

"आप कहते हैं कि युद्ध से आतंकित हैं, लेकिन युद्ध से आपका अभिप्राय क्रांति है। कम से कम मुझे तो यही समझ में आता है।"

"मेरा अभिप्राय मनुष्य द्वारा मनुष्य का विनाश किये जाने से है। और इस विनाश को क्या संज्ञा दी जाती है, इससे कोई फ़र्क पड़ता है क्या?"

"आप युद्ध में नहीं लड़े हैं न?.. फ़ौज में एक अवधारणा है: 'व्यययोग्य सामग्री'। हमारी नैतिकता की यह अपेक्षा है कि हम क्रांति के हाथों में भी ऐसी व्यययोग्य सामग्री दें। क्यों नहीं? अगर सेनाओं को सदा से यह अधिकार प्राप्त रहा है कि वे विजय के नाम पर, शत्रु से रक्षा के नाम पर विनाश करने के उद्देश्य से सम्पत्ति का, मानव जीवन का उपयोग कर सकती हैं, तो हम क्रांतिकारी को कैसे हर तरह की सम्पत्ति से, मानव जीवन के अधिकार से वंचित कर सकते हैं, जबकि उसका ध्येय नये संसार का निर्माण करना है? सैनिक से खर्च किये गये गोला-बारूद के लिए, नष्ट किये गये घरों, सम्पत्ति और जीवनों के लिए कोई जवाबदेही नहीं की जाती, बशर्ते यह सब उसने विजय की खातिर किया हो। तो फिर क्रांतिकारी से यह क्यों पूछा जाता है कि कोई प्लेट क्यों टूटी, किसी का हाथ-पैर क्यों टूटा, भले ही यह क्षति प्रत्यक्षतः शत्रु की हो?"

"बात तो तर्कसंगत है, पर निर्मम", पास्तुख़ोव ने कहा।

"और युद्ध? वह विश्वयुद्ध, जिस पर आपने शायद तब तक कोई आपत्ति नहीं की होगी, जब तक कि वह क्रांति में नहीं बदल गया। वह निर्मम था, और तर्कहीन भी। ठीक है न?"

किरील विजेता की भांति पास्तुख़ोव की ओर देख रहा था।

भगवान जाने इस अप्रत्याशित शास्त्रार्थ में वे कहां से कहां पहुंच जायें! – पास्तुख़ोव के मन में यह विचार आया, और उसने, जहां तक हो सका, अलसाये स्वर में यह दिखाते हुए कि विवाद करते थक गया है, कहा:

"मनुष्य की प्रकृति ही ऐसी है कि वह हर बात की व्याख्या करना चाहता है। वह जो कुछ देखता है या उसके चारों ओर जो कुछ घटता है, जब तक वह उसकी व्याख्या नही कर लेता, तब तक उसे चैन नहीं पड़ता। और एक बार व्याख्या पा लेने पर वह कुछ भी स्वीकार करने को तत्पर हो जाता है।"

"स्वीकार करने को नहीं बल्कि उसने जो सही व्याख्या पा ली है, उसकी रक्षा करने को तत्पर रहता है।"

बाप रे! इस बातूनी को तो बहस का चस्का लगता है! आखिर पास्तुख़ोव ऐसी कठिन घड़ी में यहां शास्त्रार्थ लड़ाने तो नहीं आया। उदास स्वर में वह बोला:

"पर क्या... क्या आप इसीलिए जान खतरे में डालकर ट्राम के पायदान पर लटकते जायेंगे कि किसी व्याख्या तक पहुंच जायें? क्या यह बेहतर नहीं होगा कि चैन से पैदल चला जाये?"

"गधे पर चढ़के भी जा सकते हैं," इज़्वेकोव ने उसे छेड़ते हुए कहा।

पास्तुख़ोव ने फिर से कंधे बिचकाये:

"मुझे लगता है आप व्याख्याओं के पीछे भागना चाहते हैं, रूस को समझना नहीं चाहते।"

"जी नहीं, मैं उन लोगों में से हूं, जो रूस को समझना चाहते हैं, ताकि नया रूस बना सकें। उन लोगों में से नहीं, जो उसे समझना चाहते हैं ताकि पुराना रूस बनाये रख सकें।"

"पर एकबारगी ही सब कुछ पुराना ठुकरा देने में भी मुझे कोई खास समझदारी नहीं दिखती। और भी बहुत से लोग ऐसा ही सोचते हैं। मैं अकेला नहीं हूं।"

"मुझे पता है, आप अकेले नहीं हैं," इज़्वेकोव की हंसी फूटी। "पिछले महीने के आंकड़ों के अनुसार दो लाख लोग ऐसे हैं। अब शायद ज़्यादा ही होंगे।"

"कैसे आंकड़े?"

"भगोड़ों को पकड़ने के केंद्रीय आयोग के।" (इज़्वेकोव ने चेहरे पर फैल आई मुस्कान को हाथ से छिपा लिया।) "वैसे हो सकता है, इससे कहीं कम ही हों। कौन जाने आयोग आंकड़े वढ़ा-चढ़ाकर पेश करता हो यह दिखाने के लिए कि खाली नहीं बैठे हैं, खूब ज़ोर-शोर से पकड़ रहे हैं भगोड़ों को।"

थोड़ी देर तक पास्तुखोव कुछ नहीं बोला, मानो यह दिखाते हुए कि इज़्वेकोव हद से वाहर जा रहा है, और फिर सहसा गम्भीर लहजे में, मानो मज़ाक दरकिनार करते हुए, ऐसा विचार व्यक्त किया, जिस पर इज़्वेकोव को और भी ज़्यादा हंसी आई :

"आप बोल्शेविक हैं न ? तो फिर आपकी पार्टी के अंतिम निर्णय के अनुसार आपको... कामरेड भगोड़ों के साथ काम करना चाहिए।"

"आपकी टिप्पणी में, जैसा कि कहते हैं..." इज़्वेकोव कोई उपयुक्त शब्द ढूंढ़ रहा था, पर पा न सका और खिलखिलाकर हंस पड़ा।

उसकी हंसी में मज़ा लेने का अंदाज़ इतना नहीं था, जितना चुनौती का, सो पास्तुखोव ने फ़ैसला किया कि हर तरह का मज़ाक नहीं चल सकता। वड़े रोब से खड़े होकर उसने अपना कोट झटका।

"भगोड़ा वह होता है, जो शपथ भंग करे। मैंने कोई शपथ नहीं ली है।"

इज़्वेकोव भी खड़ा हो गया। अपनी सीधी भौंहें सिकोड़कर मिंची-मिंची आंखों से उसने पास्तुखोव को सिर से पैर तक नापा।

"जब शहर में बाढ़ का खतरा हो, तो सभी नगरवासी बांध वनाने आते हैं, विना कोई शपथ लिये। और जो न आये, दुबककर बैठा रहे, वह भगोड़ा होता है।"

पास्तुखोव ने रूमाल निकालकर होंठ पोंछे और वहुत ही अदव से पूछा :

"आपने खाना खा लिया ?"

"हां, चलिये आफ़िस में चलें," इज़्वेकोव ने जवाव दिया।

आफ़िस में वह अपनी मेज़ के पास खड़ा हो गया यह दिखाते हुए कि वह जल्दी से जल्दी काम निपटा देना चाहता है।

"पता नहीं, हमारी इस दार्शनिक वहस के वाद आप मेरी मदद करना चाहेंगे कि नहीं," पास्तुखोव खिंचे-खिंचे लहजे में वोला। "हम

बेघर हो गये हैं। जिस घर में हम रह रहे थे, उसे सेना विभाग अपने किसी आफ़िस के लिए ले रहा है। यह दोरोगोमीलोव का घर है। दोरोगोमीलोव का नाम सुना है आपने? हां, उसे भी हमारे साथ निकाला जा रहा है।"

"दोरोगोमीलोव को?"

"जी हां। हमें कल ही घर खाली करना है। कहां जायें? मेरी कुछ समझ में नहीं आता। मेहरबानी करके या तो उन लोगों को घर खाली करवाने से रोकिये, या फिर हमें रहने की कोई जगह दिलाइये।"

तब जो बातचीत हुई, उसके लिए वाकई किसी फ़लसफ़े की कोई ज़रूरत नहीं थी। चूंकि घर सैनिक अधिकारी ले रहे थे, इसलिए इज़्वेकोव उन्हें रोक नहीं सकता था। और जहां तक नई रिहायश का सवाल था, तो नगर में स्थिति बहुत तंग थी, और पास्तुख़ोव को खुद ही कोई जगह ढूंढनी होगी। चौबीस घंटे में जगह ढूंढ़ पाना प्रत्यक्षतः असम्भव था, लेकिन इज़्वेकोव को और कोई रास्ता नज़र नहीं आता था।

"माफ़ कीजिये..." पास्तुख़ोव ने बुरा मानते हुए कहा, "पर अगर कल को लोग मेरे परिवार को जिप्सियों की तरह खुले आकाश तले अपने संदूकों, गट्ठरों पर बैठे देखेंगे, तो नगर सोवियत के बारे में क्या सोचेंगे?"

"यह नहीं हो सकता। आवास विभाग को आपको कोई न कोई रिहायश देनी होगी, भले ही अस्थाई तौर पर।"

"कहीं बैरक-बैरक में?" पास्तुख़ोव ने पूछा और ज़रा सा आगे झुका, मानो जो सकारात्मक उत्तर पाने का उसे विश्वास था, उसके लिए आभार प्रदर्शित कर रहा हो।

"हो सकता है," इज़्वेकोव ने भावहीन स्वर में उत्तर दिया। "आपको फ़्लैट दिलाने के लिए आवास विभाग नये घरों की ज़ब्ती तो कर नहीं सकता।"

पास्तुख़ोव मानो स्वयं अपना ही स्मारक बना खड़ा था, बांहें लटकी हुई, मूर्तिवत्, सारी आकृति ही मानो फूलकर बढ़ गई हो! सहसा ठंडी सांस भरकर लड़खड़ाती आवाज़ में वह बोला:

"भगवान जाने आप मुझे किधर धकेल रहे हैं!"

"इसमें मुझे कोई दिलचस्पी नहीं है कि मैं आपको किधर धकेल

रहा हूं," इज़्वेकोव ने तुरंत ही उत्तर दिया। "आप उम्र में मुझसे बड़े हैं, अपने दिमाग से काम ले सकते हैं... क्या बात है?" आफ़िस में दाखिल हुई कटे बालों वाली युवती से उसने पूछा।

"वहां मीटिंग में लोग आपका इंतज़ार कर रहे हैं।"

"हां, मेरा काम खत्म हो गया। अभी आता हूं।"

"अच्छा, नमस्ते," पास्तुख़ोव ने दबे स्वर में कहा और इज़्वेकोव से हाथ मिलाये बिना ही छोटे-छोटे कदम भरता कमरे से बाहर चला गया।

जैसे ही उसके पीछे दरवाज़ा बंद हुआ, इज़्वेकोव ने फ़ौजी कमिसार से फ़ोन मिलाने को कहा। उधर सेक्रेटरी फ़ोन का हैंडिल घुमा रही थी, हुक ठकठका रही थी, टेलीफ़ोन आपरेटर को झिड़की सुना रही थी, इधर इज़्वेकोव तेज़-तेज़ चलता हुआ आफ़िस के चक्कर लगा रहा था। आखिर वह खुद टेलीफ़ोन आपरेटर से जूझने लगा, फ़ोन मिलने पर उसने फ़ौजी कमिसार से कहा:

"सुनो, तुम्हारी शिकायत आई है मेरे पास कि तुम एक भले आदमी को घर से निकाल रहे हो... हां, हां, है एक भला आदमी... आर्सेनी रोमानोविच दोरोगोमीलोव। चाहो तो रागोज़िन से पूछ लो उसके बारे में... क्या, पहली बार सुन रहे हो? लोगों को बेघर किया जा रहा है और तुम्हें पता तक नहीं? मुझसे क्या पूछ रहे हो? मुझे तुमसे पूछना चाहिए – कौन आया था। तुम्हारे नाम से कोई घर खाली कराने आया था... क्या, तुम्हें कोई जगह नहीं चाहिए? अजीब बात है। भई, ज़रा पता लगा लो, क्या मामला है... हां, हां, जानता हूं, और भी ज़्यादा ज़रूरी काम हैं। तुम्हारा क्या ख्याल है, मेरे पास काम नहीं है? भई, ज़रा ठीक से जांच कर लो। आखिर यह अच्छी बात नहीं होगी। और हां, मुझे फ़ोन कर देना।"

किरील ने ज़ोर से अपनी जांघों पर हाथ मारे और खिड़की के पास चला गया। आखिर पास्तुख़ोव अपने मन से तो यह किस्सा घड़ नहीं सकता था! वह देखो, चला जा रहा है फ़ुटपाथ पर वैसे ही जैसे आफ़िस में से निकला था – झुंझलाया हुआ और अपनी झुंझलाहट दबाता हुआ। बस, लटकन में थोड़ा और रोब आ गया था, सिर थोड़ा और ऊपर उठ गया था, और दायां हाथ कदमों की ताल पर बड़ी शान से

और साथ ही सहज, स्वाभाविक रूप से झूल रहा था। नहीं, ऐसा आदमी कोई बेकार की बात नहीं कर सकता! ऐसे आदमी को पूरा विश्वास होता है कि वह संसार में व्यर्थ ही प्रकट नहीं हुआ है। ऐसे आदमी के लिए लोग रास्ता छोड़ते हैं, क्योंकि कद्र जाननेवालों का आदर करते हैं। हां, जरूर कुछ गड़बड़ है...

हां, यहां कुछ गड़बड़ थी। पास्तुख़ोव गरिमामयी चाल से चला जा रहा था। परन्तु यह उसकी जन्मजात लटकन थी, अपनी विलक्षण प्रकृति में विश्वास के अनुरूप शोभनीय ढंग से पृथ्वी पर डग भरने की आदत थी। जबकि पास्तुख़ोव के अंतरतम में पहले के आत्म-विश्वास का नामोनिशान तक न रहा था। इस संसार ने उसका तिरस्कार किया था, उसे दुतकारा था। उसका आहत मन बार-बार एक ही बात कहता जा रहा था: चले जा रहे हो तुम रोबदार डग भरते, अपनी सुडौल, सुंदर देह लिये, तुम जो कभी आज़ाद थे। जान लो, हां अच्छी तरह जान लो – ये तुम्हारे अंतिम डग हैं! देख लो चाव से अपने आपको – कैसी सुडौल, हृष्ट-पुष्ट, शानदार काया है! लिये जाओ इसे अज्ञात में! यह तुम्हारा अंतिम चाव है, तुम्हारी अंतिम घड़ी है! विदा ले लो, हर चीज़ से विदा ले लो जिसे तुम देख रहे हो! अपने आप से विदा ले लो, शीघ्र ही तुम्हारा अस्तित्व मिट जायेगा।

पास्तुख़ोव मनहूस शक्ल लिये घर लौटा, और आस्या समझ गई कि उनकी हार हुई है। उसने टोपी उतार फेंकी, झटके से कोट उतार डाला, धम से कुर्सी पर बैठ गया। वह पहले कभी भी इतना बोझिल नहीं दिखा था।

"तो?" क्षमायाचक मुस्कान के साथ आस्या ने पूछा।

"सांप मुझे ज्ञान का फल चखने का प्रलोभन दे रहा था," उसने कहा।

आस्या अधिक बेचैनी से, पर साथ ही चंचलता से मुस्कराई।

"तो क्या पाप हो गया?"

"जाओ, चाय बना लाओ।"

उसने इतनी तेज़ चाय गिलास में उंडेली कि आस्या को डर लगा कहीं उसके दिल को कुछ हो न जाये। वह लेट गया और सांझ घिरने तक छत की ओर ताकता लेटा रहा।

फिर वह आस्या को वाहर बाग में ले गया। वे एक पहिये के औंधे पड़े ठेले पर वैठ गये, जिसे अल्योशा बड़े शौक से चलाता था। वे धीरे-धीरे बातें करने लगे – दोनों के लिए ही ये वातें एकसमान स्पष्ट और महत्वपूर्ण थीं। मनों में निश्चय हो चुका था, पर दोनों बड़े धीरज से एक दूसरे को इस निश्चय की ओर ले जा रहे थे, उनके साथ जो कुछ घटा था – उस सव को एक वार फिर से याद करते, जांचते हुए।

उनका बस चलता तो वे इस भाड़-भंखाड़ भरे वाग की नीरवता में ही वसे रहते, जहां पैरों तले वेलों से उलझी घास का कालीन विछा हुआ था, मैलो के पौधे बाड़ से सटे हुए थे और सिर के ऊपर पाप्लर के घने वृक्षों का सायवान वना हुआ था। वेशक, यह स्वर्ग की वाटिका नहीं थी, किंतु चूंकि उन्हें यहां से भगाया जा रहा था, इसलिए उन्हें इसे छोड़ते हुए दुख हो रहा था। कल तक जो फ़रारी थे, आज उन्हें भगाया जा रहा था। अव उनके लिए एक ही रास्ता था कि वे दूसरी ऐसी जगह ढूंढ़ें, जहां उनके चैन में कोई विघ्न न पड़ सके। वह वलाशोव ज़िला, जो इतना अभिलाषित था और पहुंच से वाहर, जिसकी खातिर उन्होंने पीटर्सवर्ग छोड़ा था, वही फिर से उनका एकमात्र ध्येय वन गया। वेशक, वहां अभी भी वह कोठी है, जहां अनास्तासिया गेर्मानोव्ना – आस्या – के मां-वाप अपने अंतिम दिन काट रहे थे, वहां उन्हें दो जून की रोटी भी मिल जायेगी और रहने को घर भी, वहां कोई उनके निजी जीवन में दखल नहीं दे सकेगा। उन्होंने तुरंत ही वहां चल देने का निश्चय किया।

शाम को पास्तुख़ोव ने दोरोगोमीलोव को अपना निश्चय वताया।

दोरोगोमीलोव पिछले हफ़्ते भर से निरंतर उत्तेजित था। घटनाएं उसके अहं को मानो उकसा रही थीं। वह अपनी निष्क्रियता के लिए अपने आप को लानतें दे रहा था। नगर में बेचैनी वढ़ रही थी। हर कोई अपने-अपने ढंग से वढ़ते आ रहे खतरे का सामना करने की तैयारी कर रहा था। और वह अपने दफ़्तर में वैठा वही-खाते देखा करता था, जैसा कि सारी उम्र करता आया था। वह इस वात पर झुंझला रहा था कि ज़िंदगी के ढर्रे को बदलने में अक्षम था। वरसों से जिस घर में वह वसा हुआ था उसमें से निकाले जाने की सूचना पर सहसा उसके मन में कोई विरोध नहीं जागा, उल्टे एक दवी-दवी आशा ही थी कि शायद

इससे ही उसे कोई महत्वपूर्ण कदम उठाने का साहस मिलेगा – हो सकता है, वह सेना में भरती हो जाये, या शायद मोर्चे पर ही जाये। हां बिलकुल, वह अपने पुराने कोट की जगह फ़ौजी वर्दी पहन लेगा, पेटी कस लेगा, टाई उतार फेंकेगा, दाढ़ी मुंडवा लेगा और लम्बे-लम्बे बाल भी! मार्च तो वह अच्छी तरह से कर सकेगा, क्योंकि उसे पैदल चलने की खूब आदत थी। वैसे उसकी ज़िंदगी तो बीत ही गई है, पर अभी भी उसके शरीर में जो थोड़ी बहुत शक्ति बची है, उसे वह उदात्त ध्येय में लगायेगा।

पास्तुख़ोव के यह बताने पर कि वह कल ही अपने परिवार को बलाशोव ले जा रहा है, दोरोगोमीलोव ने हैरान होकर पूछा:

"यह आप क्या कह रहे हैं? वहां तो बिल्कुल पास ही लड़ाई चल रही है! बच्चे को लेकर ऐसी जगह कैसे जाया जा सकता है? वहां चारों ओर सफ़ेद गार्ड हैं!"

"हमारे जो हालात हैं, उसमें कोई फ़र्क नहीं पड़ता, कौन है – सफ़ेद या लाल। मुझे ऐसे हालात में डाल जो दिया गया है। हमें रहने को घर तो चाहिए," पास्तुख़ोव ने मानो हेकड़ी दिखाते हुए जवाब दिया।

दोरोगोमीलोव ने इस पर एक शब्द भी नहीं कहा। बस एक झटका सा खाकर पीछे हट गये और फिर शिष्टता दिखाने का कोई प्रयास तक न करते हुए अंधियारे गलियारे में से होकर अपने कमरे में चले गये।

अल्योशा ने यह छोटी सी बातचीत सुनी थी। वह यह देखकर स्तब्ध रह गया कि कैसे आर्सेनी रोमानोविच उसके पापा से मुंह मोड़कर चले गये थे। दोरोगोमीलोव के चेहरे पर उसने पहले कभी भी ऐसी भर्त्सना नहीं देखी थी। बड़ी मुश्किल से वह सोया और सारी रात उसे डरावने सपने आते रहे – कभी वह घंटाघर से, कभी पहाड़ से, कभी जहाज़ के मस्तूल से उफनते समुद्र में गिरता रहा। पसीने से तरबतर वह जाग जाता। उसे सुनाई देता कि मां और ओल्गा अदामोव्ना फ़र्श पर अखबार में चीनी के बर्तन लपेट रही हैं, पापा भारी सांस लेते हुए अटैचियों की चरमराती पेटियां कस रहे हैं।

जिस दिन पहली बार अल्योशा ने वीत्या और पाव्लिक को सचमुच लड़ते देखा था, तभी से वह उनका आदर करने लगा था। उसे लगता

था कि वे दोनों उससे कहीं बढ़कर हैं और इसलिए उनके प्रति उसके मन में श्रद्धामिश्रित भय का भाव था। और उनसे वह सदा सच बोलता था। सो, अगले दिन दोपहर को जब वे दोनों आर्सेनी रोमानोविच से मिलने आये, तो अल्योशा उन्हें सब कुछ बताने को तैयार हो गया। पर जब वह उनके साथ बाहर बगीचे में पहुंचा, तो उसे यह भास हुआ कि उन्हें पहले ही सब कुछ पता चल गया है। उसे लगा वह शर्म से गड़ा जा रहा है।

अल्योशा को आर्सेनी रोमानोविच के कमरे में वीत्या और पाव्लिक से हुई पहली मुलाकात खूब अच्छी तरह याद थी, लेकिन आज उनकी नज़रों में उस दिन से भी अधिक बेगानापन था। पाव्लिक ने तो निचला होंठ यों आगे को निकाल रखा था, मानो थूकने जा रहा हो। वीत्या सीटी बजा रहा था, अल्योशा यह धुन नहीं जानता था और इसलिए उसे लग रहा था कि वीत्या उसे चिढ़ाने के लिए ही ऐसा कर रहा है। आखिर वीत्या को मानो अल्योशा पर तरस आ गया, उसने तिरस्कारपूर्वक पूछा :

"क्यों, भाग लिये?"

"हम मां के घर जा रहे हैं। वहां फ़ार्म में नाना-नानी रहते हैं," अल्योशा ने जतन से समझाया।

"हां, हां, कहे जाओ। पहले क्यों नहीं गये थे? अब जब यहां गुत्थमगुत्था होनेवाला है..."

"कैसा गुत्थमगुत्था?" अल्योशा ने पूछा।

"वही..."

"ये लोग सफ़ेद गार्डिये हैं," पाव्लिक ने हिकारत से कहा।

"नहीं, हम सफ़ेद गार्डों के साथ नहीं हैं," अल्योशा ने हौले से कहा।

"तो फिर तुम लाल गार्डों के खिलाफ़ क्यों हो?" वीत्या ने पूछा।

"हम लाल गार्डों के खिलाफ़ नहीं हैं," अल्योशा ने विरोध किया, और उसकी एक आंख आंसू से चमकने लगी।

तीनों चुपचाप खड़े थे, एक दूसरे की ओर नहीं देख रहे थे।

"तुम नाराज़ हो?" अल्योशा ने सकुचाते हुए पूछा और वीत्या के थोड़ा पास खिसक गया।

"हमें क्या ज़रूरत पड़ी है!" पाव्लिक ने जवाब दिया।

"नाराज़ क्या होना?" वीत्या ने हामी भरी। "तू तो छोटा है, जहां कहेंगे, जाना पड़ेगा।"

"यह सब पापा कर रहे हैं," अल्योशा सहसा चिल्लाया। वह वीत्या का आभारी था कि उसने उसकी स्थिति समझ ली है। "मुझे तो आर्सेनी रोमानोविच को छोड़कर जाते दुख हो रहा है... और तुम्हें छोड़ते भी," उसने जोड़ा और उसका चेहरा गुलाबी हो गया।

"गरीब ज़्यादा अच्छे होते हैं," पाव्लिक ने कहा। "मेरा बाप तेरे से गरीब है, पर ज़्यादा अच्छा है। बस धत्ती है।"

"धत्ती का क्या मतलब?" अल्योशा ने पूछा।

"बस जब हत्थे से उखड़ जाता है, तो चढ़ जाता है।"

"पीटता है?"

"पीटता नहीं, पीता है! वाह रे भोंदू..."

वे थोड़ी देर और खड़े रहे, फिर पाव्लिक ने वीत्या को बुलाया:

"चल चलें, यहां क्या करना है?!"

अल्योशा से विदा लिये बिना ही वे चले गये और वह पिछली सीढ़ी के पास अकेला खड़ा रह गया। खुले दरवाज़े में से ऊपर से शोर आ रहा था। वहां भारी सामान गलियारे में निकाला जा रहा था।

अल्योशा को विह्वल कर रहे इस शोर के बीच कदमों की आहट सुनाई दी और आर्सेनी रोमानोविच दरवाज़े में प्रकट हुए – बिना टोपी के, कोट के बटन खुले हुए, लंबे बाल उलझे हुए। वह तेज़-तेज़ चलते हुए अल्योशा के पास से गुज़र गये, बाहर का फाटक खोलने ही लगे थे, पर फिर लौट आये।

अल्योशा का सिर पकड़कर उन्होंने कसकर उसे अपने पेट से तीन बार लगाया और फिर अपनी दाढ़ी के उलझे हुए ठंडे-ठंडे बालों से उसका चेहरा ढांप दिया। आलिंगनों और चुम्बनों का यह अबोध्य और प्रचण्ड उद्गार क्षण भर तक ही जारी रहा और फिर अल्योशा से अलग होकर आर्सेनी रोमानोविच फाटक की ओर दौड़ गये।

जब अल्योशा के कानों में फाटक के बंद होने की आवाज़ आई और उसने देखा कि वह अकेला रह गया है, एकदम अकेला! – उसने मुट्ठियों से आंखें भींच लीं और सिसकियां भरते हुए सीढ़ियां चढ़ने लगा।

उसके साथ क्या घटा है–यह बात वह इतनी स्पष्टतया समझ रहा था कि आप से आप ही वह ऐसे नये, अभी हाल ही तक अनजाने शब्द पा रहा था, जो उसके मन की पीड़ा को व्यक्त कर रहे थे। उसे लग रहा था कि सिसकियां भरते हुए वह ये विचित्र, निराशा भरे शब्द उच्चारित कर रहा है। पर वह केवल रो ही रहा था। मां और पापा के साथ, ओल्गा अदामोव्ना के साथ वह भी अभागा था, सबने उनसे मुंह मोड़ लिया था और वे न जाने कहां भाग रहे थे! सब उसे हीन दृष्टि से देखते थे, क्योंकि उसके पापा गरीबों से बुरे थे, क्योंकि वह स्वयं पाव्लिक और वीत्या के मुकाबले तुच्छ था, दब्बू था! बस एक आर्सेनी रोमानोविच ही थे, जिन्हें उस पर तरस आता था, उससे प्यार था, पर वह भी उसे बचा नहीं सकते थे, और सदा के लिए छोड़कर चले गये।

अल्योशा ऊपर, गर्मियों के रसोईघर में गया और अंगीठी के पास खड़ा हो गया। उसने आंखों से मुट्ठियां हटाईं और ठीक वैसे ही जैसे पहली बार इस घर में आने पर हुआ था, अपनी आंखों के सामने उसे डूबतों को बचाने का चक्का दिखा।

वहीं, पुरानी जगह पर यह शानदार चीज़ रखी हुई थी। इस चक्के के साथ अल्योशा के मन में क्या-क्या उम्मीदें बंधी हुई थीं! क्या-क्या सपने थे, जो पूरे नहीं हुए–कैसे वह दोस्तों के साथ मछली पकड़ने जायेगा, दूर वोल्गा के बड़े पाट के तट पर, रेत पर घूमेगा, डांड़ चलायेगा, या फिर पालों वाली नाव पर पाल तानेगा, नदी पर गुज़रते स्टीमरों से उठनेवाली लहरों में वे सब तैरेंगे, और हां अलाव जलायेंगे–ढेर सारे अलाव! आर्सेनी रोमानोविच बच्चों को लेकर जब नाव पर जाते थे, तो इस चक्के को अपने सच्चे साथी की भांति जरूर साथ रखते थे। और अब अल्योशा आर्सेनी रोमानोविच के इस सच्चे साथी से विदा ले रहा था, मानो ये उसकी खोई हुई आशाएं ही थीं। उसे लग रहा था कि वह स्वयं भी खो गया है, और संसार में कोई ऐसी शक्ति नहीं, जो उसे बचा सके।

उसने कार्क के चक्के की रंगीन देह को सहलाया, इस देह से लिपटी रस्सियों को पकड़ा और फिर अपना आंसुओं से भीगा गाल उससे सटा लिया।

गलियारे में मां की आवाज़ गूंजी:

"अल्योशा कहां है? हमारा अल्योशा कहां है?"

उसने आंखें और गाल पोंछकर सुखा लिये और रुखाई से जवाब दिया:

"यहां हूं... चिल्लाइये मत!"

सूरज डूबने से पहले ही पास्तुख़ोव परिवार सामान से लदे ठेलों के पीछे-पीछे स्टेशन पर पहुंच गया। दोरोगोमीलोव उन्हें छोड़ने नहीं आया था। अल्योशा ने सुना ओल्गा अदामोव्ना मां से कह रही थी: "छोड़ने न आता, पर चलने से पहले नमस्ते तो कह सकता था... इतनी भी सभ्यता नहीं!" मां के चेहरे पर हल्की सी मुस्कान दौड़ गई, मानो वह विचारमग्न हों और वह बोली: "वह सख़्ती से फ़ैसला करता है।"

पास्तुख़ोव बातचीत में हिस्सा नहीं ले रहा था। वह स्टेशन के चौक के दृश्य से अभिभूत था – यहां जीवन के साक्षात दर्शन हो रहे थे, असंख्य रूपों में उफनता जीवन। वैसे ही जैसे वसंत में हुआ था, एक बार फिर उसका परिवार असहाय सा स्टेशन के सामने खड़ा था, फ़ज़ूल के सामान के ढेर से बंधा हुआ, जिसे मानव-बाढ़ से बचाने की ज़रूरत थी। पर इन कुछ महीनों में कैसे आश्चर्यजनक परिवर्तन आ गये थे!

सबसे पहले तो लोगों की संख्या कहीं अधिक थी। उनका एक अनंत समूह यहां जमा था तथा लोगों के छोटे-बड़े झुंड इस समूह को भंवरों और धाराओं की भांति चीरते आ-जा रहे थे। कई धाराएं स्टेशन के दरवाज़ों में अंदर को बहती जा रही थीं, दूसरी धाराएं सामने से टकरातीं और लोग गुच्छों में, किशमिश की तरह दबे हुए, प्रायः कुचले हुए शरीर लिये बाहर निकलते।

दूसरी जिस बात की ओर पास्तुख़ोव का ध्यान गया – वह थी सशस्त्र लाल सैनिकों की संख्या। वे भी इस जनसमूह में निरंतर गतिमान थे, कहीं दलों में और कहीं अलग-अलग। जहां-तहां लोगों के सिरों के ऊपर स्याह-रुपहली संगीनें चमचमा रही थीं। सैनिक अपनी पसीने से भीगी, काली पीठों से ओवरकोट उतारकर उन्हें बांहों पर डाले लिये जा रहे थे, मानो घोड़ों पर चढ़ाने के लिए साज़ उठाये लिये जा रहे हों, और उनके ये भारी ओवरकोट पसीने मे तरबतर भीड़ में अजीब, बेतुके से लग रहे थे, साथ ही एक विचित्र सी याद दिलाते थे कि कभी कड़ाके की सर्दी भी होनी है।

सारा चौक बोरिये-बिस्तरों पर बैठे शरणार्थियों की बाड़ से घिरा हुआ था। ऊंची-नीची आवाज़ों की गूंज छाई हुई थी, और कोई भी अलग आवाज़ चाहे वह कितनी भी तेज़ क्यों न होती, इस गूंज पर हावी नहीं हो सकती, उसे दबा नहीं सकती थी – न ही पास कहीं टीन की केतली की खड़खड़, न किसी बच्चे की चीख, न ही स्टेशन की छत के ऊपर से लहरों की तरह बढ़ती आती इंजन की सीटी। यह शोर अभेद्य था, ठोस था, और लगता था कि यहां असंख्य स्वरों, असंख्य सिरों की इस विविधता की एकता से अलग, इससे स्वतंत्र कोई विचार भी उत्पन्न नहीं हो सकता।

सहसा ख्यालों में डूबे पास्तुखोव के सामने एकदम नई वर्दी पहने फ़ौजी प्रकट हुआ। उसका चेहरा धूप में थोड़ा संवलाया हुआ था, वह दुबला-पतला था और मानो अभी-अभी नहाकर आया था। ठोड़ी का गुल मुस्कान से फैल रहा था। जवानी की उत्सुकताभरी नज़रों से वह पास्तुखोव की ओर देखे जा रहा था, यह प्रतीक्षा करते हुए कि उसका जवाब क्या होगा।

वह ज़्यादा लंबी चुप्पी सह नहीं सका और भोले अंदाज़ में बोला:

"आप मुझे कभी नहीं पहचान पायेंगे! मैंने तब दाढ़ी बढ़ा रखी थी।"

"दाढ़ी," पास्तुखोव ने दोहराया।

"आपने हमें तब रिबन दिखाया था," सहसा अल्योशा कह उठा।

"हां, हां," फ़ौजी खुश हो गया। "दीबिच हूं मैं, दीबिच।"

"हे भगवान, आप ही तो हैं!" आस्या बोली। "आप तो एकदम खिल उठे हैं!"

"कहां! बस ठीक हो गया हूं। कितने बरसों में पहली बार महसूस कर रहा हूं कि स्वस्थ हूं। और आप?.. कहां चल दिये फिर से? अभी तक पहुंचे नहीं अपने ठिकाने पर?"

"देखता हूं आप अपने ठिकाने पर पहुंच गये," धीरे-धीरे सरकती अपनी नज़र को दीबिच की टोपी के लाल सितारे पर टिकाकर पास्तुखोव बोला।

"हां," दीबिच पहले की ही भांति मुस्कराये जा रहा था, "फिर से फ़ौज में आ गया। नई टुकड़ियां बना रहा हूं।"

"क्लर्की का काम है?" पास्तुख़ोव ने जानना चाहा। "कमांडरी तो वे तुम्हें सौंपेंगे नहीं?"

दीविच पर इन चुटकियों का कोई असर नहीं पड़ रहा था। वह बड़े उत्साह से बातें कर रहा था, यह छिपाने का ज़रा भी प्रयत्न नहीं कर रहा था कि इन लोगों से मिलकर वह कितना खुश है।

"कमांडरी क्या करनी। आजकल नई टुकड़ी बनाना दुश्मन को खदेड़ने से ज़्यादा मुश्किल है। ऐसी गड़बड़ी मची हुई है – पूछिये मत! .. अभी थोड़े दिन पहले मैं आपको याद कर रहा था। पता है क्यों? याद है वह सिपाही, जो र्तीश्चेवो में हमें गिरफ़्तार करने लगा था?"

"चिट्टेवाला?"

"हां, हां। एक आंखवाला, दूसरी आंख उसकी गोले की किरच से खराब हो गई है। इपात इपात्येव।"

"तो?"

"वह मेरी टुकड़ी में भरती होने आया था। र्तीश्चेवो की बात याद करके हम खूब हंसे। मैंने उससे कहा, देख तू क्या करना चाहता था: भला आदमी क्रांति के लिए काम करता रहा है, और तू उसे हवालात में खींच ले चला था... मैं जब अस्पताल में था, तो आपके बारे में अखबार में पढ़ा था," दीविच ने आदर भाव से कहा।

"हुं," पास्तुख़ोव ज़रा रोबीले अंदाज़ में बोला। उसने दीविच की पेटी के बकलस को अपनी दो उंगलियों के बीच दबा लिया। "एक बात बताइये। क्या आप यह नहीं समझते कि आप ऐसे मामले में फंस गये हैं जिसका अंत बुरा होगा?"

दीविच ने धीरे से अपनी टोपी पीछे को खिसकाई।

"मामले में?" उसने पूछा। "यह मामला हमारा इतिहास बनायेगा।"

"पर आप इस इतिहास के शिकार होंगे!" पास्तुख़ोव ने तीखे स्वर में कहा और दीविच को ज़रा परे को धकेलते हुए उसका बकलस छोड़ दिया।

"हो सकता है," दीविच ने गम्भीरता से सहमति प्रकट की, पर तभी आंखें मींचकर, मानो नीचे से पास्तुख़ोव के चेहरे का निशाना लगाते हुए, चुनौती भरी चालाकी के स्वर में पूछा: "और अगर न हुआ, तो?"

"अगर न हुए?" पास्तुखोव क्षण भर को रुका, "अगर न हुए, तो इसका मतलब है, मैं बेवकूफ़ हूं।"

दीविच हंस पड़ा:

"अगर आप यही चाहते हैं..."

आस्या ने खतरे की अपनी तीव्र अनुभूति से यह समझ लिया कि उसे हस्तक्षेप करना चाहिये। उसने अपना सद्भावना की कांति से दमकता चेहरा दीविच की ओर मोड़ा, जिसे पहली भेंट से ही यह दमक याद थी:

"इस वक्त आप क्या कर रहे हैं?"

"नये रंगरूटों की एक पैदल कम्पनी लेकर यहां आया हूं। उसे उवेक तक ले जाना है और वहां स्टीमर पर बिठाना है। मोर्चा बिल्कुल पास ही है। कल सफ़ेद गार्डों ने कमीशिन पर कब्ज़ा कर लिया। सुना है आपने?"

पास्तुखोव ने तुरंत पत्नी की ओर देखा। आस्या ने अपनी बेचैनी चंचल मुस्कान में छिपा ली:

"तो यह स्टेशन आपके लिए अपनी जागीर है। हम गरीबों को भी गाड़ी पर बिठा दीजिये!"

"आप जा कहां रहे हैं?"

"वहीं – घर।"

"घर?" दीविच हंस दिया। "यह तो वो कहानी जैसी बात है... सचमुच बलाशोव जा रहे हैं? कोई आसान काम तो नहीं। पर मैं कोशिश कर देखता हूं।"

वह भीड़ में गायब हो गया और बहुत देर तक नहीं लौटा। अंधेरा हो चला था जब उसने आकर बताया कि उसने स्टेशन के कमांडेंट से बात की है, वह कहता है कि पास्तुखोव खुद उससे आकर मिले। दीविच ने जल्दी-जल्दी उनसे विदा ली, उसकी कम्पनी गाड़ी में बैठ चुकी थी।

इस क्षण अगर पास्तुखोव को कोई यह बताता कि उसे दस दिन और दस रात मालगाड़ी के डिब्बे में कछुए की रफ़्तार से सफ़र करना होगा, न जाने कितने स्टेशनों और जंक्शनों पर रात-दिन खड़ा रहना होगा, और फिर भी वह वहां नहीं पहुंच पायेगा, जहां जाना चाहता है, तो वह शायद अपने परिवार के साथ यहीं स्टेशन के पार कहीं, मठ वाले

4*

मोहल्ले में या उससे आगे इगूम्नोव खड्ड में कहीं पेड़ों की छाया में डेरा डाल लेता। पर उसने मन कड़ा करके गाड़ी में जगह पा ली और चल दिया, जैसे कोई जीर्ण-शीर्ण बेड़े पर अनजान सागर में सफ़र पर निकले।

एक बार फिर वह र्तीश्चेवो पहुंच गया। यहां सारा स्टेशन गाड़ियों के डिब्बों, घोड़ों, सैनिकों की मैदानी रसोइयों, घोड़ों के लिए चारे, भूखे मवेशियों, टूटी-फूटी मोटरगाड़ियों और लोगों से, अनगिनत लोगों से खचाखच भरा हुआ था। एक बार फिर उसने कमांडेंटों, अफ़सरों और कमिसारों के चक्कर लगाये, उनसे मिन्नतें कीं, मांग की कि उसे बलाशोव की गाड़ी पर बिठा दें। वह दुबला और खस्ताहाल हो गया था। आस्या के चेहरे की रंगत जाती रही थी और उसकी मुस्कान फीकी पड़ गई थी। अल्योशा ओल्गा अदामोव्ना के घुटनों पर सिर टिकाये सोता या ऊंघता रहता था। चारों ओर धूल से सब कुछ मटमैला था और झुलसी स्तेपियों की उमस फैली हुई थी।

एक दिन सुबह जागने पर पास्तुखोव परिवार ने पाया कि उनकी गाड़ी पूरी रफ़्तार से दौड़ती जा रही है। मुर्झाये से काले चीड़ के पेड़ों के बीच जहां कहीं-कहीं भोज वृक्ष भी उग रहे, घड़घड़ाती और खड़खड़ाती गाड़ी ढलान पर चली जा रही थी। उनके डिब्बे को अनजान गाड़ी से कैसे जोड़ दिया गया, वे कहां जा रहे हैं और कब से – किसी को कुछ पता नहीं था। आखिर एक छोटे से स्टेशन पर उन्हें पता चला कि उनका डिब्बा एक खाली गाड़ी से जोड़ दिया गया है, जिसे कोज़्लोव ले जाया जा रहा है।

"भाड़ में जाये सब," पास्तुखोव बोला, "मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता। क्या फ़र्क पड़ता है? कोज़्लोव तो कोज़्लोव ही सही..."

आस्या के चेहरे पर निराशा देखकर उसने जहां तक बन पड़ा शांत स्वर में कहा:

"यह तो बेहतर ही है। कोज़्लोव से हम जल्दी बलाशोव पहुंच जायेंगे – उधर से होकर... क्या नाम उस जगह का... ग्र्याज़ी..."

उसने ओल्गा अदामोव्ना की ओर देखा और सहसा आपे से बाहर होकर चिल्लाया:

"यह आंखें रगड़ना बंद कीजिये, देवी जी! आप ऐतिहासिक युग में रह रही हैं! और आपको हर बात के लिए तैयार रहना चाहिए... भाड़ में जाये यह सब!"

जुलाई के आरम्भ में रूसी कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की केन्द्रीय समिति का पार्टी संगठनों के नाम पत्र प्रकाशित हुआ। इसका शीर्षक था: 'देनीकिन के खिलाफ़ लड़ाई में सारा ज़ोर लगा दो!' यह पत्र लेनिन ने लिखा था और इन शब्दों के साथ शुरू होता था:

"साथियो! समाजवादी क्रांति के लिए यह घड़ी सबसे नाज़ुक घड़ियों में से है और शायद यही सबसे नाज़ुक घड़ी है..."

इस पत्र में कोल्चाक और देनीकिन को सोवियत जनतंत्र के प्रमुख और एकमात्र खतरनाक शत्रु माना गया। साथ ही यह भी कहा गया था कि केवल एंटेंट* की मदद ही उन्हें मज़बूत बनाती है। और इस क्षण को संकट का क्षण स्वीकार करने के साथ-साथ पत्र में यह भी घोषित किया गया था कि सभी शत्रुओं पर विजय पा ही ली गई मानी जानी चाहिए: "हम एक शत्रु को छोड़कर शेष सभी शत्रुओं को परास्त कर चुके हैं: वह शत्रु है एंटेंट – ब्रिटेन, फ़्रांस तथा अमरीका का सर्वशक्तिमान साम्राज्यवादी पूंजीपति वर्ग। लेकिन हमने इस शत्रु के भी एक हाथ को, अर्थात् कोल्चाक को, पहले ही तोड़ दिया है; हमें अब केवल उसके दूसरे हाथ से, अर्थात् देनीकिन से, खतरा है।"

जनतंत्र पर उठे और अभी तक तोड़े न गये इस हाथ का सामना करने के लिए लेनिन ने पार्टी का आह्वान किया था कि वह सभी कार्यालयों के काम को युद्ध की स्थिति के अनुसार पुनर्गठित करे। उन्होंने यह सुझाया था कि बिना किसी हिचकिचाहट के कुछ समय के लिए उस सारे काम को बंद कर दिया जाये, जो युद्ध की दृष्टि से नितांत आवश्यक नहीं है। उन्होंने लिखा था: "पेत्रोग्राद के बाहर के मोर्चेवाले इलाके में और उस विस्तृत मोर्चेवाले इलाके में, जो इतनी तेज़ी के साथ और खतरनाक ढंग से उक्रइना में तथा दक्षिण में बढ़ता जा रहा है, हर चीज़ को युद्ध की दृष्टि से संगठित किया जाना चाहिये और हमें अपने सारे काम, सारे प्रयासों तथा सारे विचारों को युद्ध

---

* जर्मनी, आस्ट्रो-हंगरी और इटली के विरुद्ध १९०७ में गठित ब्रिटेन, फ़्रांस और ज़ारशाही रूस का साम्राज्यवादी आक्रमक गुट। – सं०

और केवल युद्ध के अधीन कर देना चाहिये। अन्यथा देनीकिन के धावे को परास्त करना असम्भव हो जायेगा। यह बात साफ़ है। इस बात को बिल्कुल साफ़ तौर पर समझ लिया जाना चाहिये और पूरी तरह इसपर अमल किया जाना चाहिये।"

यह पत्र ऐसे विश्वास से ओत-प्रोत था, जो हीरे की कनी जैसा अनम्य और तीक्ष्ण था। सारे देश में इस पर ऐसी प्रतिक्रिया हुई, जैसे पहाड़ों में निरंतर बढ़ती जाती प्रतिध्वनि। यद्यपि इसमें सारे देश के, सारी क्रांति के भविष्य की चर्चा थी, तो भी इसकी प्रत्येक पंक्ति किसी विशेष स्थान, किसी विशेष तथ्य, किसी अलग, विशिष्ट स्थिति पर चोट करती लगती थी। उदाहरणतः, जो लोग इन दिनों सरातोव की घटनाओं से सम्बन्धित थे उनके लिए यह बिल्कुल स्पष्ट था, कि पत्र में जिस विशिष्ट स्थान से अभिप्राय है, वह सरातोव ही है, विशिष्ट तथ्य सरातोव के, वोल्गा के निचले इलाके के सामाजिक तथ्य ही हैं; विशेष स्थिति, जिसे सारे रूस की स्थिति से अलग करके देखा गया है, सरातोव के पास के मोर्चे की स्थिति ही है। दूसरे शब्दों में, सरातोव में क्रांति के समर्थकों की नज़रों में यह पत्र आम तौर पर सारे जनतंत्र को, और खास तौर पर सरातोव को सम्बोधित था।

रागोज़िन ने एक बार दफ़्तर में यह पत्र पढ़ा और दूसरी बार घर पर मिट्टी के तेल के लैम्प की रोशनी में पेंसिल हाथ में लेकर पढ़ा और दो पंक्तियों में यह अर्ज़ी लिखी कि उसे वित्त-विभाग से हटाकर किसी सैनिक कार्य पर लगाया जाये।

उसे प्रदेश की पार्टी समिति में बुलाया गया। समिति के ब्यूरो के एक सदस्य ने उसे यह सूचना दी कि फ़िलहाल उसे वित्त-विभाग से सेवानिवृत्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि रागोज़िन के प्रयासों से वित्त-विभाग का काम अब कहीं थोड़ा ढंग से चलने लगा था, और उसके चले जाने से काम पर बुरा असर पड़ेगा। रागोज़िन इन आपत्तियों को सुनने के लिए तैयार था, उसके विचार में ये स्वाभाविक ही थीं। उसने जेब में से लेनिन का पत्र निकाला, जिस पर पेंसिल से तरह-तरह के निशान लगे हुए थे। 'गैर-फ़ौजी काम में कमी' शीर्षक खण्ड में उसने पेंसिल के गाढ़े निशान लगा पैरा ढूंढ़ा और उसे ऊंचे-ऊंचे पढ़ने लगा:

"'उदाहरण के लिए, सर्वोच्च राष्ट्रीय अर्थ-परिषद के वैज्ञानिक-तकनीकी विभाग को ले लीजिये। यह एक अत्यंत उपयोगी संस्था है, एक ऐसी संस्था, जो समाजवाद के पूरे निर्माण के लिए, हमारी समस्त वैज्ञानिक तथा तकनीकी शक्तियों का उचित हिसाव रखने तथा वितरण करने के लिए नितांत आवश्यक है। परंतु क्या यह ऐसी संस्था है, जिसके बिना काम ही न चल सकता हो? हरगिज़ नहीं। इसमें ऐसे लोगों को लगा देना इस समय सरासर अपराध होगा, जो **सेना में** या **प्रत्यक्ष रूप से** सेना के लिए तात्कालिक तथा सर्वथा अपरिहार्य कम्युनिस्ट काम में लगाये जा सकते हैं और लगाये जाने चाहिए।'"

"ठहरो-ठहरो ज़रा," रागोज़िन के विपक्षी ने उसे रोका। "तुम सोचते हो, हमने यह सब पढ़ा नहीं, इस पर विचार नहीं किया है?"

"पढ़ा तो होगा, पर तुम और दो-चार लाइनें तो सुनो। 'केन्द्रीय शासन में और प्रदेशों में इस प्रकार की अनेक संस्थाएं तथा संस्थाओं के विभाग हैं। समाजवाद को पूरी तरह स्थापित करने के अपने प्रयासों में हम फ़ौरन इस प्रकार की संस्थाएं स्थापित करना आरंभ कर देने के अतिरिक्त और कुछ कर ही नहीं सकते थे। परंतु यदि देनीकिन के ज़बर्दस्त हमले के सामने हम **अपनी पांतों को** इस ढंग से **पुनर्गठित करने** में असफल रहे कि **हर उस काम को**, जो सर्वथा अपरिहार्य नहीं है, **स्थगित कर दें** या उसमें **छंटनी कर दें**, तो हम मूर्ख या अपराधी होंगे।'"

"तो तुम्हारा क्या ख्याल है कि वित्त-विभाग बंद किया जा सकता है?"

"वित्त-विभाग में मुझे कम किया जा सकता है।"

"अगर यह मुमकिन होता तो हम तुम्हें वहां बिठाते ही नहीं।"

"उस वक्त यह ठीक था, उस वक्त," रागोज़िन ने अर्थपूर्ण लहजे में कहा और अपनी उंगली भी सिर के ऊपर उठाई। "तुमने देखा ही है, हम विज्ञान और तकनीक के खिलाफ़ तो नहीं हैं न? बिल्कुल खिलाफ़ नहीं हैं। पर अब इसका वक्त नहीं है। ठीक समझा न मैं? इसका वक्त नहीं है... वित्त का काम कोई दूसरा भी संभाल सकता है। इसके बारे में भी साफ़-साफ़ कहा गया है। यह देखो।"

उसने फिर से तह किया पत्र खोला, उसमें दूसरा निशान लगा

स्थान ढूंढ़ा और उंगलियों से चुटकी वनाकर पंक्तियों पर फेरते हुए पढ़ने लगा:

"'...हम कुछ समय के लिए इस वात का खतरा मोल ले सकते हैं कि ऐसी अनेक संस्थाओं को (या संस्थाओं के विभागों को), जिनमें ज़वर्दस्त छंटनी कर दी गयी हो, **एक भी कम्युनिस्ट के विना** छोड़ दें, उन्हें पूरी तरह पूंजीवादी कार्यकर्ताओं के हाथों में छोड़ दें।'"

"हां, हां, आगे पढ़ो," व्यूरो के सदस्य ने रागोज़िन को रुकते देखकर कहा और उसके हाथ से पत्र खींचने लगा। "आगे क्या कहा गया है? 'यह कोई वहुत बड़ा खतरा नहीं है, क्योंकि इनमें केवल उन्हीं संस्थाओं का सवाल है, जो सर्वथा अपरिहार्य नहीं हैं...' समझे? और तुम्हारा विभाग नितांत आवश्यक है।"

"मैंने भी पढ़ना सीखा है," रागोज़िन उठ खड़ा हुआ और मेज़ का चक्कर लगाकर व्यूरो के साथी से सटकर खड़ा हो गया। पहले की ही भांति वह कागज़ पर चुटकी चला रहा था, पर अव पढ़ नहीं रहा था, वल्कि पत्र में जो लिखा था, उसे आग्रहपूर्वक और सख्ती से अपने शव्दों में कह रहा था: "सवाल क्या है? सवाल यह है कि अगर हम विभाग को कम्युनिस्टों के विना छोड़कर उसका काम दस में से नौ हिस्सा कम कर दें, तो क्या हम मारे जायेंगे? इस सवाल का जवाव देने की ज़िम्मेदारी किस पर है? हर विभाग के अध्यक्ष पर या पार्टी इकाई पर। मैं विभाग का अध्यक्ष हूं कि नहीं? क्या मैं खुद इस सवाल का जवाव दे सकता हूं? या फिर पार्टी इकाई को मेरे वदले इसका जवाव देना है?"

"तुम्हारे वदले इसका जवाव दिया जा चुका है," व्यूरो के कामरेड ने झुंझलाकर कहा और उस पर अपना भार डाल रहे रागोज़िन को पीछे हटाया। "और जवाव भी पार्टी इकाई ने नहीं, प्रदेश समिति के व्यूरो ने दिया है। तुम पार्टी के आह्वान का उत्तर देना चाहते हो? शौक से दो। जो लोग सेना के लिए, युद्ध के लिए काम कर रहे हैं, उनको ज़्यादा पैसा दो, और उनके खर्चे में कटौती करो, जिनका काम अभी युद्ध के लिए खास लाभदायक नहीं है। देखो न वहां ज़ातोन में, जहां हमारे जंगी जहाज़ों की मरम्मत होती है, खरादियों की कमी है। उनके खर्चे का खाता वढ़ा दो, तो शायद उन्हें खरादी भी मिल जायें।"

रागोज़िन वेढ़ब मुद्रा में खड़ा रह गया, मानो अचानक पीड़ा ने उसे आ धरा हो।

"मुझे क्यों नहीं बताया कि ज़ातोन में खरादियों की ज़रूरत है? मैं भी तो फ़िटर हूं।"

"फिर अपनी ले बैठे! यहां लोगों को खराद से हटाकर ज़िम्मेवारी के ओहदों पर लगाया जा रहा है, और एक तुम हो कि अपनी ज़िम्मेदारी छोड़कर खराद पर जाना चाहते हो!"

"नहीं, भई, मेरा मतलब यह नहीं था। रेलवे डिपो में अभी भी कुछ पुराने लोग होंगे, जो शायद मुझे अभी तक भूले न हों – मैंने कितने साल वहां फ़िटर का काम किया है। उन्हें ज़ातोन में काम पर लगाया जा सकता है। सौंपते हो मुझे यह काम?"

"सौंपने का क्या है? जाओ करो। बस अपनी बुनियादी ज़िम्मेदारी को मत भूलना।"

रागोज़िन ने हौले से आंख मारी:

"मैं ज़िम्मेदारी थोड़ी कम कर लूंगा। दस में से नौ हिस्सा तो नहीं, हां आठ हिस्सा।"

"यह मज़ाक का वक्त नहीं है।"

"अच्छा, अच्छा!" दरवाज़े पर पहुंच गये रागोज़िन ने हंसते हुए जवाब दिया। "अच्छा, सिर्फ़ सात, सात हिस्सा, ज़्यादा नहीं... कसम से!"

इस तरह पहले वह रेलवे डिपो में पहुंचा – वर्कशॉप के धुएं भरे शेड तले, जहां टूटे हुए काले शीशों में से आती हवा सीटियां बजा रही थीं, और फिर ज़ातोन में, खुले आसमान तले, जहां रिपिटें लगने की ठकाठक और रेतियों तथा आरियों का शोर गूंज रहा था।

डिपो में दो ही ऐसे खरादी मिले, जिन्हें पुराने दिनों की याद थी और उन्होंने दिल खोलकर पुराने दोस्त से गपशप की, पर उनमें से एक ही ज़ातोन में काम करने पर राज़ी हुआ ("श्रमदान के तौर पर" जैसा कि उसने कहा), क्योंकि रेलवे डिपो में ही इतना काम था कि दम लेने की फ़ुर्सत नहीं थी। पर हां दोनों ने यह वायदा किया कि वे जवान मज़दूरों में से कुछ को ज़ातोन में मदद करने के लिए मना लेंगे।

ज़ातोन में रागोज़िन ने सबसे पहले वहां के संगठन को आर्थिक

सहायता दी। संगठन छोटा सा ही था और युद्ध के कारण उसके सम्मुख प्रस्तुत कार्यभारों को निभाना उसके लिए मुश्किल हो रहा था। फिर जहाज़ों का चक्कर लगाते हुए रागोज़िन एक टगबोट पर पहुंचा, जिसके अड़वाल की लोहे की परतों के टांके खोले जा रहे थे। वहां वह मज़दूरों की मदद करने लगा, और फिर शाम तक घन चलाता रहा। इसके बाद रोज़ सुबह घंटे भर को ज़ातोन आने पर वह अवश्य अपनी इस "चहेती" टगबोट पर पहुंच जाता, और यहां उसने एक बार फिर उन सब औज़ारों से काम किया, जो कभी उसके हाथ पर ख़ूब अच्छी तरह चढ़े हुए थे। प्रबंधक शीघ्र ही इस बात के आदी हो गये कि रागोज़िन ज़ातोन के काम की देखभाल करता है, और उसे पता भी न चला कब उसकी जवाबदेही हो गई: जहाज़ों की मरम्मत इतनी धीरे क्यों हो रही है? उसने बस अपनी मूंछों पर ताव दिया:

"वाह रे बुद्धू, ओखली में सिर दे डाला!"

त्सरीत्सिन पर शत्रुओं का कब्ज़ा होने के तुरन्त बाद ही पूर्वी मोर्चे पर कोल्चाक के विरुद्ध सफलतापूर्वक काम करते रहे नदी बेड़े के जहाज़ों को कामा नदी से वोल्गा के निचले भाग में बुला लिया गया। ऐसा उन्हीं दिनों हुआ जब लाल सेना ने पेर्म को मुक्त कराया।

जहाज दक्षिण में सैनिक कार्रवाई के क्षेत्र में पहुंचे और उन्होंने वोल्गा के तटों पर लड़ रही फ़ौजों की अपने तोपख़ाने से मदद की, पर इन टुकड़ियों के साथ ही उन्हें पहले कमीशिन तक और फिर और ऊपर को कोई सौ मील तक पीछे हटना पड़ा। इस समय तक दसियों जहाजों का बेड़ा सैनिक कार्रवाइयों में भाग ले रहा था, ये जहाज़ नदी में कई मील के फ़ासले पर फैले हुए थे, उनके पास लगभग सौ तोपें थीं। पीछे हटने के बाद जहाज़ों की एक टुकड़ी को फिर से शत्रु के चंडावल में भेजा गया, इस उद्देश्य से कि वे व्रांगेल की पिछली कतारों को तबाह करें। इस अभियान में जहाज़ों के नौसैनिकों की कई छोटी-छोटी टुकड़ियां किनारे पर उतारी गई, जिन्होंने सफ़ेद सेना की टुकड़ियों में भगदड़ मचा दी। जहाज़ों ने अचानक ही कमीशिन पर और नगर के सामने वोल्गा के दूसरे तट पर स्थित निकोलायेव्स्काया मुहल्ले पर गोलाबारी की, ताकि सरातोव के पास बढ़ते आ रहे देनीकिन के मोर्चे को रोका जा सके।

इस अभियान में गम्भीर क्षति भी पहुंची। दुश्मन नदी बेड़े पर हवाई जहाज़ों से ज़ोरदार बमवारी करता रहा था। कुछ जहाज़ों को मरम्मत के लिए जाना पड़ा। कई दूसरे जहाज़ों की भी मरम्मत हो रही थी, या उन्हें फ़ौजी काम के लिए तैयार किया जा रहा था। इन जहाज़ों को वोल्गा नौसैनिक बेड़े की उत्तरी टुकड़ी में शामिल होना था, जिसे सरातोव की शत्रुओं से रक्षा करनी थी। नगर अब समुद्री बंदरगाह सा लगने लगा था, जहां गोदियों में जंगी जहाज़ खड़े थे, सड़कों पर काले सागर और बाल्टिक सागर के बेड़ों के नौसैनिक दिखाई देते थे। नगर की सारी दिनचर्या में ही नौसैनिक पुट आ गया था, जिससे

[illegible]

हो रहे इन धमाकों और बंदूकों की ठां-ठां के इस उन्माद को व्यक्त किया जा सके। सो उसने भी प्रशंसा के उसी भाव से सिर हिला दिया।

तीसरे दिन दुपहर ढले स्क्वैड्रन को यह आदेश मिला कि तट पर लड़ रहे नौसैनिकों की मदद के लिए हर पोत से जुझारू टुकड़ियां भेजी जायें। 'अक्तूबर' पर आवश्यकता से अधिक लोगों ने तट पर जाने की इच्छा व्यक्त की। रागोज़िन उन लोगों को एक ओर करता जा रहा था, जिनकी, उसके विचार में, पोत पर ज़्यादा ज़रूरत थी। स्त्राश्नोव भी जाना चाहता था, पर रागोज़िन ने उसे पोत पर रहने

बनी हुई थी। यह मैदान स्तेपी से थोड़ा ऊंचा था। स्तेपी में नौसैनिक टेढ़ी-मेढ़ी लाइन में लेटे हुए थे।

पोतों से शत्रु पर गोले छोड़े जा रहे थे और उनसे उठती धूल की वजह से सफ़ेद गार्डों की चौकियां दिखाई नहीं दे रही थीं। यहां इतना शोर नहीं था, जितना पोत पर, लेकिन रागोजिन को लग रहा था कि यहां पर भी उसे और इस शांत ज़मीन को भी वैसे ही धचके लग रहे थे, जैसे पोत पर।

वह एक गड्ढे में लेटा हुआ था, जो आगे से मिट्टी के ढेर से सुरक्षित था, पर अगल-बगल से खुला था। वह दाईं ओर ऐसे ही एक ढेर पर नज़र लगाये हुए था, जिसपर से टुकड़ी का कमांडर धावा बोलने का संकेत देनेवाला था।

सूरज बादलों के पीछे छिप रहा था और डूबते सूरज की किरणों से बादल लाल सुर्ख हो रहे थे, जो अगले दिन तेज़ हवा चलने की निशानी है। धरती पर हर चीज़ में सूर्यास्त प्रतिबिम्बित हो रहा था, खंदकों की मिट्टी में भी लाली आ गई थी। रागोजिन ने ज़मीन पर बिखरे पड़े दर्जन भर अंग्रेज़ी फ़ील्ड बैग गिने, जो सफ़ेद गार्ड भागते हुए फेंक गये थे।

जैसे ही तोपों ने गोले बरसाने बंद किये, उसी वक्त रागोज़िन ने एक ऊंचे कद के आदमी को मिट्टी के ढेर पर चढ़ते और फिर एक झटके से सीधे खड़े होकर हाथ ऊपर उठाते देखा। रागोज़िन भी गड्ढे में से निकलकर ऐसे ढेर पर चढ़ गया, ऐसे ही हाथ ऊपर उठाकर ढेर से कूदा और आगे बढ़ चला।

बाकी लोग भी उठने लगे, और रागोजिन ने देखा कि उनकी लाइन इतनी बिखरी नहीं है, जितनी लेटे हुए उसे लगी थी। वह देख रहा था कि सैनिक मशीनगनें साथ खींच रहे हैं कि नहीं (पोत से उतरने से पहले 'मक्सीम' मशीनगनों को पहियों पर लगा दिया गया था), और उसने पाया कि मशीनगनें खींचते सैनिक भी औरों से पीछे नहीं रह रहे हैं। वह यह देख रहा था कि उसकी पलटन दाईं ओर की पलटन से पीछे तो नहीं छूट रही, और निश्चिंत हुआ कि नौसैनिक एक लाइन में दौड़ रहे हैं। उसने देखा कि वह पिस्तौल का घोड़ा चढ़ाना तो नहीं भूला और आश्वस्त हो गया, घोड़ा चढ़ा हुआ

था। उसने आंखें गड़ाकर देखा कि कोई बंदूक पर संगीन चढ़ाना तो नहीं भूल गया और उसे लगा कि सैनिकों के दौड़ने से उछलती संगीनों की कतार अभेद्य है।

ये सब सवाल अपने आप से पूछते हुए और इनका जवाब देते हुए वह मैदान में आगे देखता जा रहा था, जो डूबते सूरज के मंद-मंद प्रकाश में शांत फैला हुआ था।

शीघ्र ही उसे नौसैनिकों की आगे बढ़ रही लाइन के बगल से थोड़ा एक ओर को धूल का लाल-पीला बादल दिखा। फिर उसे दाईं ओर से लाइन में दिया जा रहा आदेश सुनाई दिया। पहले तो आदेश के शब्द उसकी समझ में नहीं आये, फिर उसके कानों में चीखें पड़ीं: "लेटो! रिसाले पर फ़ायर!" वह भी बाईं ओर को चिल्लाया:

"लेटो! रिसाले पर फ़ायर!.."

धूल से थोड़ा आगे उसे लम्बी लाइन में फैले छोटे से घोड़े दिखे, जो जल्दी-जल्दी कदम बढ़ा रहे थे। घुड़सवार तलवारें भांज रहे थे, जो उनके सिरों के ऊपर सुनहरे धागों सी कभी चमक उठतीं, कभी बुझ जातीं। कज़्ज़ाक लावे की भांति स्तेपी पर बढ़ रहे थे, हर पल निकट ही निकट आते जा रहे थे।

एकसाथ बंदूकें चलीं और फिर मशीनगनें एक दूसरी का मुकाबला करती तड़ातड़ गोलियां बरसाने लगीं।

कज़्ज़ाकों की कतारें टूटने लगीं। ठोस दीवार जैसा उनका व्यूह अब किसी जगह घोड़ों के झुंडों में और कहीं विरली लाइनों में बदल गया। पर अभी भी लावा उमड़ता आ रहा था और घोड़ों की टापें ज़मीन से रागोज़िन के शरीर में प्रतिध्वनित हो रही थीं, मानो उसका हृदय छाती में नहीं, ज़मीन में धड़क रहा हो।

गोलियों की नई बौछार से रिसाला अलग-अलग झुंडों में और अधिक सिमट गया, कुछ घुड़सवार तितर-बितर हो गये। कहीं घोड़े आगे निकल गये, कहीं पीछे रह गये।

रागोज़िन अब आगे के घोड़ों के रंग देख पा रहा था। घोड़े अपने थूथने ऊपर उठा रहे थे और उनके पीछे घुड़सवार झुके हुए थे। सहसा मशीनगनों की तड़ातड़ तेज़ चीख में बदल गई, और यह दिखाई देने लगा कि कैसे यहां-वहां कज़्ज़ाक काठियों से गिर रहे हैं और उनके

चौंधलाये हुए घोड़े घुड़सवारों के बिना ही दौड़े जाते हैं या खुद भी ढह जाते हैं।

फिर रागोज़िन को बिल्कुल पास ही घोड़ों की लौह टाप सुनाई दी, पर बिल्कुल उधर से नहीं, जिधर से उसे इसका इंतजार था। अत्यंत भयभीत होकर उसने मुड़कर देखा और अपना रिवाल्वर बाईं ओर घुमाया।

कुछ टूटे-फूटे छप्परों के पीछे से मैदान पार करते हुए उन्मत्त घुड़सवार उसकी पलटन के सामने पहुंच गये। भारी-भरकम घोड़ों पर सवार लगभग सौ लोग थे, और उनके आगे-आगे खुली जैकट और गोल टोपी पहने नौसैनिक तलवार भांजता आ रहा था। सब्ज़ा घोड़ा सिर झटक रहा था। नौसैनिक की टोपी के रिबन सिर के पीछे लहरा रहे थे और लंबी जैकट के पल्ले घुटनों पर फड़फड़ा रहे थे। वह रकाबों पर जोर डालकर थोड़ा उठा। उसका मुंह खुला हुआ था। उसके पीछे आते सौ घुड़सवार "हुर्रा" चिल्ला रहे थे।

रागोज़िन ने अभी तक नौसैनिक घुड़सवारों के बारे में सुना ही था, जो पैदल टुकड़ियों के साथ मिलकर लड़ते थे, पर वह पहली बार उन्हें देख रहा था। वे अपने भारी घोड़ों पर सच्चे घुड़सवारों की तरह दौड़े जा रहे थे, पर उन्हें देखकर यह लगता था, मानो वे दुश्मन से गुत्थम-गुत्था होने जा रहे हों। हवा से और उनके उछलते सुडौल शरीरों से सब कुछ लहरा रहा था।

इस टुकड़ी का एक सिरे का घुड़सवार रागोज़िन के बिल्कुल पास से गुज़रा। रागोज़िन ने नौसैनिक का चेहरा देखा, जो जड़ हंसी से विकृत था, और उसका विचित्र आदेश सुना:

"बायें चक्का घुमाओ, भाइयो! मेरे पीछे!" चेहरे पर जड़ ठहाके का भाव लिए नौसैनिक चिल्ला रहा था। "चलो!.. मारो सालों को..."

"ओ-ओ-ओ!" आगे बढ़ गये घुड़सवारों के पीछे आवाज़ आ रही थी, "ओ-ओ-ओ!"

गोलियां चलनी बंद हो गई। गोलियों से तितर-बितर हुआ रिसाला जल्दी-जल्दी पीछे मुड़ने लगा और चाल तेज़ करता दौड़ने लगा। घुड़सवार नौसैनिक कज़्ज़ाकों के सिर पर जा चढ़े थे और अब हवा में तलवारें चमक रही थीं।

इसी क्षण पलटनें फिर हमला बोलने को उठीं।

रागोज़िन को सारा समय यह महसूस हो रहा था कि सफ़ेद गार्डों की हार में कुछ देर ही हो रही है, पर हार निश्चित है, और अब बस आखिरी जतन करने की ज़रूरत है, ताकि उनका प्रतिरोध तोड़ दिया जाये और शहर पर कब्ज़ा कर लिया जाये।

घुड़सवार नौसैनिकों को देखकर उसकी इस भावना की पुष्टि हुई। मुड़कर अपनी पलटन को देखते हुए रागोज़िन ने यह पाया कि उसके सैनिक भी घुड़सवारों की ही भांति उन्मत्त हैं, वैसे ही आंधी की तरह दौड़ रहे हैं, और उनकी ही भांति एक अखण्ड समूह हैं।

नौसैनिक रागोज़िन के पीछे दौड़ रहे थे – किसी की टोपी के रिबन हवा में बल खा रहे थे, किसी की टोपी खो गई थी और वह नंगे सिर था, किसी की कमीज़ का कालर फड़फड़ा रहा था, कोई धारीदार बनियान पहने था – गोताखोरों की तरह तर, कोई चमड़े की खुली जैकट पहने था, किसी की छाती पर कारतूसों की पेटियों से गुणा का निशान बना हुआ था।

"ऐसे लोग अगर लड़ने जाते हैं, तो जीतकर ही आते हैं," रागोज़िन ने सोचा, "और जीत बस यहीं आगे है!"

आखिर उन्हें मैदान के पार कुछ खंदकें दिखीं, यह सफ़ेद गार्डों की चौकियां थीं। रागोज़िन को लाइन में उठती गरज सुनाई दी: नौसैनिक "हुर्रा" चिल्ला रहे थे।

तभी दाईं ओर फिर उसे पास ही नौसैनिक घुड़सवार दिखे, जो अब मैदान में अलग-अलग दौड़े आ रहे थे, और उनके पीछे थी कज़्ज़ाकों के लावे की नई लहर, जो वहीं से उठ रही थी, जहां अभी-अभी अस्त-व्यस्त रिसाला जान बचाने को भागा था।

और तब खंदकों से लाल सैनिकों पर गोलियां बरसाई जाने लगीं।

रागोज़िन ठोकर खाकर औंधे मुंह गिर पड़ा। वह उठना चाहता था, पर किसी ने मानो अपने भारी बूट से उसे ज़मीन पर दबा रखा था।

"छोड़ भी," वह चिल्लाया, पर उसके मुंह पर मिट्टी चिपक गई और खुद उसे भी घुटी-घुटी आवाज़ ही सुनाई दी।

सिर घुमाकर वह गुस्से से मिट्टी थूकने लगा।

उससे कोई बीस कदम दूर घोड़े पर वही नौसैनिक दौड़ा जा रहा था, जो घुड़सवारों को हमले में ले गया था।

गगोजिन ने उसे पहचाना ही था कि नौसैनिक ने पूरे ज़ोर से लगाम खींची, पीठ के बल घोड़े पर गिरा, पर तभी लगाम हाथ से छोड़ दी, और घोड़े ने उसे ज़मीन पर झटक दिया। घुड़सवार का एक पांव क्षण भर को रकाब में फंसा रहा, फिर निकल गया।

घोड़ा सरकस के घोड़े की भांति चिरागपा हो गया और अगली टांगें हवा में फेंकने लगा। उसके पुट्ठे डूबते सूरज की किरणों में लाल हो रहे थे और लगता था मानो वह सीधे आसमान में चढ़ता जा रहा हो। गगोज़िन को सहसा वह इतना छोटा लगा कि एक कागज़ पर समा सकता था। फिर वह दुबारा से बड़ा हो गया और स्तेपी में भाग गया।

गगोज़िन के कानों में पड़ती चीख-पुकार में सबसे स्पष्ट थी:

"कमिसार!.. कमिसार!.."

उसने सिर और घुमाया – यह देखने के लिए कि किसने उसे अपने बूट से यों ज़मीन पर दबा रखा है।

अपनी आंखों के सामने ही उसे एक परिचित सा चेहरा दिखा, जिसे वह पहचान नहीं पा रहा था – गालों की हड्डियां उभरी हुई, नथुने फूले हुए और भारी-भरकम ठोड़ी। यह आदमी खीसें निपोरता हुआ उसके कान में चिल्ला रहा था:

"कहां लगी? कहां?"

गगोज़िन समझा नहीं कि इस आदमी को क्या चाहिए, पर तभी उसे याद आया कि यह स्त्राग्नोव है, और न जाने क्यों वह खुश हो गया। वह भी जवाब में चिल्लाना चाहता था, पर चिल्ला नहीं पाया, बस मुश्किल से घुरघुराया:

"मैं अपने आप," और उठने लगा।

कंधे और हंसली में ऐसी पीड़ा हुई, जैसी उसने पहले कभी भी अनुभव न की थी, और उसे पड़े रहना पड़ा।

"क्या अपने आप? हुं, अपने आप..." स्त्राग्नोव गुस्से में बड़-बड़ाया और गगोजिन को पलटते हुए उसकी पीठ और घुटनों तले हाथ देने लगा।

फिर स्त्राश्नोव ने उसे बच्चे की तरह उठा लिया और दौड़ने लगा। रागोज़िन को रह-रहकर उठती तीव्र पीड़ा के अलावा और कुछ महसूस नहीं हो रहा था और इस पीड़ा से वह बेसुध हो रहा था। स्त्राश्नोव अपने कदम तेज़ करता जा रहा था, घायल के बोझ से झुका जा रहा था और डर रहा था कि मैदान पार करने से पहले ही कहीं कज़्ज़ाक न आ धमकें। घोड़ों की टापें अब पहली बार से अधिक ज़ोर से सुनाई दे रही थीं, एक बार फिर से गोलियों की बौछार हुई ...

नदी के किनारे पर ही स्त्राश्नोव को स्ट्रैचर लिये कुछ लोग मिले। रागोज़िन को स्ट्रैचर पर लिटाकर मोटरबोट से उसने उसे 'अक्तूबर' पर पहुंचाया।

लेकिन पोत के निचले डेक पर गोला गिरा था और वहां मरम्मत का काम चल रहा था। मिस्त्रियों का बजरा पोत से आ लगा था। इसे बजरे पर एक केबिन खाली थी, रागोज़िन को वहीं ले जाकर लिटाया गया। पोत के डाक्टर ने घायल को देखकर बताया कि बाईं हंसली चूरचूर हो गई है, एक तंत्रिका केंद्र पर चोट पहुंची है और आपरेशन की जरूरत है। इसके बाद स्क्वैड्रन कमांडर रागोज़िन के पास आया।

"सो, भाई मेरे, अब आपको अस्पताल भेजना होगा," कमांडर ने सहानुभूति दिखाते हुए पर साथ ही सख्ती से कहा, जैसे कि मरीज़ों से बात की जाती है।

यहां लेटे हुए रागोज़िन को दर्द इतना परेशान नहीं कर रहा था। हौले से उसने जवाब दिया:

"कामरेड कमांडर, मैं आपके मातहत नहीं हूं।"

"भाई मेरे, हम पांच साल से लगातार लड़ रहे हैं। और आप मातहती की बात करते हैं!"

"खैर... मैं यहीं रहूंगा।"

"नहीं, भाई मेरे। भेजना मुमकिन है तो ऐसा करना मेरा फ़र्ज़ है। वहां डाक्टर आपको टटोल-वटोल लेंगे कि क्या हुआ है।"

"कैसे है... तट पर?"

"तट पर क्यों? अस्पताल वाले जहाज़ पर डाक्टर देखेंगे।"

"मेरा मतलब, तट पर लड़ाई कैसे..."

"लड़ाई चल रही है। इसकी फ़िक्र हम करेंगे। अभी जब तक हमने गोलाबारी शुरू नहीं की, आपको अस्पताल भेजे देते हैं।"

"कैसी गोलाबारी?"

"आड़ देने के लिए। पीछे हट रही फ़ौजों को आड़ देंगे।"

गगोजिन टकटकी लगाये कमांडर की ओर देखे जा रहा था। उसकी आंखें चमक रही थीं। प्रत्यक्षतः उसे बुखार चढ़ रहा था। उसने सिर उठाया, पर तुरंत ही गिरा दिया। भौंहें सिकोड़कर उसने पूछा :

"पीछे हटेंगे?.. स्त्राग्नोव! क्या है यह... पीछे हटेंगे?"

स्त्राग्नोव केबिन के दरवाजे में से झांक रहा था। अब वह अंदर आ गया।

"कोई बात नहीं, लेटे रहो," उसने फुसफुसाकर कहा, "सब ठीक है।"

गगोजिन कराहते हुए चीखा :

"क्या मुझे लोरियां सुना रहा है?! दाई!.."

फिर वह शांत हो गया और खोखली सी आवाज़ में बोला :

"इतना तो सह सकता हूं... जब पीछे हट रहे हैं, तो फिर ठीक क्या है?"

"क्यों?" स्त्राग्नोव ने बुरा मानते हुए कहा। "सरातोव से उनको पीछे हटा दिया? वोल्गा पार नहीं करने दी? वे तो एल्तोन झील के पास उराल के सफ़ेद गार्डों से हाथ मिलाने चले थे। पर हमने उनकी उंगलियां काट दीं..."

"सुनाये जाओ लोरियां!" गगोज़िन ने उसांस भरी और आंखें मूंद लीं।

कमांडर ने बाहर निकलते हुए स्त्राग्नोव से फुसफुसाकर कहा :

"अर्दलियों को बुला लाओ। दायें डेक से नाव में उतारना होगा।"

डाक्टर यह देखता रहा कि कैसे घायल को ले जाया जा रहा है, फिर घिरनी के रस्से से लटकते जालीदार पालने में स्ट्रैचर रखा गया। नौसैनिक डेक पर जमा हो गये थे। भाप छोड़ी गई और रस्सा धीरे-धीरे तन गया। स्त्राग्नोव नजर रखे था कि कहीं स्ट्रैचर पालने में दब न जाये। गगोजिन को अपने ऊपर झुका स्त्राग्नोव दिखा तो

उसने दायां हाथ थोड़ा सा ऊपर उठाया। स्त्राश्नोव ने हौले से उसका हाथ दबाया।

"देखा," वह बोला।

"किया क्या जाये" रागोज़िन ने जवाब दिया।

"खैर कोई बात नहीं," स्त्राश्नोव ने ढाढ़स दिया।

रस्सा और भी खिंच गया, पालना ऊपर उठ गया और स्त्राश्नोव उसे रेलिंग की ओर बढ़ाने लगा।

"हौले-हौले ऊपर लो," उसने धीरे से कहा और नौसैनिकों ने क्वार्टर डेक तक उसके शब्द पहुंचा दिये।

जब वह पालने को रेलिंग के पार धकेलने ही वाला था, तभी उसने झुटपुटे में देखा कि रागोज़िन और कुछ कहना चाहता है। उसने पल भर को रस्सा पकड़ लिया।

"तुम यहां मदद करते रहना," रागोज़िन ने जल्दी-जल्दी कहा, "जहाज़ की मरम्मत करने में..."

"वोल्गा वाले को मछली पकड़ना सिखाओगे," स्त्राश्नोव ने हंसकर कहा।

"अफ़सोस कि तुम वोल्गा के नहीं हो!.."

"ऊपर लो!" स्त्राश्नोव ने ज़ोर से हुक्म दिया।

उसने पालने को रेलिंग से परे धकेल दिया, फिर पालना नीचे जाने लगा। जहाज़ की बगल की परछाईं में रागोज़िन ऊपर से बिल्कुल काला लग रहा था। स्त्राश्नोव ने चिल्लाकर कहा :

"हम उत्तर वाले भी मछली पकड़ने में वोल्गा वालों से कम नहीं हैं। फिर मिलेंगे, प्योत्र पेत्रोविच! जल्दी-जल्दी ठीक होना!"

"जल्दी-जल्दी ठीक हो जाओ, कामरेड कमिसार," रेलिंग पर झुककर नीचे अंधेरे में देखते हुए नौसैनिकों ने कहा।

कोई दो मिनट बाद मोटरबोट चली। चक्कर काटती हुई वह 'अक्तूबर' पोत से परे हट गई और नदी के बीचोंबीच चल दी। उसकी पीली-पीली बत्ती अभी पानी पर दिखाई दे ही रही थी, जब सफ़ेद गार्डों को उत्तर की ओर बढ़ने से रोकने के लिए पोतों की तोपों से गोले बरसाये जाने लगे।

लीजा और अनातोली मिखाइलोविच का विवाह मध्य सितम्बर में हुआ।

सन्ध्या समय वर्षा हो रही थी, जब दो घोड़ागाड़ियां कज़ान गिरजे के पास आकर रुकीं और लीज़ा अपने हिम धवल परिधान का दामन समेटती फाटक में घुसी (यह पोशाक लीज़ा ने अपने पहले विवाह की पोशाक से ही बनाई थी)। पल भर को जंगले के पीछे से उसे वोल्गा का फ़ौलादी पाट दिखा। हर साल पतझड़ में वह वोल्गा को इसी रूप में देखती आई थी, कुछ आश्चर्य के साथ उसके मन में यह विचार आया कि पहले वाली लीज़ा का जीवन भी इसी तरह अनवरत चलता जा रहा है। इसी आश्चर्य की भावना के साथ कि वह वही पहले वाली लीज़ा है, उसने गिरजे की दहलीज़ लांघी।

गिरजे के बीचोंबीच पाठ मंच के पीछे कुछ पतली-पतली मोमबत्तियां जल रही थीं, कोनों में अंधेरा ही था। लगता था कि इस अंधेरे में ही वह रहस्यमय अनुष्ठान होगा, जिसके लिए लीज़ा यहां आई है, जबकि प्रकाश में बिल्कुल साधारण सा ही कुछ होगा।

वीत्या विवाह पहली बार देख रहा था। मां का चेहरा कांतिमय था और अनातोली मिखाइलोविच का रोबीला (शायद यह दिखाने के लिए कि वह अब वीत्या का पिता है, मात्र अनातोली मिखाइलोविच नहीं) – इससे वीत्या को इस बात में कोई संदेह न रहा था कि यह रस्म अवश्य ही महत्वपूर्ण है। पर जब अनातोली मिखाइलोविच और मां के सिरों के ऊपर मुकुट पकड़े गये और वे दोनों हाथ में हाथ डालकर पाठ मंच की परिक्रमा करने लगे, तो वीत्या को इसमें बड़ा मज़ा आया। नगों से जड़े सुनहरी मुकुट तले अनातोली मिखाइलोविच बिल्कुल ज़ार निकोलाई* जैसा लगता था। वीत्या ही-ही करके हौले से हंसा। किसी ने उसे टोका। उसने सिर घुमाया और थोड़ी दूर अपने जैसे ही दो लड़कों को खड़े देखा, वे गली से अंदर चले आये थे और अनातोली

---

* निकोलाई द्वितीय – रूस का अंतिम सम्राट (शासनकाल १८९४–१९१७)। – सं०

मिखाइलोविच को ताकते हुए खीसें निपोर रहे थे। वीत्या पीछे हटने लगा, बड़ों के बीच से रास्ता बनाता हुआ निकल गया और फिर मुंह पर हाथ रखकर हंसने लगा।

जब वह जी भरकर हंस चुका, तो उसने देखा कि वह ठंडे स्तम्भ से सटा खड़ा है। वह परे हट गया।

झुटपुटे में स्तम्भ पर से एक वृद्ध उसकी ओर देख रहा था, उसका विवस्त्र शरीर टखनों तक लंबी सफ़ेद दाढ़ी से ढका हुआ था। उसकी नज़र दहकती सी और भूखी थी। वीत्या और परे हट गया। उसे लग रहा था कि उसने बुरा काम किया है। सहसा मुकुट तले खड़े अनातोली मिखाइलोविच और इस भूखी नज़र वाले विवस्त्र वृद्ध के बीच विरोधाभास उसे परेशान करने लगा। जब तक विवाह की रस्म चलती रही, वह इस परेशानी में ही खड़ा रहा – मुड़-मुड़कर संत की ओर देखता हुआ।

कुल जमा विवाह वीत्या को अच्छा लगा। गिरजे जाते हुए भी और वहां से आते हुए भी उसने घोड़ागाड़ी की सवारी की। गिरजे में भी और घर पर भी रौनक थी। मेहमानों में ऐसे लोग भी थे जिन्हें वीत्या नहीं जानता था, अनातोली मिखाइलोविच ने उन्हें निमंत्रित किया था। दावत खाते हुए जल्दी ही सब मस्ती में आ गये और क्रिया पदों के बिना, टूटे-टूटे वाक्यों में बातें करने लगे :

"लाओ, अभी हम इसे ... इसके साथ ..."

"वाह!.. कमाल है ..."

"क्या है इसमें?"

"अच्छा, पिपरमिंट! तब तो वाक़ई!"

"नींबू की भी ... क्या ज़ोर देती है!"

"नहीं, पिपरमिंट के मुकाबले में कुछ नहीं!.."

सहसा मानो हवा के तेज़ झोंके से पत्ते खड़खड़ा उठे – सब एक साथ बोलने लगे :

"सुनिये! – नहीं, अभी मैं। – ठहरिये! – एक मिनट! – रुको भी न, ऐसे तो हम कभी भी ... – और मैं क्या?.. मैं भी तो यही ... अरे, नहीं ... बोलने तो दो ... ऐसे नहीं चलेगा!.. हां, यही तो बात है!"

फिर झोंका निकल गया, पत्ते शांत हो गये। मेहमान पलकें झपकाने

लगे, हुं-हां करने लगे, और उनके भारी सिर झुकने लगे। जो वाक् कला में निपुण थे, वे अपने गूढ़ विचार व्यक्त करने लगे।

"ज़रा इस बात पर ध्यान दीजिये," बहस का जवाब देते हुए ओज्नोबिशिन कह रहा था। वह अपना महिलाओं जैसा हाथ थोड़ा नचा रहा था। "एक तरह के कृत्यों पर प्रतिबंध लगाकर हम सदा इसके विपरीत कृत्यों को प्रोत्साहन देते हैं। शत्रुता रखना मना है, तो इसका अर्थ है प्रेम करना चाहिए। क्रूरता की निंदा करते हुए हम दयालुता का प्रोत्साहन देते हैं। अब कल्पना कीजिये कि बात इससे उलट हो गई: हम दयालुता पर अंकुश लगाने लगे। तो क्या होगा?"

"बर्बरता!" एक मेहमान झट से बोल पड़ा, अपना भारी सिर उसने ऊपर उठाया और तुरन्त ही छाती पर गिरा लिया।

"दयालुता पर अंकुश कौन लगा रहा है?" विद्यार्थी ने पूछा (उसे भी बुला लिया गया था, क्योंकि वह लीज़ा को कैलशियम के टीके लगाता था)। "जन चिकित्सा सेवा को लीजिये, जिसे..."

"यह भी क्या दयालुता है," लीजा ने मज़ाक करते हुए उसे टोका, "इतनी बड़ी सूई घोंपते हैं!"

वह अपने विवाह के परिधान में प्यारी लग रही थी और यह जानती थी। उसे यह थोड़ा बुरा लग रहा था कि मेहमानों को सरूर चढ़ गया है और वे इधर-इधर की बातें करने लगे हैं, जिनसे ओज्नोबिशिन का ध्यान उसकी ओर से हटता है; मेहमान यह भूल गये लगते है कि यह विवाह की दावत है और यहां सब कुछ सुखद होना चाहिए। उसे लग रहा था कि उसका बेटा ही दूसरों से अधिक उसकी ओर ध्यान दे रहा है और खुश हो रहा है। उसने बेटे के गिलास में चुकंदर का रस डाला।

"यह तुम्हें मेरे लिए, अपने लिए और अनातोली मिखाइलोविच के लिए पीना है।"

वह खुशी-खुशी देख रही थी कि कैसे वीत्या जल्दी-जल्दी घूंट भर रहा है, उसका चेहरा लाल होता जा रहा है और वह हर्ष-विभोर मां की ओर देख रहा है।

नहीं, जो भी हो था यह विवाह का उत्सव ही। बेशक बग्घी के बजाय घोड़ागाड़ी पर गिरजे गये थे, शैम्पेन की जगह चुकंदर का

रस पी रहे थे, गीत-संगीत नहीं था और नये कपड़े भी नहीं सिले थे। कमरे की हर वस्तु पर भव्यता की तो नहीं, पर हां उल्लास की छाप थी, कम से कम लीज़ा की नज़रों में ऐसा ही था।

शीघ्र ही मेहमान चले गये, उस समय से पहले-पहले, जिसके बाद सड़कों पर निकलना मना था। घर में जल्दी-जल्दी हो रही सफ़ाई की खनक गूंजने लगी।

सब ठीक-ठाक करके ओज़्नोबिशिन लीज़ा के बगल में सोफ़े पर बैठ गया। उसने लीज़ा का हाथ अपने दोनों हाथों में लिया। अपनी वफ़ाभरी नज़रों से, जिनमें चालाकी की हल्की सी झलक थी, वह कह रहा था कि अब उन दोनों की मनोकामना पूरी हो गई है, कि वे अब एक परिवार हैं, उनका अपना घर है, घोंसला है, मांद है, जिसमें वे संसार के तूफ़ानों के थपेड़ों से बच सकते हैं।

"कितना धनवान हूं मैं! सब कुछ जो तुम्हारा है वह अब मेरा है। मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूं," थोड़ी देर चुप बैठे रहने के बाद वह बोला।

"यह तो कब से तुम्हारा है," लीज़ा ने उत्तर दिया।

"अब यह सचमुच मेरा है, पूरी तरह। पुराने ज़माने में जैसे व्यापारी घरानों में कहा जाता था, पता है? बोये हुए और पक रहे और खलियान में रखे हुए अनाज समेत ..."

दरवाज़े के बाहर किसी के खांसने की आवाज़ आई। ओज़्नोबिशिन उठा।

उनका बूढ़ा पड़ोसी मत्वेई गलियारे में पांव बदलता खड़ा था, दस्तक देने में झिझक रहा था। पता चला कि कोई आदमी आया है, येलिज़ावेता मेरकूर्येव्ना से मिलना चाहता है, मत्वेई ने उससे कहा भी है कि ठीक वक्त नहीं – अभी-अभी शादी हुई है, पर वह अपनी बात पर अड़ा हुआ है। शायद मेहमानों में से कोई लौटा है? नहीं, कोई अनजान आदमी है, जो अपना नाम नहीं बता रहा।

फुसफुसाहट सुनकर लीज़ा बाहर आई, तुरन्त ही चिंतित हो उठी और कहा कि उस आदमी को अंदर आने दें।

मिनट भर बाद ओज़्नोबिशिन अजनबी को लेकर अंदर आया।

यह छोटे से कद का अनिश्चित आयु का आदमी था, सिर पर सफ़ेद बालों की एक पट्टी थी, दाढ़ी उसने शायद अरसे से नहीं बनाई

थी। वह संकोची स्वभाव का लगता था। अपने स्ट्रा हैट के किनारों को मसोमते हुए उसने कमरे में गौर से नज़र दौड़ाई और अपने कोट के बटनों पर उंगलियां फेरकर देखा कि सब बंद हैं न। शायद उसे यह फ़िक्र थी कि कहीं उसकी वेशभूषा उसके लिए बाधक न हो।

"आज्ञा है?" उसने हौले से पूछा और फिर से कमरे की दीवारों पर नज़र दौड़ाई।

"क्या चाहते हैं आप?" लीज़ा ने भी अनचाहे ही उसी की भांति हौले से पूछा।

"आप येलिज़ावेता मेरकूर्येव्ना हैं?"

"हां, हां, बताइये क्या बात है।"

"आपके पिता को दिये वचन को अपना कर्तव्य मानते हुए मैंने आपको ढूंढ़ने की जल्दी की... क्षमा कीजिये, गलत घड़ी पर पहुंचा हूं।"

"आप पिता जी के पास से आये हैं?"

"अगर आप मेरकूरी अव्देयेविच की बेटी हैं, तो मैं..."

"मैं मेरकूरी अव्देयेविच मेश्कोव की बेटी हूं। आप उनके पास से आये हैं? ख़्वालीन्स्क से?"

"नहीं, मैं यहीं का हूं।"

"पर आप वहां थे... आप ख़्वालीन्स्क से आये हैं?"

"कुछ ऐसा संयोग हुआ कि आपके पिता जी से मेरी भेंट हुई, जिसकी न मुझे आशा थी, न उन्हें ही..."

"आप पिता जी से मिले हैं?.. क्या हुआ पिता जी को?" लीज़ा ने जोर से पूछा, उसका भयभीत हो उठा मन उसे आगे धकेल रहा था, पर वह लड़खड़ाकर एक कदम पीछे ही हटी और उसने पति का हाथ कसकर पकड़ लिया। वह स्पष्टतया देख रही थी कि यह छोटे से कद का भलमानस कोई बुरा समाचार लाया है, जानती थी कि वह कामकाजी पत्रों की अपनी भाषा में अभी यह कुसमाचार सुनायेगा, उसका अंग-अंग इस सदमे को सहने को तैयार हो रहा था, और मानो केवल पति का हाथ ही, जिसे वह अधिक ही अधिक जोर से दबाये जा रही थी, हिम्मत जुटाने में उसकी मदद कर सकता था।

"आप मेरकूरी अव्देयेविच से ख़्वालीन्स्क में नहीं मिले? तो कहां मिले?" ओज़्नोबिशिन ने लीजा का हाथ सहलाते हुए पूछा।

"जैसा कि मैं बता चुका हूं मैं यहीं का रहनेवाला हूं, और नगर छोड़कर जाने की मेरी कभी कोई इच्छा नहीं रही। परन्तु कुछ परिस्थितियोंवश कुछ दिन पहले मुझे जाना पड़ा... वल्कि यह कहना अधिक उचित होगा कि मुझे ले जाया गया – अधिक दूर तो नहीं, और सौभाग्यवश शीघ्र ही छोड़ भी दिया गया।"

"आप मेरकूरी अव्देयेविच के बारे में बताना चाहते थे," ओज़्नोबिशिन ने कहा।

"ठीक कहते हैं। मैं यह बता रहा था कि कैसे उनसे मेरी भेंट हुई। दुर्भाग्यवश मुझे बड़ी धार पर ले जाया गया था। जानते हैं आप वहां क्या है?"

"बड़ी धार पर?" ओज़्नोबिशिन ने पलटकर पूछा, हालांकि पूछने की कोई बात नहीं थी, क्योंकि तुरन्त ही उसके कंधे झुक गये और भयभीत दृष्टि से उसने लीज़ा की ओर देखा।

"क्या है वहां?" लीज़ा ने पूछा, हालांकि वह भी समझ रही थी कि चर्चा किस बात की है, पर मानो अभी भी यह स्वीकार नहीं करना चाहती थी कि सब समझ रही है।

"बजरे पर," अजनवी ने अपनी बात स्पष्ट की। "मुझे बजरे पर रखा गया था। और चूंकि गलतफ़हमी पूरी तरह साफ़ हो गई, इसलिए आज छोड़ दिया गया। मुझे पोक्रोव्स्क में छोड़ा गया, वहां से नाव पर मैं सरातोव आया और तुरन्त ही समय गंवाये विना आपके पास हाज़िर हुआ। अपने वचन का कर्तव्य निभाने..."

"पिता जी वहां हैं?" लीज़ा ने चौंककर सिर ऊपर उठाते हुए पूछा, लगा मानो वह सहसा अधिक लंबी हो गई हो।

"क्षमा कीजिये, अत्यंत खेद के साथ मुझे यह कहना पड़ रहा है कि इस समय मेरकूरी अव्देयेविच बजरे पर हैं..."

लीज़ा पति से सट गई। लीज़ा को लिपटाकर वह उसे सोफ़े तक ले गया और वह वहां बैठ गई।

"निस्संदेह आप मुझे क्षमा कर देंगे, मैं अपना वचन निभाने आया हूं, और आपके पिता के हित में, जिनके साथ मैं पिछले दिनों बंद था। उन्होंने बार-बार मुझसे अनुरोध किया था और मैंने आपको संदेश देने का वचन दिया था, क्योंकि उनके लिए इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में एक-एक मिनट मूल्यवान है।"

"कैसा मिनट? किसलिए?" लीज़ा अब सचमुच ही नहीं सम
रही थी।

"आपके पिता जी बुरी संगत में फंस गये हैं। और जैसा कि आ
ही शब्दों से मैं समझ पाया हूं, उन्हें ख़्वालीन्स्क से नदी के रास्ते य
लाया गया है। स्वयं मेरकूरी अव्देयेविच ने मुझे इस बारे में कुछ न
बताया। यहां लाकर उन्हें नदी पर छोड़ दिया गया, दूसरे शब्दों
बजरे पर रखा गया है, क्योंकि बजरे की जेल ही सबसे निकट थ
जिस संगत में वह फंस गये थे, वह वैसे तो एक ही आदमी की
पर जैसा कि मेरकूरी अव्देयेविच ने मुझे बताया, वह आदमी ब
बुरा है। क्षमा कीजिये, वह भूतपूर्व राजनीतिक पुलिस का अफ़
है। और उसका नाम भी शायद मशहूर है–पोलोतेन्त्सेव।"

"हे भगवान!" ओज़्नोबिशिन के मुंह से निकला।

"जैसा कि बजरे पर पता चला है यहां पहुंचने के कुछ दिन ब
पोलोतेन्त्सेव" (इतना कहकर इस आदमी ने ऐसा मुंह बनाया,
कि मुस्कराना चाहता हो) "परलोक सिधार गया... ही-ही, जहां
दुख है, न सुख।"

"आप पिता जी की बात करिये!" सहसा लीज़ा ने रुखाई
उसे टोका।

वह पल भर को हिचकिचाया, पर फिर अपनी उसी आडम्बर
शैली में बोलने लगा:

"पोलोतेन्त्सेव के मामले का सूत्र खुलने के सम्बन्ध में आपके पि
जी अपने भाग्य पर अत्यंत चिंतित हैं।"

"पिता जी का राजनीतिक पुलिस से कोई वास्ता नहीं हो सकता
लीज़ा ने गुस्से में कहा।

"जी, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता, हमें-आपको कोई स
नहीं हो सकता। उन्हें देखते हुए मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि आ
पिता अपने रुझानों के अनुसार केवल प्रभु की प्रार्थनाओं में ही म
रहते हैं, और किसी बात से उनका कोई सम्बन्ध नहीं। परन्तु वर्तम
समय में, जैसा कि मेरा अपना अनुभव कहता है, भाग्य की अ
शक्तियां कार्यरत हैं।"

"क्या?" ओज़्नोबिशिन ने पूछा।

"भाग्य की अंधी शक्तियां। और मेरकूरी अव्देयेविच आपसे विनती करते हैं कि आप उनकी सहायता का पूरा-पूरा प्रयत्न करें, क्योंकि किसी भी क्षण उनके भाग्य का निश्चय हो सकता है, यहां तक कि..."

यह कहते-कहते अजनबी ने सहमी नज़रों से मुड़कर देखा।

वीत्या दबे पांव दूसरे कमरे में से निकल आया था और गुस्से तथा चुनौती भरी नज़रों से उसे देखता वहां खड़ा था।

"नाना जी ज़िंदा हैं?" बहुत ही रुखाई से उसने पूछा।

"हां," भलमानस ने जवाब दिया, वह मानो वीत्या की नज़रों से सकपका गया था। "इतना निश्चित तौर पर कह सकता हूं कि आज सुबह जब मुझे छोड़ा गया था, उस समय मेरकूरी अव्देयेविच बजरे पर थे।"

"जानता हूं नदी पर वह बजरा," वीत्या ने दृढ़तापूर्वक कहा। "जब हम आर्सेनी रोमानोविच के साथ मछली पकड़ने गये थे, तो देखा था। नदी की बड़ी धार में लंगर डाले है। आर्सेनी रोमानोविच ने बताया था कि वहां प्रतिक्रांतिकारी बंद हैं। हमारे नाना तो ऐसे नहीं हैं! चलो मां, नाव लेकर चलते हैं!"

"चुप रहो, वीत्या, जाओ यहां से," ओज़्नोबिशिन ने कहा, पर लीज़ा ने जल्दी से बेटे की ओर हाथ बढ़ाये।

"आओ मेरे पास।"

उसने वीत्या को सटा लिया।

"सो मैंने अपना वचन पूरा कर दिया है," आगंतुक ने अपना हैट दिल पर रखते हुए और विनम्रतापूर्वक विदाई लेने को तैयार होते हुए कहा। "अपनी ओर से मैं आपको यही परामर्श दूंगा कि ज़रा भी देर न करें।"

"पता नहीं, कैसे आपका शुक्रिया अदा करें," ओज़्नोबिशिन ने कहा। "हालांकि शुक्रिया की बात ही... आप समझते हैं न? ऐसी खबर है..."

"बिल्कुल! मैं तो स्वयं असमंजस में था कि कैसे आपको व्यर्थ की पीड़ा पहुंचाये बिना तैयार करूं।"

"तैयार करें? किस बात के लिए?" लीज़ा सहसा चिल्लाई और सोफ़े से उठने को हुई।

"क्षमा कीजिये! तैयार करने से मेरा अभिप्राय था आपको अपने पिता की रक्षा के लिए कदम उठाने की ओर ले जाना। मेरा कोई स्वार्थ नही, मैं तो बस मेरकूरी अव्देयेविच का आदर करता हूं। उन्होंने अपनी विनम्रता से मेरा हृदय जीत लिया है। गुणवान व्यक्ति हैं! मैं उन्हें बहुत पहले से जानता हूं।"

उसने मुंह पर उंगली रखी:

"हमारी आपस की बात है: मेरकूरी अव्देयेविच जब दुकान चलाते थे, मैं आपके पास वाली दुकान में काम करता था। सो अब मुझे याद आता है कि मैंने आपको भी, येलिज़ावेता मेरकूर्येव्ना, तब देखा था। और मैं कामना करता हूं कि आप सफल हों, पिता की सहायता करने में।"

उसने एक बार फिर अपना स्ट्रा हैट छाती से सटाया और सिर झुकाया। वीत्या के सामने वह अलग से झुका।

ओज़्नोबिशिन उसे छोड़ने गया और शोर न करने की कोशिश करते हुए अंदर लौट आया।

लीजा वैसे ही बैठी थी, जैसे वह उसे छोड़कर गया था। बेटे को बाहों में भरे एकाग्रता से अपने सामने कुछ देखती हुई वह बैठी थी। विवाह की अपनी सफ़ेद पोशाक में वह धीर-गम्भीर लग रही थी। ओज़्नोबिशिन उसके सामने बैठ गया। कुछ देर तक कोई हिला-डुला नहीं। फिर ओज़्नोबिशिन लीज़ा से नज़र मिलाने की कोशिश करता हुआ आगे को झुका।

"बड़ी मुश्किल होगी अगर मेरकूरी अव्देयेविच... पोलोतेन्त्सेव के मामले में फंसे हुए हैं," उसने चिंतित स्वर में कहा।

लीजा ने शून्य में लगी अपनी फटी-फटी आंखें तुरन्त उसकी ओर घुमाईं।

"क्या फ़र्क पड़ता है, फंसे हुए हैं या नहीं?"

"ऐसा सम्पर्क कानूनी दृष्टि से दोष को और बढ़ाता है।"

"पर हमारा काम क्या उनका दोष देखना है?" लीज़ा ने हैरान होकर पूछा।

"नहीं, लीजा," ओज़्नोबिशिन बोला। वह अपने शब्दों के प्रभाव को अब शीघ्रातिशीघ्र मृदु स्वर से दूर कर देना चाहता था। "मैं दोष

की बात नहीं कर रहा। तुम्हारी तरह मुझे भी पूरा विश्वास है कि मेरकूरी अव्देयेविच का कोई दोष नहीं है। मैं तो बाधाओं की बात कर रहा हूं, जो उन्हें छुड़वाने के हमारे जतनों के रास्ते में आ सकती हैं।"

"यह सोचने की क्या ज़रूरत है कि क्या बाधाएं आ सकती हैं? यह सोचना चाहिए कि कैसे जल्दी से जल्दी मदद की जाये।"

"बिल्कुल ठीक कहती हो! पर सही रास्ता ढूंढ़ने का मतलब ही है उन बाधाओं का अनुमान लगा लेना, जो रास्ते में आ सकती हैं... ताकि उन्हें लांघा जा सके। ठीक है न?"

"मैं कह तो रहा हूं आपसे कि मुझे बजरे का सीधा रास्ता पता है!" वीत्या उतावली से बोला, वह हैरान था कि वे उसकी बात क्यों नहीं समझ रहे। "आर्सेनी रोमानोविच एक नाव वाले को जानते हैं। मत्वेई दादा को भी पता है। नाव ले लेते हैं और मैं आपको ..."

मां ने उसका सिर अपनी छाती से सटाकर उसकी बात बीच में ही काट दी।

"तुम्हें रागोज़िन का ख्याल नहीं आया?" उसने पति से पूछा और उसके चेहरे पर उत्तर ढूंढ़ने लगी।

वीत्या मां के हाथों से निकला और उछलकर खड़ा हो गया। इससे पहले कि वह उसे अपनी ओर खींचती वह खुशी से चिल्लाया:

"मां, मुझे रागोज़िन का ख्याल आया था, भगवान कसम! मैं पाव्लिक के साथ उनके पास गया था। और हमने जो कहा था, उन्होंने सब कुछ वैसे ही किया। आर्सेनी रोमानोविच के लिए। प्योत्र पेत्रोविच झटपट सब कुछ कर देंगे: वह तो नाना जी को जानते हैं!"

"नहीं, बावले, अभी तुम बड़ों की सलाह देने लायक नहीं हुए," ओज़्नोबिशिन ने ऐसी मुस्कान के साथ कहा कि क्षण भर को लीज़ा का ध्यान अपने प्रश्न से हटकर लड़के की ओर चला जाये।

जिस क्षण से ओज़्नोबिशिन यह समझ गया था कि अप्रत्याशित आगंतुक क्या समाचार लाया है, उसी क्षण से वह रागोज़िन के बारे में सोच रहा था। उसी क्षण वह समझ गया था कि तुरन्त ही मेश्कोव की मदद के लिए दौड़-धूप शुरू होगी, कि यह सारी दौड़-धूप उसी को करनी होगी, कि यह दौड़-धूप खतरे से खाली नहीं होगी और शायद इससे कुछ होने का भी नहीं, कि दौड़-धूप चाहे कितनी ही खतरनाक

और निरर्थक क्यों न हो, वह उससे कन्नी नहीं काट सकता और उसे उसका जिम्मा लेना ही होगा। उसे डर था कि इस घटना का लीज़ा के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ेगा, जो अभी पूरी तरह सुधरा नहीं था, और इसलिए उसे और भी अधिक कोशिश करनी होगी, ताकि लीज़ा के मन में मामले के अच्छे अंत की आशा बनी रहे। परन्तु उसे इस बात का भी कम डर नहीं था कि अगर मेरकोव पर पोलोतेन्त्सेव के साथ सम्पर्क रखने का आरोप है, तो मेरकोव के लिए उसके जतन अधिकारियों की नजरों में पोलोतेन्त्सेव के लिए जतनों का रूप ले सकते हैं। साथ ही वह यह भी महसूस कर रहा था कि अब वह समय आ गया है जब उसे भलाई का बदला भलाई से चुकाना चाहिए, उसके जेल जाने पर लीज़ा और मेरकोव ने उसके लिए जो चिंता दिखाई थी, उसका अहसान चुकाना चाहिए। उसे लग रहा था कि यह उसकी नेकी की जांच की घड़ी है। परन्तु वह यह भी स्पष्टतया समझ रहा था कि वह कितना निस्सहाय है। उसे विश्वास था कि एक भूतपूर्व अधिकारी के नाते, जिस पर एक बार अपना अतीत छिपाने की कोशिश करने का संदेह किया जा चुका है, अब यह आशा करना मूर्खता होगी कि नये अधिकारी उसके लिए कुछ करेंगे या उसकी बात पर ध्यान देंगे। और वह पहले से ही अपने आप को यह यकीन दिला रहा था कि उसकी दौड़-धूप का कोई अच्छा नतीजा नहीं निकलेगा। ऐसे कठिन मामले में जो लोग सहायता कर सकते थे, उनमें से केवल एक को वह जानता था। यह आदमी था रागोज़िन। लेकिन रागोज़िन का ख्याल आते ही उसकी स्मृति में उनकी अंतिम भेंट का दृश्य उभरा, जब तरबूज के छिलके से ओज़्नोबिशिन का पांव फिसल गया था। रागोज़िन उसकी स्मृति में कठोर और अनम्य था, कैसे उसने ओज़्नोबिशिन की हंसी उड़ाते हुए कहा था: "मेरी सेवा करना आसान नहीं। मैं दूसरों की सेवाएं स्वीकार नहीं करता"। साथ ही ओज़्नोबिशिन को यह याद आये बिना भी नहीं रह सकता था कि रागोज़िन के पास जाते हुए उसका मन कैसे डांवांडोल हो रहा था, कैसे वह डर रहा था कि अभिलेखागार में कागज चुराने का उसका राज़ खुल जायेगा। जब से उसने वह कागज़ चुराया था और उसे वोल्गा में फेंक दिया था, उसे दिन-रात यह भय सताता रहता था कि कहीं और भी ऐसा ही कोई

कागज़ निकल आया तो? आखिर सारा अतीत तो नष्ट नहीं हो सकता था, कहीं पर तो वह छिपा हुआ है और सहसा कहीं से उसकी झलक दिखाई दे गई तो? तब क्या होगा? एक वकील के नाते वह कानून के प्रति अतिसंवेदनशील था, और पहले वह जिस तरह दूसरों के मामलों में बाल की खाल खींचा करता था, वही आदत अब स्वयं उसके खिलाफ़ हो रही थी, उसे चैन नहीं लेने दे रही थी। यह सोचकर ही उसका दिल दहलता था कि उसे फिर से रागोज़िन का सामना करना होगा।

अपने लिए, अपनी पत्नी के लिए और उस जीवन के लिए, जिसे आरम्भ करने की उसकी आशा अभी-अभी पूरी होने ही लगी थी, और जिस पर पहली घड़ी में ही ऐसी घोर परीक्षा आ पड़ी थी, इस सबके लिए उसका डर, उसके विचार, उसके संदेह कल्पनातीत गति से उसके हृदय और मस्तिष्क में तब घूम गये थे, जब वह बिन बुलाये मेहमान की अलंकृत भाषा में कही गयी बातें सुन रहा था, और अब जबकि लीज़ा अपने उत्तर की प्रतीक्षा कर रही थी, तब भी ये सब बातें उसकी कल्पना में और भी अधिक तेज़ी से घूम रही थीं।

सहसा वीत्या मां के हाथों से निकल गया, पर झटके से नहीं, बल्कि हौले से और परेशान सा बोला:

"मां, मैं भूल ही गया था: प्योत्र पेत्रोविच तो यहां हैं नहीं। पाव्लिक ने मुझे बताया था कि वह अब बेड़े पर कमिसार हैं और चले गये हैं। हो सकता है पाव्लिक ने झूठ बोला हो, हैं?" उसने हताश स्वर में अपनी बात काटी, लेकिन फिर हौले से बोला: "पर वह कह रहा था कि प्योत्र पेत्रोविच सारे बेड़े के साथ गये हैं..."

"अगर यह सच है तो बहुत ही बुरी बात है," ओज़्नोबिशिन ने जल्दी-जल्दी कहा।

लेकिन उसके यह कहने से पहले ही लीज़ा ने पति के चेहरे पर अपने प्रश्न का उत्तर पढ़ लिया था। वह उसके विचारों और भावनाओं के सारे क्रम को तो नहीं समझ पाई थी, लेकिन जो बात उसके लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण थी, वह जान गई थी: उसने देखा था कि वह लीज़ा के पिता के लिए दौड़-धूप करने से डर रहा है और यह स्वीकार करने में उसे शर्म आ रही है।

लीजा के चेहरे पर धीरे-धीरे कटु मुस्कान आई।

"यह है मेरा अनाज – बोया हुआ और पका हुआ और खलियान में रखा हुआ," सिर हिलाते हुए और पति की आंखों में सीधे देखते हुए उसने कहा।

वह यह उलाहना नहीं सह सका, लीजा की ओर लपका, वह अपने बेटे से लिपटी जा रही थी, बेटे से उसके हाथ छुड़ाते हुए वह उन्हें जल्दी-जल्दी चूमने लगा और बुदबुदाने लगा:

"हताश मत होओ.. हम पूरी कोशिश करेंगे, जरूर छुड़ा लेंगे... दूसरा आदमी ढूंढ लेंगे, जो हमारी मदद करेगा..."

लीजा बोली:

"मैंने ऐसा आदमी ढूंढ लिया है।"

वह ठिठककर जरा पीछे हटा। लीजा की शांत नज़र से उसे लगा कि लीजा ने उसे बख्श दिया है। उसने फ़ौरन पूछा:

"कौन?"

"इज़्वेकोव।"

जाने कितने बरसों बाद लीज़ा के मुंह से यह नाम निकला था और अजीब शांत स्वर में उसने यह नाम लिया था।

ओज़्नोबिशिन खड़ा हो गया। उसकी कोई पुरानी स्मृति जाग पड़ी, जिसमें यह नाम लीज़ा के साथ जुड़ा हुआ था – लीज़ा के चेहरे पर बालसुलभ सकोच या शायद भय ही था, और उसका विचित्र आकर्षण जिससे वह कभी उसकी ओर खिंचा था – सड़क पर, या शायद जन अभियोक्ता के कमरे में, या स्कूल छात्राओं के नृत्य उत्सव में – उसे याद नहीं था। हां, इतना उसे तुरन्त याद हो आया कि इज़्वेकोव का नाम प्योत्र रगोजिन के नाम से जुड़ा हुआ है, उस मनहूस मामले से जुड़ा हुआ है, जो अब इज़्वेकोव से सामना होने पर दूसरे पहलू से उभर सकता था।

"यह तो बहुत अच्छा विचार है, लीज़ा," ओज़्नोबिशिन ने उत्साह दिखाते हुए कहा, पर कमरे में टहलने लगा, ताकि लीज़ा अपनी प्रायः भावशून्य दृष्टि से उसके चेहरे के भाव न पढ़ती रहे और साथ ही वह स्वयं लीज़ा की इतनी अस्वाभाविक निश्चिंतता को न देख पाये, जो उसे परेशान करने लगी थी।

"बहुत ही अच्छा विचार है! हमें यहीं से शुरू करना चाहिए – इज़्वेकोव के पास जाना चाहिए!"

"मैं अकेली जाऊंगी," लीज़ा ने कहा।

"मां, मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा," वीत्या फिर से बीच में बोल पड़ा। "मैं इज़्वेकोव को जानता हूं। जब हम आर्सेनी रोमानोविच के साथ मछली पकड़ने ..."

"ओफ़, तुम और तुम्हारा आर्सेनी रोमानोविच," ओज़्नोबिशिन ने उसे टोका, "तुम यह टांग अड़ाना बंद करो! क्या कर सकता है तुम्हारा यह बाबा!"

"कोई बाबा-वावा नहीं," वीत्या को बुरा लगा। "वह तो गिरजे भी नहीं जाते। हां!"

"चलो, मैं तुम्हारा बिस्तर लगा दूं। तुम्हारा सोने का वक्त कब का हो चुका है," लीज़ा ने कहा और वीत्या को पकड़कर ले गई।

ओज़्नोबिशिन अपने छोटे-छोटे कदमों से कमरा नापता जा रहा था। उसके विचार अब पहले से कुछ धीरे, पर उसी दिशा में घूम रहे थे कि इस मुसीबत में वह कितना असहाय है, कि अभी वह अपने घोंसले का पहला तिनका भी न रखने पाया था कि उसके सिर पर इतनी बड़ी मुसीबत आ पड़ी। हां, ओज़्नोबिशिन विवाह के बाद के पहले घंटों की बिल्कुल दूसरी ही कल्पना करता आया था। और पौ फटने पर भी जब उसने अपनी लाल-लाल आंखों से खिड़की में देखा, तो रात के अंधेरे की ही भांति उसे कुछ नहीं दिखा, क्योंकि रात ठंडी रही थी और खिड़की के शीशों पर पानी सा आ गया था।

सुबह ओज़्नोबिशिन लीज़ा को छोड़ने जाने को तैयार हुआ, पर वह अकेली जाना चाहती थी। उसने विदा करते हुए लीज़ा का चुम्बन लिया और उसके होंठों को निरुत्तर पाकर उसे ठेस पहुंची।

लीज़ा की योजना सीधी-सादी थी: वह वहां जा रही थी, जहां इज़्वेकोव था – उसके काम की जगह पर, उस आदमी से बात करने, जो ऊंचे ओहदे पर था, एक प्रार्थी के रूप में बात करने। वह उस किरील के पास नहीं जा रही थी, जिससे कभी उसे प्यार था। वह नगर सोवियत के सेक्रेटरी के पास जा रही थी, उस कामरेड इज़्वेकोव

के पास, जिसका नाम उसने अखबार में पढ़ा था, जब वह नौ साल के बाद अपने नगर में लौटा था।

तब उसने अपने आप से कहा था कि उसे उससे नहीं मिलना है। मन में उसके नाम के एक-एक अक्षर को अलग-अलग करते और फिर जोड़ते हुए, आंखें कड़ुवा जाने तक उसे पढ़ते हुए, और दिल की धड़कन के साथ नाम के एक-एक अक्षर को छाती में गूंजते सुनते हुए लीजा इस नाम की पंक्ति पर आंखें गड़ाये जड़वत बैठी रही थी, और अपने आप को यह विश्वास दिलाती रही थी कि वह इज़्वेकोव, जो उसे प्रिय था, अब नहीं रहा है, इसलिए वह उससे नहीं मिल सकती, और वह इज़्वेकोव, जिसके बारे में अखबार में खबर छपी थी, उससे उसका कोई नाता नहीं है, इसलिए उससे मिलने का कोई कारण ही नहीं है।

अब उसके पास जाते हुए भी वह उस दिन की ही भांति अपने आप को यकीन दिला रही थी कि नगर सोवियत के सेक्रेटरी के पास जा रही है, किरील के पास नहीं। लेकिन ठीक वैसे ही, जैसा कि तब हुआ था, जब वह अखबार में बार-बार यह नाम पढ़ रही थी, और उसका हृदय यह स्वीकार नहीं कर रहा था कि यह वही पहले वाला नहीं, बल्कि कोई दूसरा इज़्वेकोव है, जिसकी उसे कोई ज़रूरत नहीं है, वैसे ही अब भी उसका हृदय यह नहीं मान रहा था कि वह पहले वाले किरील के पास नहीं जा रही, बल्कि किसी अनजान सेक्रेटरी किरील के पास जा रही है, जिससे उसे मदद चाहिए।

अगर उसे सेक्रेटरी इज़्वेकोव में उस किरील को ही पाने की उम्मीद न होती, जो उसमें लीजा को देख सकता था और उनके पुराने सम्बन्धों की खातिर उसका अनुरोध पूरा कर सकता था, तो फिर वह किसी दूसरे सेक्रेटरी के पास, या नगर सोवियत के अध्यक्ष के पास, या किसी भी दूसरे अधिकारी के पास अपनी प्रार्थना लेकर क्यों न जाती? लेकिन वह किरील के पास ही जा रही थी, पर फिर भी मन ही मन यह कहती जा रही थी कि किरील के पास नहीं, नगर सोवियत के सेक्रेटरी के पास एक प्रार्थी के नाते जा रही है।

जब वह नगर सोवियत में पहुंची, तो उसे बताया गया कि इज़्वेकोव सुबह ही कहीं बाहर से लौटा है, घर गया है, और दफ़्तर पता नहीं कब आयेगा।

फिर से बाहर आकर लीज़ा बगीचे के पास खड़ी हो गई। बबूल की पत्तियां अभी पीली नहीं पड़ी थीं, हां उनकी हरियाली भी गर्मियों जैसी नहीं रही थी और वे सूखी-सूखी थीं। हवा से पत्तियों में मर्मर नहीं हो रही थी, बल्कि सूखी खड़खड़ सुनाई दे रही थी। लीज़ा ने एक टहनी तोड़ ली और नाखूनों से पत्तियां तोड़-तोड़कर ज़मीन पर फेंकने लगी। सहसा, जैसे कि बचपन में वह किया करती थी, हर पत्ती के साथ वह बारी-बारी मन ही मन बूझने लगी : यहीं इज़्वेकोव का इंतज़ार करूं या उसके घर जाऊं। जल्दी-जल्दी उसने सारी पत्तियां तोड़ डालीं और आखिरी पत्ती के साथ आया 'घर जाऊं'!

पत्तियों से कुछ भी निकलता वह हर हालत में ही उसके घर जाती। पर अब चूंकि पत्तियों से भी उसके मन की बात निकली थी, सो उसने सोचा यह शुभ लक्षण है। आखिर नगर सोवियत का सेक्रेटरी तो घर पर भी सेक्रेटरी ही रहता है। और अगर लीज़ा उसके घर जायेगी, तो उसका यह अर्थ नहीं होगा कि वह किरील के पास गई है।

वह वापस नगर सोवियत में गई और कामरेड इज़्वेकोव के घर का पता पूछा। उसे पता नहीं दिया गया।

फिर से वह बाहर सड़क पर आ गई। उसकी स्थिति किसी निद्रा-चारी जैसी थी, जिसकी किसी लक्ष्य तक पहुंचने की इच्छा बाधाओं से टकराकर और भी अधिक प्रबल हो उठती है। उसने यह सोचा कि इज़्वेकोव मां के साथ ही रहता होगा, नहीं तो वेरा निकान्द्रोव्ना बता देंगी कि उनका बेटा कहां रहता है। सो, उसे तुरन्त ही वेरा निका-न्द्रोव्ना के यहां जाना चाहिए। यह सोचकर उसका हौसला बढ़ा कि वह किरील के यहां नहीं, वेरा निकान्द्रोव्ना के यहां जा रही है। अजीब बात है उसे पहले यह ख्याल क्यों नहीं आया कि सबसे पहले वेरा निका-न्द्रोव्ना से ही मिलना चाहिए, वह तो फ़ौरन सब कुछ समझ जायेंगी और ज़रूर अपने बेटे पर ज़ोर डालेंगी कि वह लीज़ा की मदद करे। वेरा निकान्द्रोव्ना यह तो भूली नहीं होंगी कि कैसे नौ साल पहले जब किरील को गिरफ़्तार कर लिया गया था, तो लीज़ा ने उनके साथ दौड़-धूप की थी।

अब उसके सामने एक नई बाधा थी : उसे पता नहीं था कि वेरा निकान्द्रोव्ना कहां रहती हैं। वह पुराने पते पर जा सकती थी। बहुत

पहले, जब लीजा के बच्चा होनेवाला था, एक बार उसने वेरा निकान्द्रोव्ना से मिलने की सोची थी और आनोच्का पाराबुकिना से उनका पता भी ले लिया था। तब वह गई नही थी, जाने क्यों डर गई थी, पर इतना उसे याद था कि वेरा निकान्द्रोव्ना सोल्दात्स्काया स्लोबोद्का मे कही पढ़ाती है! अरे हां, आनोच्का! बेशक वेरा निकान्द्रोव्ना की चहेती आनोच्का को उनका पता मालूम होगा।

आनोच्का के घर तो लीजा कई बार अपने बेटे को ढूंढ़ती-ढूंढ़ती गई थी। वह नगर सोवियत से ज़्यादा दूर नही रहती थी। उससे वेरा निकान्द्रोव्ना का पता पूछने का फ़ैसला करने से पहले ही लीज़ा के पांव उसके घर की ओर बढ़ चले थे: उसके कदम उसके निर्णयों की पूर्वकल्पना कर रहे थे।

रास्ते मे उसे पाव्लिक मिला। वह खाली टोकरी झुलाता बाज़ार जा रहा था – खाने का बंदोबस्त करने, जैसा कि उसने लीज़ा को बताया।

"आनोच्का तो रिहर्सल पर गई हुई है," उसने जवाब दिया, "शायद रात को ही आयेगी।"

"वह क्या पूरी अभिनेत्री बन गई है?"

"अजी हां! वह तो बस रिहर्सल ही करती रहती है, यह भी कोई अभिनेत्री है?"

वेरा निकान्द्रोव्ना का पता उसे अच्छी तरह याद था, पर इज़्वेकोव कहा रहता था, यह उसे मालूम नही था। उसने इतना और जोड़ा कि इज़्वेकोव को ढूंढ़ना बेकार है, वह तो मोर्चे पर गया हुआ है। यह सुनकर लीज़ा कुछ डरी, पर साथ ही यह भी ख़्याल आया कि नगर सोवियत में उसे झूठमूठ थोड़े ही कहा गया होगा कि वह लौट आया है।

वह ट्राम के स्टाप की ओर दौड़ ही चली – समय बीतता जा रहा था, और हर पल इतना कीमती था, जितना शायद जीवन में कभी नही रहा था...

इज़्वेकोव घर पर था। कपड़े बदलते हुए वह मां को अपने अभियान की कुछ बातें सुनाता जा रहा था, पर उन बातों पर चुप्पी साधे हुए था, जो उसके मस्तिष्क में बार-बार आ रही थीं और जो वेरा निकान्द्रोव्ना को भी परेशान कर सकती थीं।

"देखो न," बंद दरवाज़े के पीछे से वह चिल्ला रहा था, जबकि मां मेज़ पर बर्तन लगा रही थी, "देखो न. हुआ क्या! दीबिच को सुबह आठ बजे लौटना था। पर वह लौटा नहीं। नौ बजे मैंने एक सैनिक को उसका घर ढूंढ़ने भेजा। दस बजे वह घोड़ा दौड़ाता वापस आया और बोला कि दीबिच न शाम को और न सुबह ही घर पहुंचा था।"

"किसने बताया उसे?" वेरा निकान्द्रोव्ना ने पूछा। वह उस वेदना से अभिभूत थी, जो उसके बेटे को सहनी पड़ी थी और जो अब उसके मन में भी उठ रही थी।

"सैनिक को? क्या मतलब किसने? मां ने! मां ने जिससे मिलने को वह कब से तरस रहा था।"

"तोबा, तोबा! ज़रा सोचो तो, बेचारी मां!"

किरील पेटी कसता बाहर निकला। नहा-धोकर और दाढ़ी बनाकर स्कूल की वर्दी जैसी यह नई फ़ौजी वर्दी पहने वह बिल्कुल जवान लग रहा था।

"मैं तो बाद में कायरता ही दिखाने लगा था," उसने हौले से कहा।

"बाद में कब?"

"मुझे लग रहा था मैं उसकी मां के पास जाने का साहस नहीं जुटा पाऊंगा।"

"मां के पास जाये बिना कैसे रह सकते थे!.."

"यही तो! पर एक और बात थी..."

अपनी बात अधूरी छोड़कर वह खुली खिड़की के पास चला गया और चुप हो गया।

"बैठो, सब तैयार है।"

"हां," वह मां की ओर मुड़ा, "मैंने तुम्हें यह नहीं बताया कि आगे क्या हुआ। कुछ सैनिकों को लेकर मैं उस रास्ते पर चला, जिस रास्ते पर दीबिच को शहर आना था। जब हम मठों तक पहुंचे, तो वहां मिलीशिया वाले मौजूद थे। सुबह तड़के बाग के चौकीदार मठवासी को वह मिला था। पता चला कि मठवासियों ने शाम को गोली चलने की आवाज़ सुनी थी, पर जंगल में जाते उन्हें डर लगा। हमें उसके पास ले जाया गया। पगडंडी जहां बाग में निकलती थी,

वहीं वह ढलान पर पड़ा हुआ था, सिर नीचे की ओर था। खून से उसका दम घुट गया, छाती में घाव हुआ था।"

"कैसे जालिम थे!" वेरा निकान्द्रोव्ना ने कहा और हाथ गाल पर रखा, जैसे महिलाएं सहज भाव से करती हैं।

"वह शायद ज़्यादा देर नहीं जिया। जहां वह मिला था, वहां से कोई तीन कदम दूर ही उसे गोली मारी गई थी, मेपल के झुरमुट में। पगडंडी पर खून के निशान दिखाई दे रहे थे। सैनिकों और मिलीशिया के सिपाहियों ने पहाड़ी घेर ली और दोपहर तक हत्यारे पकड़े गये। कुल चार थे वे हरामजादे। उनके पास से दीविच का रिवाल्वर और घोड़ा मिला। उन्होंने बताया कि वे रात को मठ लूटने के इरादे से जंगल के सिरे पर छिपे हुए थे, पर तभी दीविच आ निकला। उन्होंने उस पर गोली चला दी।"

"तो यह संयोग मात्र था!" वेरा निकान्द्रोव्ना स्तब्ध हुई, मानो यह बेतुका संयोग ही दीविच की मृत्यु में उसे सबसे अधिक भयानक लगा।

"हां," किरील ने दुखी मन से हामी भरी, "पर यह ऐसा संयोग था, जिसकी पहले से कल्पना की जा सकती थी।"

वह फिर से चुप हो गया। कंधे झुकाकर उसने सिर लटका लिया। वेरा निकान्द्रोव्ना ने कभी उसे ऐसे करते नहीं देखा था।

"मैंने चाय डाल दी है। ठंडी हो रही है।"

"मुझे इसका अनुमान लगा लेना चाहिए था।"

"किस बात का?"

"यह अनुमान लगा लेना चाहिए था कि ऐसी दुर्घटना की सम्भावना है।"

"पर कैसे, जबकि तुम खुद कहते हो कि ऐसे हालात थे।"

"हां, हां, हालात थे। जबकि चारों ओर लुटेरों, हत्यारों के गिरोह घूम रहे थे, जबकि हम उन्हें पकड़ने निकले थे! मुझे क्या हक था कि मैं दीविच को अकेला जाने देता?"

"पर... वह तो खुद... और फिर वह तुम्हारे अधीन तो नहीं था? तुम उसे मना तो नहीं कर सकते थे न?"

"हां, तो उसे जाने देने का भी मुझे कोई हक नहीं था। और

मैंने उसे खुद सुझाया। मैंने ही तो उसे जाने की राय दी थी। उसे एक तरह से भेजा था।"

"पर किरील, तुम तो उसका भला चाहते थे!" वेरा निकान्द्रोव्ना ने सहानुभूति के साथ बेटे की आंखों में झांकते हुए कहा।

"यही तो बात है, भला चाहता था," वह चिल्लाया, तेज़ी से कुर्सी से उठा और फिर से खिड़की के पास चला गया। "बाद में मैं उसकी मां से यह कहने की हिम्मत क्यों नहीं कर पाया कि मैं उसका भला चाहता था?! मैं उसके बेटे को खुश करना चाहता था। क्यों मुझे उसके पास जाते शर्म आ रही थी, कलेजा कांप रहा था? मैं उसके बेटे को खुश करना चाहता था, भावुक हो गया था। और वह मारा गया। क्या यह मेरा कसूर नहीं कि वह मारा गया? तुम्हारा क्या ख्याल है?"

"मेरा ख्याल है... तुम बेकार अपना दिल जला रहे हो। तुम ऐसे संयोग का... ऐसे दुखद संयोग का ज़िम्मा नहीं ले सकते। इस बात के लिए अपने आप को बुरा-भला नहीं कह सकते कि भला काम करना चाहते थे।"'

"भला काम, जिसके कारण भला आदमी मारा ग़या, है न? जानता हूं मैं ऐसा भला! सनक में किया गया भला! सोचे-समझे बिना, बिना किसी मतलब के किया गया भला! बस यों ही – क्योंकि अच्छा लगता है! खुद को अच्छा लगता है। ताकि लोग तुम्हारे बारे में सोचें कि देखो कितना अच्छा आदमी है। लो, मैं बड़ा अच्छा आदमी बन गया हूं। मुझे उसका भला करके खुशी थी। पर वह तो रहा नहीं, मां! और कैसा आदमी नहीं रहा, मां!.. काश, तुम्हें पता होता!"

खिड़की के दासे पर झुककर उसने सिर बाहर निकाला और गहरी सांस ली – हवा में सुबह की ताजगी अभी बनी हुई थी।

कुछ देर रुककर वेरा निकान्द्रोव्ना ने कहा:

"अगर आदमी हमेशा यह सोचने लगे कि उसके भले काम का क्या नतीजा हो सकता है, तो फिर नेक इरादे कभी जन्म ही न लें। तुमने दीबिच से अपनी पहली भेंट के बारे में जो बताया था वह मुझे याद है। अगर दीबिच तब सोचने-विचारने लगता, तो शायद इस नतीजे पर पहुंचता कि मोर्चे पर तुम्हारे पराजयवादी प्रचार के लिए

उसे तुम्हें गिरफ्तार कर लेना चाहिए। पर उसने ऐसा नहीं किया।"

किरील ने कुछ जवाब नहीं दिया। वेरा निकान्द्रोव्ना भी कुछ देर चुप रही और फिर उसने पूछा :

"दीविच की मां तुमसे कैसे मिलीं ? तुमने उनकी कुछ मदद की ?"

किरील मेज के पास लौट आया। उसकी आंखों में धीरे-धीरे अफ़सोस भरी और कोमल मुस्कान छा गई।

"यह क्या पूछ रही हो, मां ? मां कैसे मिली ! तुम खुद कौन हो, मां ?"

"हां," वेरा निकान्द्रोव्ना ने आंखें नीची कर लीं, "इसमें पूछने को है ही क्या ..."

वे प्रायः चुप ही बैठे थे, कभी-कभार एकाध शब्द बोल लेते, तभी दरवाजे पर दस्तक हुई। बच्चों की तरह झिझकते हुए कोई दरवाजा खोल रहा था। वेरा निकान्द्रोव्ना यह सोचकर उठी कि शायद स्कूल का कोई बच्चा होगा। पर फिर एकाएक दरवाज़ा पूरा खुल गया।

"वेरा निकान्द्रोव्ना , आप ?" लीज़ा ने ज़ोर से पूछा, उसकी आंखें किरील पर लगी हुई थीं और वह उस पर से नजर हटा नहीं पा रही थी, लेकिन अपने शरीर की सारी गति से यह जाहिर कर रही थी कि वेरा निकान्द्रोव्ना के पास जाना चाहती है।

उसका चेहरा एकदम पीला था और उस पर जबरदस्ती लाई गई विनम्र मुस्कान उसमें जान नहीं डाल रही थी, बल्कि उसे और भी अधिक बेजान कर रही थी, जिससे यह मुस्कान बेतुकी लग रही थी। पहले शब्द, जिनके लिए वह शायद तैयार होती आई थी, खनकती आवाज में, प्रायः चीखते हुए उसने कहे, पर फिर जब बोली, तो आवाज़ बुझी-बुझी थी :

"माफ़ कीजिये, मैं यों ..."

"लीज़ा ?.. येलिजावेता मेरकूर्येव्ना ?" वेरा निकान्द्रोव्ना ने उसकी बात काटी और खुद भी किरील की ओर नजर घुमाई।

यह नाम सुनकर वह खड़ा हो गया और अब कहीं समझा कि यह स्त्री कौन है।

"...मैं यों बिन बुलाये चली आई," लीज़ा ने अपनी बात पूरी की, उसकी आंखें अभी भी किरील पर लगी हुई थीं।

वह उसकी ओर ऐसे देख रही थी जैसे कोई उस व्यक्ति की ओर देखता है, जिसे उसने अपनी आशा के अनुकूल ही पाया हो और इसी बात पर हैरान हो कि लंबे वियोग के बावजूद वह पहले जैसा ही रहा है और समय उसको बदलने में असमर्थ है। न केवल किरील की दृष्टि में निहित उसका अंतस्सार और उसके चेहरे के अविस्मरणीय सीधे नक्श ही लीज़ा के लिए बिल्कुल पहले जैसे थे, बल्कि अपनी इस वेशभूषा में – फ़ौजी कमीज़ पहने और चमड़े की पेटी कसे, वह बाहरी तौर पर भी अपने अतीत का हूबहू प्रतिबिम्ब लगता था।

किरील भी लीज़ा की ओर देख रहा था। वह उसके लिए हर बात में नई थी, लेकिन यह नवीकृत भवन की नवीनता थी, जिसके पीछे बीता समय और भी अधिक स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है।

उसने ही आगे बढ़कर लीज़ा से हाथ मिलाया।

"मुझे वेरा निकान्द्रोव्ना से मिलना है," लीज़ा ने कहा। किरील की सख्त उंगलियों की गर्माहट में उसे महसूस हुआ कि उसका हाथ ठंडा है।

"तो क्या मैं बाहर चला जाऊं?" वह मुस्कराया।

"नहीं। मुझे... आपसे भी काम है," लीज़ा ने कहा और मारे घबराहट के उसकी आंखें डबडबा आईं।

"तो फिर मुझे जाना चाहिए?" वेरा निकान्द्रोव्ना हंसी।

उसने लीज़ा से हाथ मिलाया और उसका हाथ पकड़े-पकड़े ही उसे मेज़ तक ले आई।

अब वह बातचीत शुरू हुई, जिससे पहले क्षणों का संकोच दूर करने में मदद मिल सकती थी – यह कि लीज़ा कमज़ोर हो गई है, उसकी सेहत ठीक नहीं है; कि वेरा निकान्द्रोव्ना ने उसे दो बार थियेटर में देखा था, पर यह बहुत पहले की बात है, और तब लीज़ा की सेहत अच्छी थी; कि अब तो उसका बेटा बड़ा हो गया है और किरील उससे नदी पर मिला था, मछली पकड़ते समय – बड़ा प्यारा लड़का है, बिल्कुल मां पर गया है; क्या यह सच है कि लीज़ा ने फिर से शादी कर ली है, कौन है वह (बेशक यह वेरा निकान्द्रोव्ना ने ही पूछा)।

"मेरे साथ ही काम करते हैं," लीज़ा ने जवाब दिया, "नोटरी हैं, नहीं, उसके सहायक," उसने तुरन्त स्पष्ट किया।

"अब आपका कुलनाम क्या है?"

"पहले वाला... जैसे बेटे का है।"

"और पति का कुलनाम क्या है?"

"ओज़्नोबिशिन।"

"ओज़्नोबिशिन?" वेरा निकान्द्रोव्ना ने पूछा और फिर कुछ सोचते हुए नाम दोहराया: "ओज़्नोबिशिन," और उठकर दूसरे कमरे की ओर चल दी।

"नहीं, नहीं, आप जाइये नहीं," लीज़ा ने उसे रोका, "मैं चाहती हूं कि आप भी..."

"अभी आती हूं मैं..."

इस तरह लीज़ा किरील के साथ अकेली रह गई।

पल भर को ही मौन रहा, और इस पल ने लीज़ा को आशंकित कर दिया। वे दोनों अपने अतीत के बारे में सोच रहे थे, दोनों एक बार फिर इसे अत्यंत स्पष्टता से देख रहे थे, और लीज़ा यह महसूस कर रही थी कि वह कभी भी इस अतीत की चर्चा छेड़ने का साहस नहीं कर पायेगी, जो किसी चमत्कार से इस पल में फिर से जीवित हो उठा था। किरील ने सवाल पूछकर उसकी मदद की, उसका सवाल इतना सीधा-सीधा था और साथ ही इतने विनम्र स्वर में पूछा गया था कि वह तुरन्त ही अतीत से वर्तमान में लौट आई:

"आपको मुझसे कोई जरूरी काम है न?"

"माफ़ कीजिये, मैंने यह दुस्साहस किया। पर यह अकेले मेरे लिए जरूरी नहीं है। आप इन्कार नहीं करेंगे, नहीं न?"

"माफ़ी मांगने की क्या बात है!"

"केवल आप ही मेरी मदद कर सकते हैं। मैं पिता जी के लिए मदद मांग रही हूं।"

वह रुक गई, इस उम्मीद में कि वह कुछ पूछेगा। पर वह चुप था और लीज़ा को लगा कि वह सोच में पड़ गया है।

"मुझे पता चला है कि पिता जी को गिरफ़्तार किया गया है, कि वे जेल में हैं। बजरे पर। आप जानते हैं न बड़ी धार पर जेल है?"

वह चुप था।

"मैं भी क्या पूछ रही हूं। बेशक आप जानते हैं!" उसने कहा—

अपने भोलेपन पर शर्मिंदा और उसकी चुप्पी पर हैरान होते हुए। "मुझे पता नहीं कि पिता जी कब से इस बजरे पर हैं।"

वह फिर से रुकी। उसके देखते-देखते किरील में कुछ अनबूझ परिवर्तन आ रहा था। परन्तु यह परिवर्तन बिल्कुल स्पष्ट था – अभी क्षण भर पूर्व जिस पहले वाले किरील को वह देख रही थी, उसका अब कहीं पता न था। उसने किरील के चेहरे पर पड़े बल देखे, भौंहों के बीच में बल विशेषतः गहरा था। उसने तुरन्त ही अपने आप से कहा कि ऐसा ही होना था: वह अनजान अधिकारी से, सेक्रेटरी से ही तो मिलने आई है, किरील से नहीं।

"मुझे पता नहीं कि पिता जी को कब गिरफ़्तार किया गया," उसने अधिक दृढ़ स्वर में कहा। "मुझे कल शाम को एक आदमी ने यह बताया, जिसे रिहा किया गया है।"

"मतलब आपको यह पता नहीं कि किस अपराध के लिए उन्हें गिरफ़्तार किया गया है," सिर थोड़ा घुमाकर और खिड़की की ओर देखते हुए आखिर किरील बोला।

"मुझे कुछ पता नहीं कि उनका क्या अपराध हो सकता है। मैं तो यह भी नहीं जानती कि उन्हें कहां गिरफ़्तार किया जा सकता था। अगस्त के शुरू में मैंने उन्हें ख़्वालीन्स्क रवाना किया था। तब से उनकी कोई खबर नहीं मिली, उन्होंने कोई चिट्ठी नहीं लिखी थी। वह वहां पहुंचे भी थे कि नहीं? मैं नहीं जानती... सोच भी नहीं सकती कि उनके साथ क्या हुआ! ज़रूर ही कोई भारी गलती हुई है!"

"गलती से कोई बजरे पर नहीं पहुंचता," पहले की ही भांति बाहर देखते हुए किरील ने कहा।

"ओह, आजकल के समय में! लेकिन असल बात तो यह नहीं। माना कि आपका कहना ठीक है, माना कि यह गलती नहीं है। पर अब वह जहां हैं, वहां गलती से कुछ भी होने का बहुत खतरा है। यह तो आप मानते हैं। और मेरा यह फ़र्ज़ है... हमारा... आप ही उनकी मदद कर सकते हैं! मैं आपके पांव पड़ती हूं!"

झिझकते हुए वह उसकी ओर बढ़ने को हुई, जैसे कि इस तरह अपने अनुरोध की गम्भीरता पर बल देना चाहती हो। वह और भी

22–60

अधिक बेगाना होता जा रहा था, और इससे लीज़ा की आशा बुझ रही थी. उसे लग रहा था कि उसकी भावनाएं शब्द मात्र बनकर रह रही हैं।

"किसी की मदद की सोचने से पहले उसका अपराध पता होना चाहिए। और अपराध तय करना अदालत का काम है। इसमें क्या किया जा सकता है?"

"यह तो पता लगाया जा सकता है कि कोई अपराध है या नहीं। हो सकता है कोई अपराध हो ही न? मुझे तो नहीं बतायेंगे, पर आपको जरूर बता देंगे। अगर आप पूछ ही देंगे, तो यही बहुत बड़ी मदद होगी।"

वह फिर से चुप रहा। तब लीज़ा कुछ खिसियाती हुई बोली:

"आपको तो उन्हें बताना ही होगा। आप अधिकारी हैं। इसीलिए मैं आपके पास आई हूं।"

किरील ने तेजी से अपनी पांडुर आंखें उसकी आंखों में डालीं और पूछा

"केवल इसी आधार पर आप मेरे पास आई हैं?"

लीजा को एक बार फिर उसमें वही किरील दिखा – उसकी आंखों की इस भेदती पांडुरता में, उसके किशोरसुलभ विश्वास से भरे स्वर में। वह कुछ न कह पाई, इस नजर को सहने में ही उसे अपना सारा मनोबल लगाना पड़ रहा था।

"वह ख्वालीन्स्क क्यों गये थे?"

"यह उनकी पुरानी मनोकामना थी। वह वहां अपने अंतिम दिन ..."

"वहां उनके मित्र हैं?"

"नहीं, उल्टे वह तो एकांत चाहते थे। मठ में बसना चाहते थे वह ... मठवासी बनने को।"

ये अंतिम शब्द कहते हुए उसके गाल जलने लगे, जाने क्यों वह शर्मिंदा थी, लेकिन तभी उसके दिमाग में एक विचार कौंधा और वह सहसा चुनौती भरे स्वर में बोली:

"मुझे पूरा यकीन है कि उन्हें इसीलिए गिरफ्तार किया गया है। पूरा विश्वास है! क्योंकि वह मठ में रहना चाहते थे। लेकिन

किसी के मत के लिए उसे सज़ा देना तो क्रूरता है! वह बूढ़े हैं, उन्हें बदला नहीं जा सकता। और वह... वह उन लोगों में से नहीं, जिन्हें बदला जा सकता है। मैं उन्हें बहुत अच्छी तरह जानती हूं। उनकी अपनी कमज़ोरियां हैं, अपनी सनकें हैं। पर वह ईमानदार आदमी हैं। उनसे उनके अन्तःकरण की स्वतंत्रता तो नहीं छीनी जा सकती।"

"हो सकता है, आप उन्हें बहुत अच्छी तरह न जानती हों," किरील ने मानो यों ही कहा।

लीज़ा के दिमाग में सहसा जो बात आई थी, उस पर न केवल किरील को, बल्कि अपने आपको भी यकीन दिलाते हुए वह तेज़ी से बोलती गई थी और अब उसकी सांस जल्दी-जल्दी चल रही थी।

"पर आप तो उन्हें बिल्कुल भी नहीं जानते!" उलाहना के स्वर में उसने कहा।

"कुछ हद तक तो जानता हूं... कम से कम आपके प्रति उनके रुख से ही। आपके जीवन में उनकी भूमिका से ही।"

"मेरा जीवन!" तीखे विरोध के साथ लीज़ा बोली। "इसके लिए मैं खुद ज़िम्मेदार हूं, औरों से अधिक ज़िम्मेदार हूं। पर यह तो स्वाभाविक ही है कि मेरे बाप ने मुझे पाला, किसी दूसरे ने नहीं, कि उसने मुझे अपने ढंग से पाला-पोसा। वह मेरे भाग्य के लिए उत्तरदायी हैं? मानती हूं। कभी थे उत्तरदायी। पर किसके सम्मुख? मैं उनसे जवाबदेही नहीं करूंगी। क्या आप... क्या आप उनका न्याय करना चाहते हैं?"

"मैं पहले ही कह चुका हूं कि मैं किसी का न्याय नहीं कर सकता। इसीलिए मदद भी नहीं कर सकता। और अगर आप भी उनका न्याय नहीं करना चाहतीं, तो यह जाने विना कि उनका अपराध क्या है, आप उन्हें सच्चा कैसे ठहरा सकती हैं? आखिर यह तो नहीं माना जा सकता कि उन्हें मठ में जाने की वजह से गिरफ़्तार किया गया है।"

"मैं अपने भाग्य के लिए उन्हें उत्तरदायी नहीं ठहराती। मेरे मन में उनके लिए कोई दुर्भाव नहीं है। वह मुसीबत में हैं। वह मेरे पिता हैं।"

वह चीखी:

"मेरे पिता हैं—समझते हैं कि नहीं? आपकी मां को अगर मदद

की जरूरत होगी तो क्या आप उनकी रक्षा नहीं करेंगे? कैसा कलेजा है आपका?!"

"कलेजा?" इज्वेकोव ने हौले से दोहराया। वह उठ खड़ा हुआ, लीजा के शब्दों ने मानो उसे सहसा किसी ऐसी भावना की याद दिलाई थी, जिस पर वह आश्चर्यचकित होकर ध्यान दे रहा था। "पिता, माता, भाई ये शब्द मंत्रों जैसे हैं, और हम इनसे वैसे ही वशीभूत हो जाते हैं, जैसे आदिम युग में लोग मंत्रों से प्रभावित होते थे। लेकिन आपका पति था – शुब्निकोव। क्या आप उसकी भी केवल इसीलिए रक्षा करने को तैयार हो जातीं कि वह आपका पति है?"

लीजा को कतई उम्मीद नहीं थी कि यह नाम लिया जायेगा, और यह कि किरील के स्वर में ऐसा उलाहना होगा। उसे लगा कि वह बातचीत छिड़ गई है, जिसकी बहुत पहले वह अक्सर कल्पना किया करती थी, जब किरील से भेंट का विचार मन में बना हुआ था, और वह यह सोचा करती थी कि कैसे उसे अपने विवाह का कारण समझायेगी, जिसे खुद नहीं समझती।

शांत स्वर में बोलने की कोशिश करते हुए उसने जवाब दिया (वह बार-बार अपने आपको यह याद दिलाती थी कि वह व्याकुल न होने और इज्वेकोव से एक प्रार्थी के रूप में शांत स्वर में बात करने की कसम खाकर आई है)।

"हां, जब शुब्निकोव मेरा पति था, तो मैं उसकी रक्षा करने आती। शायद अब भी रक्षा करती, क्योंकि वह मेरे बेटे का बाप है।"

"लेकिन ऐसा अंधापन क्यों?! क्या आप यह नहीं सुनतीं कि ये केवल मंत्र हैं – पति, पिता! इन शब्दों के पीछे लोग हैं और उनके पीछे उनके कर्म। कैन भी तो भाई कहलाता था!"

"आप मुझे किस बात का दोषी ठहरा रहे हैं?" लीजा ने रोष से कहा। "इस बात का कि मेरे सम्बन्धी मेरे सम्बन्धी हैं? कि वे मुझे प्रिय हैं?"

"दोषी ठहरा रहा हूं?" किरील हैरान-परेशान सा मुस्कराया, मानो इन शब्दों से उसे ठेस पहुंची थी।

"इसमें मेरा तो कोई दोष नहीं कि हमारे जीवन में सब कुछ ऐसे हुआ," लीजा जल्दी-जल्दी बोलने लगी। वह भी उठ खड़ी हुई।

"कि हमारे भाग्य हमारी इच्छा पर निर्भर नहीं। और मैंने तो तुम्हें" (उसके मुंह से अनायास ही हृदय की पुकार की भांति "तुम्हें" निकला और वह पल भर को ठिठकी) "...तुम्हें उस रास्ते पर नहीं धकेला था, जो मुझे तुमसे दूर ले गया!"

वह बुत बना खड़ा था। लीज़ा को होश आया कि उसने क्या कह डाला है, और उसने माथे पर ऐसे हाथ फेरा, जैसे उसे चक्कर आ गया हो और वह अपने आप को संभाल रही हो।

"मैंने उम्र भर कभी भी और किसी भी बात का आपको दोष देने की नहीं सोची थी," किरील ने कहा। "आप स्वतंत्र थीं और अपनी स्वतंत्र इच्छा से जैसा आपने चाहा वैसा आपने किया। किशोरावस्था में हमारे उन सम्बन्धों से न आप पर कोई बंधन था और न मुझ पर। और मेरे ख्याल में अब तो उनका कोई बंधन और भी कम है।"

"माफ़ कीजिये, मेरे मुंह से यह बात निकल गई, क्योंकि आपने मेरे विवाह की चर्चा छेड़ी। मैं तब यह समझती थी कि मुझे आपका इंतज़ार करने या आपके पीछे चलने का साहस न कर पाने की सख्त सज़ा मिली है..." (वह सिर उठाकर प्रायः क्रोध से उसकी ओर देख रही थी) "पर अब आप मुझे यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि अगर मैं आपके पीछे चली होती, तो मुझे और भी सख्त सज़ा मिलती!"

एक बार फिर किरील के बढ़ते आश्चर्य को देखकर वह मानो वास्तविकता में लौटी और उसने माथे पर हाथ रखा। सिर घुमाने पर उसने दूसरे कमरे के दरवाज़े में वेरा निकान्द्रोव्ना को खड़े पाया।

"अनचाहे ही मैंने आपकी बातचीत सुन ली," वेरा निकान्द्रोव्ना बोली। "बुरा न मानना। आप तो किरील से भी और मुझ से भी मिलने आई हैं न?"

"मुझे आपसे बहुत उम्मीद थी।" लीज़ा थकी-मांदी सी बोली। उसका हौसला खत्म हो रहा था और लगता था कि वह अब न तो गुस्से से चीख सकेगी और न अनुनय-विनय कर पायेगी।

"मैं सब समझती हूं," वेरा निकान्द्रोव्ना ने कहा और हौले से लीज़ा के पास बढ़ आई। "आपके अनुरोध में समझाने की कोई बात

नहीं है। और किरील निर्ममता के, यहां तक कि क्रूरता के आपके उलाहने भी माफ़ कर देगा।"

उसने बेटे की ओर देखा, मानो उसे सहमत होने को कह रही हो। किरील कुछ नहीं बोला।

"मुझे बस यह ख्याल आता है," वह बोलती गई, "शायद आपने अतीत की चर्चा बेकार ही छेड़ी। अतीत से कोई मदद नहीं मिल सकती। उसे भुलाना तो किसी के बस के बाहर है। और आपने मुझे यही फिर से याद दिला दिया है कि जब किरील को मदद की जरूरत थी, तो कैसे मेरकूरी अव्देयेविच ने साफ़ इन्कार कर दिया था। या यह कि कैसे हम दोनों उन दीवारों पर सिर पीटती रही थीं, जिनके पीछे ओज्नोबिशिन भी बैठा करता था... अगर यह वही ओज्नोबिशिन है तो..."

"हे भगवान!" लीज़ा बुदबुदाई।

"मैं आपको इस अतीत का उलाहना नहीं दे रही, विश्वास मानिये!" घबराते हुए कि लीज़ा उसे अपनी बात पूरी नहीं करने देगी, वेरा निकान्द्रोव्ना जल्दी-जल्दी कह रही थी। "पर क्या उन लोगों को निर्ममता का उलाहना दिया जा सकता है, जिन्होंने अतीत में बेहया क्रूरता के प्याले की आखिरी बूंद तक पी और जो अब इससे संघर्ष में अपनी जान तक देने को तैयार हैं?"

"नहीं, नहीं," सहसा किरील ने दृढ़तापूर्वक उसे रोका। "यह ठीक नहीं। मैं किसी से बदला लेने के इरादे से कुछ नहीं करना चाहता।"

"हां, हां, किरील! मैं तो जानती हूं कि तुम निजी कारणों से कुछ नहीं कर सकते!" मां ने खुशी और गर्व के साथ उसकी बात में बात मिलाई।

"भगवान के वास्ते!" लीज़ा निढाल सी बोली। "क्या मैं यह मुकदमा सुनने यहां आई हूं? आप क्या सोचते हैं कि मेरे लिए यहां आना, आपके यहां आना आसान था? आप साफ़-साफ़ कह दीजिये कि इन्कार करते हैं और मैं चली जाऊंगी..."

इतना कहते हुए उसने इज्वेकोव की ओर कदम बढ़ाया, लेकिन यह अंतिम कदम भरने की शक्ति उसमें न रही थी। वह कुर्सी की पीठ पकड़कर बैठना चाहती थी, पर मानो अपनी शिथिल गति को ही

जारी रखते हुए वह झुकी और गिर पड़ी। नहीं यह गिरना नहीं था – लीज़ा घुटनों पर टिक गई और ऐसे ही खड़ी हो गई, जैसे कि किरील के सामने अपने भारी पड़ गये हाथ उठाकर घुटने ही टेकना चाहती थी।

किरील ने झट से उसके आगे बढ़े हाथ पकड़ लिये और वेरा निकान्द्रोव्ना भी लीज़ा को उठाने लपकी। परन्तु इसी क्षण कमरे में एक नया सहमा सा स्वर गूंजा, जिसकी किसी को आशा न थी:

"क्या हुआ? क्या हुआ?"

सबकी नज़रें दरवाज़े की ओर घूमीं, जो लीज़ा के आने के वक्त से ही अधखुला था।

आनोच्का चौखट पर हाथ टिकाये ड्योढ़ी में खड़ी थी – आगे को झुकी हुई मानो दौड़ते-दौड़ते उसने मुश्किल से अपने आप को रोका हो।

किरील ने तुरन्त ही उठ खड़ी हुई लीज़ा के हाथ छोड़ दिये और आनोच्का की ओर बढ़ा।

लेकिन वह उसके बगल से निकलती हुई वेरा निकान्द्रोव्ना के पास गई, जल्दी-जल्दी कई बार उसके गाल चूमे, अपनी फटी-फटी आंखों से लीज़ा की ओर देखा, उससे नमस्ते की और तब कहीं किरील की ओर मुड़ी।

"आप आ गये?" उसने पूछा और फिर से अपनी फटी-फटी आंखें लीज़ा की ओर मोड़ीं। "वीत्या ने पाव्लिक को मेरकूरी अव्देयेविच के बारे में बताया है। मुझे सब पता है," सहानुभूति और बाल-सुलभ भय के आवेग में वह बोली। "आपको अभी कुछ और पता नहीं चला? आप घबराइये नहीं, मुझे विश्वास है कि डरने की कोई बात नहीं। बस अच्छी तरह कोशिश करनी चाहिए।" वह फिर से किरील की ओर मुड़ी: "किरील निकोलायेविच, आप तो शायद सब कुछ करने का वायदा कर चुके हैं; है न?"

किरील ने शब्द चुन-चुनकर साफ़-साफ़ कहा:

"मैं येलिज़ावेता मेरकूर्येव्ना से वायदा करता हूं यह पता लगाने की कोशिश करूंगा कि उनके पिता पर क्या आरोप लगाया गया है।"

"और जहां तक हो सकता है मदद करेंगे?" आनोच्का ने ऐसे लहजे में पूछा, जैसे इसमें संदेह की कोई गुंजायश न हो।

"और अगर सम्भव हुआ तो मदद करूंगा," किरील ने भी उसी लहजे में कहा।

लीजा उन दोनो की ओर देख रही थी और कुछ समझ नहीं पा रही थी। इन अल्प कटु क्षणों में पहली बार वह यह देख रही थी कि किरील में कोई दो अलग-अलग व्यक्तित्व नहीं हैं (जैसा कि उसे लग रहा था), बल्कि वह अविस्मरणीय किशोर किरील और उसके लिए अबोध, नया इज़्वेकोव दोनों रूप एक ही में मिले हुए हैं। साथ ही उसने आनोच्का की आंखें भी देखीं, जिनमें केवल उदारहृदय सहानुभूति और बालसुलभ भय ही नही, एक सुखद हर्ष की भी चमक थी।

लीजा सहसा सीधी खड़ी हो गई।

"मैं चलती हूं। माफ़ कीजिये।"

किसी की ओर भी देखे बिना उसने सिर झुकाया।

"अकेली? मैं आपको छोड़ आती हूं।" आनोच्का बोली।

"नही, रहने दीजिये। मुझे जल्दी है।"

"मैं आपको अकेले नही जाने दूंगी," वेरा निकान्द्रोव्ना बीच मे बोली। "आप अभी शांत नहीं हुई हैं। मैं ट्राम तक छोड़ आती हू।"

लीजा हठभरे कदमों से दरवाज़े की ओर चली, पर वेरा निकान्द्रोव्ना लपककर उसके पास पहुंच गई, उसकी बांह में बांह डाली और दोनो बाहर चली गई।

किरील कुछ असमंजस और मानो विस्मय के साथ मुस्कराया। आनोच्का ने कहा:

"लीजा बहुत बदल गई है..."

"हां।"

"तरस आता है न उस पर?"

"बहुत।"

किन्ही दूसरे प्रश्नों की प्रतीक्षा में वह हिले-डुले बिना उसके सामने खड़ा था। आनोच्का ने अपनी झुकी-झुकी भौंहों तले से उसकी ओर देखा।

"मैंने आते ही आपके पास जाने की सोची थी," किरील बोला, वह मानो उसकी सहानुभूति पाना चाहता था।

आनोच्का टकटकी लगाये उसे देखे जा रही थी। वह उसके निकट चला गया।

"आपको सचमुच नहीं पता था कि मैं आ गया?"

सहसा आनोच्का ने उसकी उंगलियां पकड़ लीं, नारीसुलभ आवेग से उन्हें अपनी छाती पर दबाया और यह महसूस करते हुए कि कैसे उसके कोमल स्पर्श से किरील की उंगलियों का रूखापन कम पड़ रहा है, हौले से बोली:

"खूब पता था कि आ गये हो! तभी तो दौड़ी आई हूं..."

किरील ने उसकी छाती पर सिर झुकाया, इन कठिन परीक्षाओं के सप्ताहों में पहली बार उसे अपने अंग-अंग में व्याप्त होती राहत का अनुभव हो रहा था।

३२

अस्पताल के वार्ड में घुसते ही किरील सहसा ठिठका। उसे बताया गया था कि रागोज़िन के घाव गम्भीर नहीं, लेकिन यहां उसने रागोज़िन को अजीब ही मुद्रा में लेटे पाया: उसका पलंग दीवार से हटा हुआ था और उनके बीच लगाई गई टेक पर उसकी बाईं बांह शरीर से समकोण पर फैली हुई थी। बांह पर ही नहीं, कंधे, गर्दन और छाती के एक भाग पर भी पट्टियां बंधी हुई थीं।

रागोज़िन ने शरीर के पट्टियों में लिपटे भाग को हिलाये-डुलाये बिना दूसरी बांह की कोहनी आसानी से बिस्तर पर टिका ली और किरील की ओर हाथ हिलाया व आंख मारी।

"देखा लंगर डाल लिया हमने?" वह बोला। "कोई बात नहीं, जल्दी ही उठा लेंगे लंगर। दायां पहलू सही सलामत है।"

उसकी आंखों में स्नेहपूर्ण मुस्कान थी।

"कुर्सी ले लो। सो, लौट आये?"

किरील ने हौले से उसकी उंगलियां दबाईं और ज़रा दूर बैठ गया, ताकि घायल दोस्त उसे अच्छी तरह देख सके।

"कब लगी?" सिर से पट्टियों की ओर इशारा करते हुए किरील ने पूछा।

"कल एक हफ़्ता हो जायेगा। त्सरीत्सिन के पास।"

"हां, मुझे बताया गया है। अब लाना चाहिए था तुम्हारे लिए

कुछ खाने-पीने को," किरील कुछ अटपटा सा महसूस करते हुए मुस्करा गया। "माफ करना, वक्त नहीं था। मैं आज सुबह ही लौटा हूं।"

"छोड़ो, क्या बात करते हो। मेरे लिए खाना आ जाता है, इसकी परवाह मत करो।"

"पलस्तर चढ़ा है?" किरील ने फिर से बांह की ओर इशारा किया। "हड्डी टूट गई?"

"अभी तो मैं जवान हूं, जुड़ जायेगी," रागोज़िन ने वैसे ही मुस्कराते हुए जवाब दिया।

वह अपनी इस विवश, असहाय स्थिति पर झेंप रहा था। इसके अलावा किरील के आते ही उसके मन में वह बेचैनी उठने लगी थी, जो मोर्चे से पीछे हटते समय दिन पर दिन मन में बढ़ती रही थी और जिसे वह दबाये हुए था। अब चूंकि दोनों एक दूसरे का ध्यान निजी अनुभवों के प्रश्नों की ओर ही ले जा रहे थे, और उस महत्वपूर्ण बात पर चुप्पी साधे हुए थे, जो उन्हें एक दूसरे से मिलाती थी, इसलिए रागोजिन को अपनी बेचैनी छिपाये रखने में और अधिक कठिनाई हो रही थी।

यह बेचैनी तब पैदा हुई थी, जब रागोज़िन को यह पता चला था कि त्सरीत्सिन के पास उनकी हार हुई है और विशेष प्रहारक दल ने भी मोर्चे पर अपनी कार्रवाइयां रोक दी हैं। इस बेचैनी के बढ़ने का कारण यह था कि दूसरे मोर्चों पर घटनाओं की नई-नई जानकारी तो मिल रही थी, परन्तु यह ज्ञान अधूरा था और इन सभी घटनाओं का कारण समझ में नहीं आता था।

रागोजिन और किरील इज़्वेकोव तथा प्रायः उनके ही स्तर के सैकड़ों-हजारों दूसरे सोवियत सैनिक जो कुछ हो रहा था उसकी जानकारी उन स्रोतों से ही पाते थे, जो उनकी पहुंच में थे, यथा: वे कार्रवाइयां, जिनमें वे स्वयं भाग लेते थे; समाचारपत्र, जिनमें आवश्यक जानकारी का एक अंश ही होता था; सभाएं, जिनमें इन समाचारपत्रों की ही खबरों पर या केन्द्र के उन निर्देशों पर, जो गोपनीय नहीं थे, विचार-विमर्श होता था; उच्च कमानों द्वारा तैयार की जा रही और गोपनीय रखी जा रही योजनाओं की अफ़वाहें। रागोज़िन और किरील रूस में जो कुछ घट रहा था उसका सामान्य अर्थ तथा जिन छोटी-

छोटी घटनाओं को वे स्वयं देख पाते थे, उनके प्रत्यक्ष कारण समझते थे, ठीक वैसे ही जैसे प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह किसी भी स्तर पर था, अपने-अपने ढंग से इन्हें समझता था। परन्तु गृहयुद्ध की समग्र घटना की प्रेरक शक्तियों के कार्य को वे उसके परिणामों में ही देख सकते थे, और इस घटना के दौरान हो रहे परिवर्तनों के प्रमुख कारण उनके लिए तब तक अनजाने ही रहते थे, जब तक कि सब उन्हें न जान जाते।

रागोज़िन और किरील मानो शत्रु से घिरे नगर की एक सड़क पर लड़ रहे थे और इस सड़क के घरों तथा मोर्चेबन्दी के पीछे वे असंख्य दूसरी सड़कों और मकानों को नहीं देख पाते थे, उन्हें बस इतना पता था कि वहां भी लोग लड़ रहे हैं, और अगर यह अफ़वाह सुनने में आती कि नगर के एक हिस्से में उनकी पराजय हो गई है, तो वे यह न समझ पाते कि वहां पराजय कैसे हो गई, जबकि वे स्वयं तो इस सड़क पर जूझ रहे हैं और जबकि नगर की कमान का यह मत है कि नगर को शत्रु के हवाले नहीं किया जा सकता।

यह जानते हुए भी कि उनका ज्ञान अधूरा है रागोज़िन और किरील घटनाओं के बारे में अपनी राय इस ज्ञान के आधार पर ही तय कर रहे थे और ऐसा करते हुए वे अनचाहे ही एक काल्पनिक वास्तविकता बना लेते थे, जो सच्ची वास्तविकता से कभी आगे होती और कभी पीछे।

उदाहरण के लिए जिस दिन किरील रागोज़िन से मिलने अस्पताल गया, उस दिन उसके दिमाग में यही सवाल घूम रहा था कि क्या मिरोनोव वोरोनेज से मोर्चे की ओर पीछे हट रही मामोन्तोव की कोर से मिल पायेगा या नहीं, जबकि इससे एक दिन पहले मिरोनोव की बची-खुची टुकड़ियों को बलाशोव ज़िले में घेर लिया गया था और स्वयं मिरोनोव को गोरोदोविकोव की कैवेलरी डिविज़न ने बंदी बना लिया था। यह डिविज़न बुद्योन्नी की कोर का ही अंश थी। इसी तरह भेंट के दिन भी किरील और रागोज़िन दक्षिणी मोर्चे की आगामी नयी घटनाओं पर ही सबसे अधिक चिंतित हो रहे थे और इन घटनाओं पर विचार उस स्थिति के आधार पर ही कर रहे थे, जिसके फलस्वरूप लाल सेना अगस्त में इस मोर्चे पर जवाबी हमला शुरू कर सकी थी।

उधर वास्तविकता यह थी कि सितम्बर के मध्य के इस दिन तक दक्षिणी मोर्चे पर स्थिति में आमूल परिवर्तन आ चुका था।

अगस्त में दक्षिणी मोर्चे की कमान और सर्वोच्च कमान की योजना के अनुसार जो जवाबी हमला शुरू किया गया था वह पूरी तरह से विफल रहा था। सेनाओं का विशेष प्रहारक दल दोन के इलाके की सीमाओं तक जा पहुंचा था, बायें पार्श्व में त्सरीत्सिन के पास उसकी हार हुई थी और अब दोन के सफ़ेद गार्डी कज़्ज़ाक संगठित होकर उसका सामना कर रहे थे, किसी भी कीमत पर वे लाल सेना को दोन इलाके में आगे बढ़ने से रोकने पर उतारू थे। सहायक सेना दल, जो प्रहारक दल से दाईं ओर के मोर्चे पर कार्यरत था, पहले ही पराजित हो चुका था और सफ़ेद गार्डों ने उसे उस स्थान से भी पीछे धकेल दिया था, जहां से अगस्त के मध्य में इस दल ने हमला आरम्भ किया था। इस बीच देनीकिन की वालंटियर सेना ने उत्तर की ओर, कूर्स्क-ओर्योल और वोरोनेज की केंद्रीय दिशा में प्रहार करने के लिए अपने प्रमुख सैनिक दल जमा कर लिये थे।

रागोज़िन और किरील देनीकिन के 'मास्को' निर्देश (मास्को की ओर बढ़ने की उसकी जुलाई की योजना) से परिचित थे, और वे सफ़ेद गार्डों की सम्भाव्य कार्रवाइयों का अनुमान अपने इस ज्ञान के आधार पर लगा रहे थे।

परन्तु सितम्बर में मास्को पर हमला करने की देनीकिन की योजना जुलाई की योजना से प्रायः पूर्णतया भिन्न थी। 'मास्को' निर्देश के अनुसार देनीकिन की सभी सेनाओं को एकसाथ चार दिशाओं मे राजधानी की ओर बढ़ना था, इनमें से तीन दिशाएं कज़्ज़ाक सेनाओं को सौंपी गई थीं और एक वालंटियर सेना को। सितम्बर में देनीकिन ने जो योजना अपनाई उसके अनुसार हमला मुख्यतः वालंटियर सेना को केन्द्रीय दिशा में करना था और श्कुरो की वालंटियर कैवेलरी तथा मामोन्तोव के दोन रिसाले को उसका समर्थन करना था। कज़्ज़ाक सेनाओं को देनीकिन ने दोन के इलाके की सीमाओं की रक्षा का ही काम सौंपा था, कज़्ज़ाकों के इलाके से बाहर उन्हें अधिक नहीं बढ़ना था।

देनीकिन ने यह योजना इस बात को ध्यान में रखकर बनाई थी

कि कज़्ज़ाक सेनाएं अपनी सीमाओं से बाहर लड़ने में खास उत्साह नहीं दिखाती थीं, पर अपने कज़्ज़ाक इलाकों की रक्षा के लिए जी-जान से लड़ती थीं, इस उम्मीद में कि इन इलाकों में प्रतिक्रांतिकारी "स्वायत्त" सत्ता स्थापित हो जायेगी, जिसके सफ़ेद गार्डी कज़्ज़ाक सपने देखते थे। देनीकिन ने कज़्ज़ाकों को प्रतिरक्षा का कार्यभार सौंपा, जिसे वे सफलतापूर्वक निभाते थे, और आक्रमण का कार्यभार वालंटियर सेना पर डाला, जिसके अफ़सर रूसी राजतंत्र की पुन:स्थापना के लिए राजधानी पहुंचने को उतावले थे।

रागोज़िन और किरील न देनीकिन की यह योजना ही जानते थे और न ही लाल सेना के दक्षिणी मोर्चे की क़मान की गलतियां।

वे यह भी नहीं जान सकते थे कि कूर्स्क की ओर देनीकिन का अभियान आरम्भ होने से चार दिन पहले ही जनतंत्र की क्रांतिकारी सैनिक परिषद ने सर्वोच्च कमान की वह रिपोर्ट स्वीकार और अभिपुष्ट की थी, जिसमें कहा गया था कि "कूर्स्क-वोरोनेज की दिशा पहले भी प्रमुख दिशा नहीं थी और अब भी नहीं बनी है", कि "हमारे बायें पार्श्व (अर्थात दोन स्तेपियों) के स्थान पर कूर्स्क-वोरोनेज की दिशा को प्रमुख रणक्षेत्र मान लेने का अर्थ होगा अभी-अभी शत्रु के हाथ से छीनी गई पहलकदमी को छोड़ देना तथा हमारी कार्रवाइयों को शत्रु की इच्छा के अनुरूप बनाना"। उन्हें यह भी नहीं पता था कि इस रिपोर्ट की अभिपुष्टि के फलस्वरूप जिस क्षण वालंटियर सेना कूर्स्क की दिशा में हमला करने को तैयार हो गई थी, उसी क्षण सर्वोच्च कमान ने दक्षिणी मोर्चे की कमान को यह निर्देश भेजा था कि "दक्षिणी मोर्चे के हमले की मूल योजना में कोई परिवर्तन नहीं आया है: विशेष दल को ही प्रमुख प्रहार करना है... जिसका उद्देश्य है दोन और कुबान इलाकों से शत्रु का सफ़ाया करना"।

सर्वोच्च कमान के इस निर्देश और देनीकिन की योजना से अनभिज्ञ होने के कारण रागोज़िन और किरील यह सोच तक न सकते थे कि एक बार फिर दोन इलाके को पार करके कुबान पर हमला करने पर ज़ोर देते हुए सर्वोच्च कमान "हमारी कार्रवाइयों को शत्रु की इच्छा के अनुरूप" ही बना रही थी, क्योंकि शत्रु तो यहां कज़्ज़ाकों की प्रतिरक्षा क्षमता की ओर से निश्चिंत था। रागोज़िन और किरील तो

बस यही चाहते थे कि लाल सेना का जो सफल अभियान रुक गया है, वह फिर से शुरू हो जाये और सफ़ेद गार्डों को जल्दी से जल्दी हरा दिया जाये।

लेकिन वे दोनों यह जानते थे कि उनकी भेंट के दिन तक, अर्थात सितम्बर के मध्य तक त्सरीत्सिन में हार के बाद उस दिशा में सैनिक कार्रवाइयां रुक गई थीं, और वे यह नहीं समझ पा रहे थे कि ऐसा क्यों हुआ, जबकि अगस्त मे सब कुछ इतनी अच्छी तरह आरम्भ हुआ था। वे यह भी जानते थे कि दूर साइबेरिया में एडमिरल कोल्चाक की सेना को पहले तो खदेड़ दिया गया था, वह पीछे हट रही थी, पर फिर पेत्रोपाव्लोव्स्क के पास कोल्चाक ने जवाबी हमला किया था, जिससे पूर्वी मोर्चे की एक सोवियत सेना को तोबोल नदी के पार कोई डेढ़ सौ मील पीछे हटना पड़ा था – इसका कारण भी उनकी समझ से बाहर था। अततः, एक और घटना थी, जिसके बारे में वे सुन चुके थे और जो सबसे खतरनाक थी: दक्षिणी मोर्चे के केन्द्रीय भाग पर दो सोवियत सेनाओं के संधि-स्थल पर देनीकिन की वालंटियर सेना ने जोरदार प्रहार करके सोवियत मोर्चे में दरार डाल दी थी और इस दरार को तेजी से फैलाते हुए यह सेना कूर्स्क की ओर बढ़ रही थी।

यह सारी जानकारी पाने के साथ-साथ रागोजिन की बेचैनी भी बढ़ती गई थी। लेकिन वह उसे मन के एक कोने में दबाये हुए था। अब वह यह देख रहा था कि इज्वेकोव उसकी मनोस्थिति समझ रहा है और स्वयं उसके मन में भी ऐसी ही बेचैनी छिपी हुई है। दोनों को ही यह अहसास हो रहा था कि कहीं कुछ गड़बड़ है और दोनों इसकी चर्चा किये बिना नहीं रह सकते थे, लेकिन साथ ही कोई भी पहले यह चर्चा छेड़ने का साहस नहीं कर पा रहा था। संकट को अभी तक संकट नहीं माना गया था। सेनाओं और डिविज़नों की कमानें दक्षिण मोर्चे की कमान की हां में हां मिला रही थीं, और मोर्चे की कमान सर्वोच्च कमान की सहमति से संकट को छोटी-मोटी अप्रिय घटनाएं ही बना रही थी। यही कारण था कि रागोजिन और किरील के लिए संकट कोई प्रत्यक्ष बात नहीं हो सकती थी, उन्हें इसकी आशंका ही थी, और यह प्रतीक्षा थी कि किसी घटना में या किसी दूरदर्शी, प्रबल शक्ति के हस्तक्षेप से यह संकट प्रकट हो जायेगा।

परन्तु वाद में भी जव पतझड़ की एक के वाद एक घटनाओं से लाल सेना के दक्षिणी मोर्चे के लिए घोर अनर्थ का बिल्कुल स्पष्ट खतरा पैदा हो गया, और फिर इन्हीं घटनाओं में ऐसा मोड़ आया कि देनीकिन की पूर्ण पराजय हुई, तब भी रागोज़िन और किरील इन घटनाओं पर विचार करते हुए पूरी तरह यह नहीं जानते थे कि किन कारणों से पहले दक्षिणी मोर्चा अनर्थ के गर्त पर जा पहुंचा था और फिर सर्वनाश से वचकर विजय के मार्ग पर अग्रसर हुआ।

इतिहास ने ही इन कारणों को पूरी तरह उजागर किया, और इतिहास से जो तथ्य प्रकाश में आये, उनमें एक तथ्य ऐसा था, जिसने दक्षिण में गृहयुद्ध की दशा वदलने में पहली प्रेरक शक्ति का काम किया।

उस दिन, जव रागोज़िन और किरील दक्षिणी मोर्चे की वुरी स्थिति के वारे में अपनी आशंकाएं व्यक्त करने का साहस नहीं कर पा रहे थे, जव देनीकिन मोर्चा तोड़कर तेज़ी से कूर्स्क की ओर वढ़ रहा था, जव लाल सेना की सर्वोच्च कमान प्रहारक दल के जवावी हमले को रोकने की विवशता को "योजना के पहले चरण की पूर्ति", सहायक दल की चाल की विफलता को "अभियान में आई मामूली रुकावट" तथा मामोन्तोव के विनाशकारी धावे को शत्रु की "नाममात्र सफलता" वता रहा था –

उसी दिन लेनिन ने एक पत्र लिखा, जो लाल सेना की सामरिक पराजयों के दोषियों के लिए अभियोग पत्र था।

यह पत्र जनतंत्र की क्रांतिकारी सैनिक परिषद के एक सदस्य के नाम लिखा गया था, जो दक्षिणी मोर्चे की क्रांतिकारी सैनिक परिषद का भी सदस्य था।

लेनिन ने लिखा था:

"...आश्वासन देते जाना वुरी कार्यनीति है। यह 'आश्वासनों का खेल' वन जाता है।

"वास्तव में हमारी सैनिक कार्रवाइयां रुकी पड़ी हैं, यह प्रायः विफलता ही है...

"...मामोन्तोव के खिलाफ़ हम निष्क्रिय हैं। प्रत्यक्षतः, एक के वाद एक मामले में हम देर कर रहे हैं। उत्तर से वोरोनेज जा रही

टुकड़ियां देर से पहुंचीं। २१वीं डिविज़न को दक्षिण भेजने में हमने देर की। वख्तरबंद गाड़ियों के मामले में देर की। संचार के प्रवन्ध में देर की। सर्वोच्च कमांडर अकेले ओर्योल गये थे, या आपके साथ– काम नहीं किया। सेलिवाचेव* के साथ सम्पर्क स्थापित नहीं किया, उस पर नज़र रखने का प्रवन्ध नहीं किया, हालांकि केन्द्रीय समिति वहुत **पहले से, सीधे-सीधे** इसका निर्देश दे चुकी है।

"नतीजा यह है कि मामोन्तोव के खिलाफ़ हम निष्क्रिय हैं, सेलिवाचेव निष्क्रिय है (वजाय उन वचकाना तस्वीरों में दिखाई गई किसी भी दिन होनेवाली विजय के – याद है आपने मुझे वे तस्वीरें दिखाई थीं? और मैंने कहा था: दुश्मन को तो भूल गये!!)।

"अगर सेलिवाचेव भाग गया या उसके डिविज़न कमांडरों ने हमारे साथ विश्वासघात किया, तो इसका दोष जनतंत्र की क्रांतिकारी सैनिक परिषद के सिर होगा, क्योंकि परिषद सो रही थी और आश्वासन दे रही थी, काम कुछ नहीं कर रही थी। हमें सवसे अच्छे, **सबसे उत्साही** कमिसारों को दक्षिणी मोर्चे पर भेजना चाहिए, न कि उनींदों को।

"नई टुकड़ियां गठित करने में भी हम देर कर रहे हैं – पतझड़ वीत रहा है। उधर देनीकिन अपनी शक्ति तिगुनी बढ़ा लेगा, टैंक वगैरह हासिल कर लेगा। ऐसे काम नहीं चल सकता। **कछुआ चाल** छोड़कर **फुर्ती से** काम करना चाहिए।

"...प्रत्यक्षतया, हमारी परिषद 'आदेश देती' ही है, उनके **पालन** पर नज़र रखने में दिलचस्पी नहीं लेती, या उसे यह आता ही नहीं। अगर यह हमारी आम बुराई है, तो सैनिक मामलों में इसका अर्थ पूर्ण पराजय ही है।"

परन्तु लेनिन के इस पत्र के वाद भी (जिस दिन यह भेजा गया, उसके तीन दिन वाद) सर्वोच्च कमांडर दोन की दिशा में कार्रवाइयों के परिणामों की प्रतीक्षा कर रहा था, उसने विशेष प्रहारक दल को

---

* सेलिवाचेव: उस सेना दल का कमांडर, जिसे अगस्त में दक्षिणी मोर्चे पर जवाबी हमले में सहायक प्रहार करने का काम सौंपा गया था; क्रांति से पहले ज़ारशाही सेना में कर्नल था। – सं०

यह आदेश भेजा था कि वह "तेज़ चाल" चलके अपने दायें बाज़ू की सेनाओं को दोन के तट तक बढ़ाये।

इसके भी तीन दिन बाद जब कूर्स्क भी हाथ से निकल चुका था, तब कहीं जाकर लेनिन के नये हस्तक्षेप के फलस्वरूप खतरे में पड़ गये ओर्योल क्षेत्र में रिज़र्व टुकड़ियां भेजी गईं। वैसे अभी इसका अर्थ यह नहीं था कि सर्वोच्च कमांडर ने दोन की स्तेपियों में बचाव पाने की अपनी ढिठाई छोड़ दी थी...

रागोज़िन अपनी मूंछों पर ताव देते हुए भिंची-भिंची आंखों से इज़्वेकोव की ओर देख रहा था और यह इंतज़ार कर रहा था कि कब वह सबसे महत्वपूर्ण बात की चर्चा छेड़ता है। इज़्वेकोव सोच रहा था कि रागोज़िन इस बात की चर्चा छेड़े।

पट्टियों को सीकर बनाया गया कामचलाऊ पर्दा खिड़की पर हिल रहा था। वार्ड में उड़ आया भौंरा गुस्से में शीशे पर भिनभिना रहा था। दरवाज़े के बाहर से नर्सों के स्लीपरों की आहट आ रही थी।

लगभग तीन महीने पहले जब यहां स्वास्थ्य लाभ गृह था और किरील दीबिच से मिलने आया था, तो इस विशाल इमारत की मन पर बिल्कुल दूसरी ही छाप पड़ती थी। तब यहां वातावरण हर्षमय था, मानो यह वचन देता हुआ कि शीघ्र ही सब कुछ बहुत अच्छा हो जायेगा। अब यहां फ़ौजी अस्पताल था, वातावरण में आकुलता थी और इसकी खामोशी यह कहती लगती थी कि यहां लोग कष्ट सह रहे हैं, सो यहां फूंक-फूंककर कदम रखना चाहिए।

"तुम नाराज़ मत होना," किरील बोला, "मैं तुम्हारे बेटे का पता नहीं लगा सका। वक्त नहीं था। जब तक तुम यहां लेटे हो, मैं यह काम कर दूंगा।"

"हां, हां," रागोज़िन फिर से मुस्कराया और उसने अपनी भिंची आंख से चालाकी भरी नज़र छत की ओर डाली। "ठहरो ज़रा... ज़रा... ठहरो... अभी दिली बातों का वक्त नहीं। लोगों को अपने बच्चों तक की सुध-बुध लेने की फ़ुरसत नहीं, परायों की तो बात ही क्या। हो जायेगा!"

"मैं ज़रूर पता लगा दूंगा, इन्कार नहीं कर रहा," सहसा इज़्वेकोव ने उतावली से कहा।

"अरे, बुरा मत मानो! मुझे पता है तुम्हारा भी बड़ा मुश्किल वक्त गुजरा है। अपने अभियान के बारे में ही कुछ बता देते।"

"तुम जूबिन्स्की को जानते थे?"

"कौन जूबिन्स्की?"

किरील ने उसे जूबिन्स्की की तोड-फोड़ की बात सुनाई।

"शुक्र मनाओ कि उसने तुम्हारी पीठ में गोली नहीं दागी।"

"मैंने उसकी ओर पीठ कभी नहीं मोड़ी।"

"ठीक किया। हमारी कई मुसीबतों का कारण ही यह है कि हम इन भूतपूर्व अफ़सरों की ओर पीठ कर लेते है, जिन्हें हमने अपने फौजी विशेषज्ञ बना रखा है... हो सकता है हमारे नगर का फ़ौजी कमिसार भी इन्ही विशेषज्ञों में से हो?"

"पता नहीं।"

"जांच लेना चाहिए। उसने जूबिन्स्की को ही तुम्हारे साथ क्यों किया? शायद कोई दूर का इरादा रहा हो, हैं?.. दक्षिण के बारे मे तुम्हारा क्या ख्याल है?" सहसा रागोजिन ने पूछा।

"कैसा दक्षिण?" किरील जैसे समझा नहीं।

"कूर्स्क के पास। लगता है मामोन्तोव से कुछ सबक नहीं सीखा, हैं? उन्होंने एक बार कोशिश की – सफल रहे। सोचते हैं, फिर से क्यों न कर देखा जाये?.. मैं सफ़ेद गार्डों की बात कर रहा हूं, सफ़ेद गार्डों की, हैं?"

"कहीं मामोन्तोव के धावे से भी ज़्यादा बुरी हालत न हो।"

"और मैं क्या कह रहा हूं? ये फ़ौजी विशेषज्ञ महोदय दरवाज़े खोल देंगे – आइये पधारिये! – और फिर तुम भुगतते फिरो!"

"सारी बात विशेषज्ञों की ही थोड़े है। और वे भी सब एक जैसे नहीं हैं। दीविच को लो... मैंने तुम्हें पहले नहीं बताया उसके बारे में? मेरी कम्पनी का कमांडर था..."

"मारा गया क्या?"

"हां। बार-बार उसका ख्याल आता है।"

पल भर को किरील अपने विचारों में खो गया, फिर – मानो इस व्यक्ति के साथ तय किये रास्ते का मूल्यांकन करने का समय आ गया हो – उसके साथ हुई सभी भेंटों को याद करने लगा, पगडंडी

पर मैपल के झुरमुट तले आखिरी भेंट तक, जब दीविच अपने साथी की हताश नज़र का जवाब नहीं दे सकता था।

रागोज़िन इस दुखद कहानी के बीच में एक बार भी नहीं बोला, बस अंत में अपने गंजे सिर पर कसकर हाथ फेरते हुए उसने कहा:

"ठीक बात है, दोस्त! अच्छे आदमी के लिए ज़रूर दुख होता है।"

"सिर्फ़ दुखी होने से क्या होता है!" किरील सहसा चिल्लाया। "उसके लिए कुछ जवाब भी देना चाहिए कि नहीं?"

"जवाव?" रागोज़िन ने पूछा और कुछ देर चुप रहा। "जवाब भी देना ही चाहिए... यह बात है, भाई मेरे। हां, जवाव देना चाहिए। जब ऐसा हुआ तो ज़रूर कोई जवावदेह होना चाहिए।"

किरील के चेहरे पर दुख भरी मुस्कान आई।

"पर कैसे? पश्चाताप करके? पश्चाताप से जवाव दिया जाये या और कैसे?"

"अपने मन में पश्चाताप करना तो सराहनीय बात है। क्यों नहीं? आत्मसुधार के लिए पश्चाताप बहुत अच्छी वात है। पर जहां तक उत्तरदायित्व की, जवावदेह होने की बात है... अपने मन में पश्चाताप काफ़ी नहीं।"

"मैं भी तो यही पूछ रहा हूं कि जवाबदेह होने का क्या मतलब है?" किरील ने कुछ झुंझलाते हुए कहा।

"इसका मतलब है कि कोई तुमसे जवाव-तलवी करे। समझे न, कोई तुमसे उत्तर मांगे कि बताओ क्यों, कैसे, हमारा सच्चा साथी मारा गया... तुम अपने अभियान की रिपोर्ट दोगे न, तो बस उसमें ही इस बात का जवाब देना।"

"सो तुम्हारे ख्याल में मेरे सिर पर इसका दोष है?" इज़्वेकोव ने पूछा और वड़ी उत्सुकता से टकटकी लगाकर रागोज़िन का चेहरा देखने लगा।

"तुम खुद क्या सोचते हो?"

किरील ने चुपचाप सिर हिलाया।

"फ़ौजी नियमों को देखा जाये, तो शायद दीविच का ही दोष ज़्यादा है," रागोज़िन कहता गया। "अभियान के वीच में वह कम्पनी

छोड़कर कैसे जा सकता था? आखिर वह कमांडर था, है न? नियमों के अनुसार वही जवाबदेह है। पर मरे हुओं से क्या जवाब पाया जा सकता है। उसने तो अपने किये का फल भुगत लिया, पर तुम खुदाखलासा, जिंदा हो। गया तो दीविच तुम्हारी सहमति से ही था, है न? और कमिसार होने के नाते तुम भी कमांडर हो। सो भई, यह बात निकलती है दिमाग से सोचो तो चुप रहा जा सकता है, पर दिल की बात करो, तो कहना चाहिए..."

"शुक्रिया, मैं भी यही सोच रहा था," किरील जल्दी से बोला, वह दिमाग पर बोझ बने विचार से छुटकारा पा लेना चाहता था। "एक और सवाल है। या यह कहो कि प्रार्थना है..."

लेकिन जल्दी-जल्दी बोलना शुरू करके भी वह तुरन्त ही रुक गया, क्योंकि जैसे ही उसने स्पष्टतया यह देखा कि क्या कहना चाहता है, तभी समझ गया कि मामला कितना टेढ़ा है। ज़बरदस्ती ही वह मुंह पर मुस्कान लाया।

"तो फिर तुम्हें एक और किस्सा सुनना होगा। परेशान तो नहीं कर दिया मैंने तुम्हें? बस दो शब्दों में बताता हूं।"

किरील ने मेरकोव की बात शुरू की ही थी कि रागोज़िन बेचैनी से सिरहाने पर सिर हिलाने लगा, उसके जिन अंगों पर पट्टियां नहीं बंधी हुई थीं, वे भी सब चादर तले हिलने-डुलने लगे, जिससे यह साफ़ दिखने लगा कि उसकी काठी कितनी बड़ी है और उसे यों बिस्तर पर लेटने में कितनी तकलीफ़ हो रही है। मेरकोव के सोने की बात वह अंत तक नहीं सुन पाया:

"ओफ़ टुच्चा व्यापारी! धोखा दे गया! कितना सीधा-सादा बनता था! कहता था, चाहो तो मेरा गद्दा फाड़कर देख लो – एक भी सोने का सिक्का नहीं है! उसका सिरहाना फाड़कर देखना चाहिए था, हैं?! मुझे चकमा दे गया, धूर्त सियार! और सब बड़ा भोला-भाला बनकर! बताओ, ऐसे आदमी का कोई क्या करे, हैं?"

रागोज़िन अपना गुस्सा रोक ही नहीं पा रहा था – रह-रहकर सिरहाने से सिर उठाता और फिर गिरा देता!

"उसका सारा सोना ज़ब्त करके हम सरातोव ले आये हैं," किरील ने कहा, "और खुद मेरकोव बजरे पर है!"

"वही ठीक जगह है उसके लिए।"

"हां, अगर अदालत यह जगह उसके लिए ठीक समझेगी तो। पर जब तक मुकदमा शुरू नहीं हुआ... मैं तुमसे सलाह लेना चाहता था। मेश्कोव की बेटी मेरे पास आई थी, कह रही थी कि बूढ़े की कुछ मदद हो सके तो..."

किरील चुप हो गया। रागोज़िन ने हिलना-डुलना बंद कर दिया और इज़्वेकोव पर तिरछी नज़र डाली, जैसे उसे आर-पार देख रहा हो।

"परोपकारी बनना चाहते हो?" थोड़ी देर चुप रहकर उसने कहा।

"यही लगता है।" किरील ने हंसते हुए सिर झटका।

"और क्या? गलत कहा क्या मैंने? मैंने तुम्हारे इस संत पर भरोसा किया और वह मेरी आंखों में धूल झोंक गया। मैं ही उल्लू बना। तुम उसे गड्ढे में से निकालना चाहते हो, और वह सोच रहा होगा कि कैसे तुम्हें उसमें धकेल दे।"

"पर वह गड्ढे में भी तो मेरे जतन से ही पहुंचा है, है कि नहीं?"

"खुद ही उसे बंद किया, खुद ही तरस खा रहे हो..."

"मुझे कोई तरस-वरस नहीं। उसे अपने किये की सज़ा मिलेगी। पर मैं चाहता हूं वह न कम हो, न ज़्यादा।"

"डरते हो कि ज़रूरत से ज़्यादा सख्ती न हो जाये? चाहते हो कोई बादशाह सुलेमान न्याय करे? तुम खुद न्याय करो। दीबिच के लिए जवाब देने को तैयार हो न, मेश्कोव की भी जवाबदेही संभालो।"

"मैं अपना काम कर चुका हूं।"

"तो अब किसका करना चाहते हो?"

किरील ने कंधे बिचका दिये। उसे कोई जवाब नहीं सूझ रहा था, पर रागोज़िन की बातों से भी वह सहमत नहीं हो पा रहा था।

"तुम समझे नहीं। मेश्कोव को छुड़ाने का मेरा कोई इरादा नहीं है। मैंने उसकी बेटी को यह पता लगाने का वायदा किया है कि मामले की स्थिति क्या है और बूढ़े का क्या हाल है।"

"बेटी के लिए दुखी हो?"

"वह अपने बाप के लिए दुखी हो रही है।"

"तुम्हारी वह क्या लगती है?"

"लो, तुम भी यह बात ले बैठे!" किरील ने झल्लाकर मुंह मोड़ लिया और फिर कुछ ऐसे लहजे में जैसे यह निष्फल बातचीत खत्म करना चाहता हो, बस हठपूर्वक ही इतना और जोड़ा: "तुम यह बताओ कि किससे इस मामले में पूछताछ की जा सकती है, तुम तो मुझसे ज्यादा अच्छी तरह जानते हो।"

"जो तुम्हारे जी मे आये करो। मैं तुम्हारा गुरु नहीं, और धोखेबाजों की मदद नहीं करना चाहता।"

"नहीं, गुरु तो हो, जभी तो मुझे बच्चों की तरह सबक सिखा रहे हो। मैं मेरकोव की क्या मदद करने चला हूं? क्या मैं इतना भी नहीं समझता कि उसके इरादे भले ही बुरे न हों, पर वह अपनी प्रकृति से ही हमारा दुश्मन है?"

"कितनी खुशी होती है अक्लमंदी की बात सुनकर!"

किरील ने रागोजिन की ओर देखा। उसकी उलझी-उलझी मूंछों तले व्यंग्यपूर्ण मुस्कान थी। पर नहीं, इस मुस्कान में व्यंग्य नहीं था, यह तो अजीब संकोचपूर्ण स्नेह और चालाकी भरी मुस्कान थी, जैसी किरील ने रागोज़िन के चेहरे पर पहले कभी भी नहीं देखी थी। मानो रागोजिन को यों चालाकी से मुस्कराते हुए शर्म आ रही हो, पर साथ ही बेहद अच्छा भी लग रहा हो।

"लो मेरा खाना आ गया," मुस्कान जैसी ही विचित्र आवाज मे उसने कहा और सीधे सामने देखते हुए सिरहाने पर उठने की कोशिश करने लगा।

किरील ने उसकी नज़र के पीछे-पीछे आंखें घुमाईं।

एक लड़का वार्ड में घुस रहा था – लंबी-लंबी टांगें, छरहरा बदन, ऊंचा माथा और भौंहों के सिरे कनपटियों की ओर उठे हुए। उसकी उभरी-उभरी आंखों में कौतूहल और चिंता का जो भाव चमक रहा था, उसके सारे शरीर मे टपकती लापरवाही के साथ उसका कोई मेल नहीं बैठ रहा था। वह अभी बच्चा ही था, पर उसमें किशोरों जैसी बेढबी भी आ चली थी। सहसा किरील को उसकी लंबी-लंबी टांगों और बांहों का यह बेढबपन अत्यंत परिचित सा लगा।

"टोकरी कोने में रख दो," रागोज़िन ने कहा, "और किरील निकोलायेविच इज्वेकोव से मिलो।"

"रागोज़िन," लड़के ने कहा, और सिर झुकाने के बजाय चुनौती के साथ ऊपर उठा लिया तथा अपना हाथ बहुत आगे बढ़ा दिया।

"वान्या," पिता ने उसके बदले हौले से कहा।

"अच्छा," इज़्वेकोव ने कहा और फिर से प्योत्र पेत्रोविच की ओर मुड़ा। "मिल गया?"

रागोज़िन की मुस्कान किरील को और भी अधिक अप्रत्याशित लगी। चालाकी भरे स्नेह के साथ उसमें कृपायाचना का सा भाव भी मिल गया था, जैसा बूढ़ी नानी-दादी की मुस्कान में होता है, जो अपने नाती-पोते को देखकर फूले नहीं समाती। यह मुस्कान इस गंजे और सहसा बूढ़े हो गये व्यक्ति के चेहरे पर बड़ी अच्छी लग रही थी, पर साथ ही किरील के मन में कुछ-कुछ रूखे से और व्यंग्यपूर्ण रागोज़िन की जो तस्वीर थी उसके साथ इसका बिल्कुल मेल नहीं बैठता था। किरील ठहाका मारकर हंसा। प्योत्र पेत्रोविच भी झेंपता हुआ हंसने लगा। वार्ड में उनकी यह उन्मुक्त हंसी गूंजने लगी, बस वान्या ही गम्भीर बना हुआ था और अपने पिता तथा नये परिचित की ओर यों देख रहा था, जैसे उसे यह पसन्द न हो।

"बैठो," चादर तले टांगों को परे खिसकाते हुए और पलंग की पाटी की ओर इशारा करते हुए रागोज़िन ने कहा। "अब मेरी बारी है सुनाने की, है न?"

"हां, कैसे हुआ यह सब?" इज़्वेकोव ने आश्चर्य के साथ पूछा।

"वान्या और मैं एक ही पोत पर फ़िदा हो गये: गनबोट 'जोखिमी'। याद है मैंने उसकी मरम्मत की थी और यह उस पर नौसैनिकों के साथ लड़ने निकला था..."

रागोज़िन ने सारी कहानी सुनानी शुरू की, यह कोशिश करते हुए कि ज़्यादा लम्बी न खींचे, पर साथ ही उसके दिमाग में वे सब छोटी-छोटी बातें आ रही थीं, जो उसके लिए इतनी प्यारी और इतनी महत्वपूर्ण थीं।

प्योत्र पेत्रोविच की बेटे के साथ मुलाकात अस्पताल के पोत पर हुई थी, 'अक्तूबर' गनबोट से उसे अस्पताल के पोत पर लाये जाने के एक दिन बाद, जब घायलों से भरा पोत सरातोव को चल दिया था।

दर्द कुछ कम हो गया था, लेकिन रागोज़िन को अभी भी यह

लगता था जैसे उसके दिमाग पर घनी धुंध छाई हुई हो, जिसे कभी-कभार ही और वह भी बड़ी मुश्किल से उसके विचार भेद पाते थे। सोचना न केवल कष्टदायी था बल्कि अप्रिय भी, क्योंकि सारे विचार असफलता की चेतना और उसके कारणों की निष्फल खोज तक ही सीमित रह जाते थे।

जिस दिन रागोजिन घायल हुआ था, उस दिन तक उसने युद्ध का काफ़ी अनुभव पा लिया था और हर समय उसे यह अहसास रहता था कि वह निरन्तर कहीं ऊपर चढ़ता जा रहा है। उसे इस बात का सहज बोध था कि उसने एक नया गुण पा लिया है, जिससे अभी तक वह अपरिचित था, लेकिन इसकी व्याख्या करने की या इसे कोई संज्ञा देने की वह कोई कोशिश नहीं कर रहा था। उसकी दूरदृष्टि इतनी विकसित हो गई थी, जितनी पहले कभी न थी, वह अपनी बुद्धि से बहुत दूर तक देख सकता था और जानता था कि उसे क्या करना चाहिए। वह मानो एक शिखर पर चढ़ गया था, और इस ऊंचाई से वह जनता के हाथों में जो अस्त्र था, उसके प्रहारों को सफल बनाने में सहज ही सहायता कर सकता था।

और ठीक इसी क्षण उसके सब किये-कराये पर पानी फिर गया था, उनके अभियान का अंत यह हुआ था कि उन्हें पीछे हटना पड़ा था, और स्वयं उसे अपने निस्सहाय होने की तीव्र कष्टदायी अनुभूति हो रही थी।

उसके विचारों की रुकी-रुकी सक्रियता के ऐसे ही एक क्षण में नर्स रागोजिन के पास आई थी और उसने बताया था कि जहाज़ पर काम कर रहा एक लड़का उससे मिलना चाहता है।

बाद में रागोज़िन यह समझा था कि तब उसे बेटे से मिलने का इतना अचम्भा नहीं हुआ था, जितना इस बात का कि जब से 'जोखि-मी' के कमिसार ने उसे गनबोट पर आ गये लड़के और उसे तट पर उतारने की बात कही थी, तब से उसे बेटे से इस भेंट की पूर्वानुभूति रही थी। नर्स से लड़के की बात सुनकर रागोज़िन ने तुरन्त ही यह तय किया था कि यह वही लड़का है, जिसे उसने तट पर उतारने के बजाय अस्पताल के पोत पर भेजने का आदेश दिया था। उसे वीकोव बुगोर के पास नावों पर तरबूज बेचते लड़के याद हो आये, और

नदी में फटते गोले और चप्पुओं की भयभीत छपछप और नन्हे खेवैयों के लिए मन में उठा डर और अपना गुस्सा तथा यह भी कि इस डर और गुस्से के साथ तब बेटे के लिए मन में उठी टीस मिल गई थी। अब उसे इस बात में ज़रा भी संदेह नहीं था कि वह उससे मिलेगा, क्योंकि अस्पताल के पोत पर काम कर रहा लड़का और कोई नहीं उसका बेटा ही है। इस विश्वास के साथ मस्तिष्क में स्वास्थ्यप्रद रक्त प्रवाह हुआ और वह धुंध छंट गई, जिससे सोचने में कष्ट हो रहा था, दर्द भी कहीं दूर दब गया।

पोत पर बेटे के साथ बातचीत थोड़ी देर के लिए ही हो पाती थी (डाक्टर उसे ज़्यादा देर तक घायल के पास रहने की इजाज़त नहीं देते थे), लेकिन रागोज़िन इन बातचीतों का एक-एक शब्द न जाने कितनी बार मन ही मन दोहरा चुका था और उनकी लौ उसके मन में अभी तक ज़रा भी धुंधली न पड़ी थी।

"तुम मेरे घर से भाग क्यों गये थे?" वान्या जब केबिन में चौखट से सटकर खड़ा हो गया था और गुनाहगार हठी की भांति सहमी-सहमी, पर साथ ही निडर नजरों से देख रहा था, तब प्योत्र पेत्रोविच ने उससे पूछा था।

"अच्छा हुआ कि भाग गया था।"

"अच्छा क्यों?"

"अब आपकी सेवा-टहल कर सकूंगा – मेल नर्स बनकर।"

"ओह, शुक्रिया... पर तुम नर्स कैसे, तुम तो... पता है, तुम मेरे कौन हो?"

"पता है।"

"अच्छा... पता है!"

"मुझे तब घर पर भी पता था।"

"पता था, फिर भी भाग गये!"

"हुं!"

"बस 'हुं' ही!"

"और क्या?"

"मैं कह रहा हूं, भागे क्यों थे, जब तुम्हें पता था कि मैं तुम्हारा कौन हूं?"

"पता था तो क्या हुआ?"

"क्या मतलब?"

"कुछ नहीं।"

"क्या बाप के घर से भी भागा करते हैं?"

"और नहीं तो क्या!"

"हो सकता है बुरे बाप से कोई भागता हो। पर मैं तो तुम्हारा भला चाहता हू। खुश हूं कि तुम मिल गये। तुम खुश हो?"

वान्या ने पीठ पीछे हाथ बांध लिये।

"अगर मुझे बताया गया होता कि आप कमिसार हैं... मैंने पूछा तो पता चला कि हिसाब-किताब का काम करते हैं। जैसे वह हमारे बालघर का बाबू।"

"हू, बाबू! बाबू होना भी कोई बुरी बात है क्या? मैं तुम्हें एक बाबू दिखाऊंगा – आर्सेनी रोमानोविच। पता है बच्चे उनकी कितनी इज्जत करते है।"

"अजी हा, वह कोई बाबू थोड़े ही हैं! मुझे पता है वह कौन है।"

"कौन है वह?"

"वह तो कलाकार हैं।"

"अच्छा, यह बात है!" रागोज़िन मुस्कराया। "हां, ठीक ही कहते हो, वह कलाकार हैं... मैं तुम्हें पढ़ने भेजूंगा, तुम भी कलाकार बन जाओगे।"

वान्या चुप था। रागोज़िन बेसब्री से उसके जवाब का इंतज़ार कर रहा था।

"अगर आता नहीं, तो पढ़ो न पढ़ो कुछ फ़र्क नहीं पड़ता!" आखिर वह दृढ़ विश्वास के साथ बोला।

"पढ़ोगे, तो सीख जाओगे।"

"देखे है मैंने ऐसे पढ़ने वाले। पढ़ते रहते हैं, पढ़ते रहते हैं, फिर भी कुछ नहीं आता। और मैंने पेंसिल उठाई और बना दिया!"

"वाह रे..." रागोजिन बस इतना ही कह पाया था। आश्चर्य से भरा वह गर्वीले बालक को देखता रहा था।

तब ही रागोजिन को यह अहसास हो रहा था कि उनके सम्बन्ध

बेटे की पढ़ने की इच्छा पर निर्भर होंगे, और अगली भेंट में उसने फिर इसकी चर्चा छेड़ी। उसे लग रहा था कि जिन बातों को वह जीवन में प्रमुख और महत्वपूर्ण मानता है, वे ही बालक के जीवन में भी प्रमुख और महत्वपूर्ण हैं। और यह देखकर परेशान था कि वान्या का दृष्टिकोण बिल्कुल दूसरा ही है।

"अच्छी तरह पढ़-लिख लोगे, काम करना सीख लोगे, तो लोगों का हित करोगे," प्योत्र पेत्रोविच ने उसे समझाते हुए कहा था।

"क्या मतलब?" वान्या शायद समझा नहीं था।

"कैसे समझाऊं तुम्हें... तुम कभी संग्रहालय गये हो?"

"हां।"

"वहां लगे चित्र तुम्हें पसन्द आये?"

"हां।"

"सो, इस तरह उन कलाकारों ने अपने श्रम से तुम्हारा हित किया। अपने चित्रों से, समझे?"

वान्या केबिन की खुली खिड़की में से ध्यानमग्न बाहर देख रहा था। वहां वोल्गा बह रही थी – विशाल स्टीमर के पहियों तले उसके पानी की छपछप सुनाई दे रही थी, पीछे को दौड़ती जाती हरी लहरें दिखाई दे रही थीं, बालुई तटों पर वे सफ़ेद झाग में बिखर रही थीं।

"यह हित नहीं है," वान्या ने जवाब दिया था और उसका चेहरा ऐसा रहस्यमय हो गया था, मानो अकेले उसे ही पता हो कि हित क्या है।

"हित कैसे नहीं है? और क्या है?"

"यह तो... जैसे जलन होती है कि तुमने ये चित्र नहीं बनाये। कि तुम कभी ऐसे चित्र नहीं बना सकोगे।"

"देखा न," रागोज़िन खुश हो गया था। "इससे तुम्हारे मन में यह इच्छा उठती है कि तुम भी दूसरों की तरह अच्छे चित्र बना सको। ताकि तुम्हारे चित्रों को भी लोग निहारें, जैसे तुम निहारते हो। बस यही उनका हित होगा, और क्या?"

"वाह, क्या विशपी करते हैं आप भी," वान्या ने व्यंग्य के साथ कहा था।

"यह विशपी करना क्या होता है?"

"वो मठवासियों की तरह।"

"क्या मठवासियों की तरह? तुम मठवासियों की बातें क्या जानते हो?"

"हम वहां आश्रम मे विशप से शक्कर मांगने जाया करते थे। वह सबको एक-एक डली दे देते और अपनी विशपी झाड़ने लगते: जाओ, खेलो, बच्चो, लड़ो-झगड़ो नही, बड़ों का आदर करो, भगवान तुम्हारा भला करे!"

वान्या ने विशप की खूब अच्छी नकल उतारी थी।

"और तुम क्या करते थे?" रागोजिन ने मुस्कराते हुए पूछा था, हालांकि वह कुछ सकपका गया था।

"कुछ नही। शक्कर खा लेते, फिर मांगने चले जाते। वह फिर दे देते और फिर से विशपी झाड़ने लगते... और आप तो कमिसार है!" सहसा बड़ों की भांति उलाहने के स्वर में वान्या ने कहा था।

अगली बार रागोज़िन ने दूसरे पहलू से बात चलाने की कोशिश की थी।

"पढ़ने नही जाओगे, तो तुम्हें कागज़, पेंसिल कौन देगा? आखिर तुम चित्र बनाना तो नही छोड़ना चाहते?"

"मुझे जब किसी चीज़ की ज़रूरत होती थी, तो मैं मार लेता था," वान्या ने झट से जवाब दिया था।

"ओहो .."

"और क्या, बैठे देखते रहो, कब तुम्हें देंगे! ऐसे तो कुछ मिलने से रहा! जहां मौका लगता मार लेता और बस चित्र बनाने लगता।"

"इसे चोरी कहते हैं, भैया मेरे। समझे, यह बात है!"

"पेंसिलें?" वान्या की आंखें फटी की फटी रह गई।

"हां पेंसिलें हों या और कुछ, है यह चोरी ही! तुम ये अनाथालय की आदतें छोड़ दो। तुम्हें जो कुछ चाहिये होगा, मैं तुम्हें दूंगा।"

वान्या ने मुंह लटका लिया था और फिर बुझी-बुझी सी आवाज़ मे बोला था:

"अगर माल बहुत है, तो चलेगा।"

पर फिर सहसा भावावेग में अपने पिता से पहली बार उसने अपनेपन के लहजे मे कहा था:

"अगर कोई चीज़ न भी हुई तो कोई बात नहीं। आप परेशान मत होना, मैं अपने आप कहीं न कहीं हाथ मार लूंगा।"

बेटे के इस भावावेग से पिता गद्गद हो उठा था और भयभीत भी, उसने एकसाथ ही यह देख लिया था कि बच्चे के विचार कितने बिगड़े हुए हैं और साथ ही उसमें कितना भोलापन है।

वोल्गा पर बेटे के साथ भेंट के बारे में किरील को बताते हुए रागोज़िन को अब फिर से ये सब बातें याद हो आईं।

वान्या पिता के पायताने बैठा था और निर्लिप्त भाव से छत की ओर देख रहा था। आज वह दूसरी बार पिता के लिए खाना लाया था, जो रागोज़िन की मालकिन ने बनाया था। वह अच्छी तरह जानता था कि आधा खाना वह वापस ले जायेगा: रागोज़िन हठधर्मी के साथ बेटे का ध्यान रख रहा था। बालक यह देख रहा था कि पिता के जीवन में उसने क्या स्थान पा लिया है। उसे यह बड़ों की भावुकता लगती थी, पर वह अपने पर कुछ गर्व के साथ इसे बढ़ावा देता था और पिता का लाड़-प्यार स्वीकार करता था, क्योंकि वह लड़ाई में घायल हुए थे और उन्हें मदद की ज़रूरत थी।

"अब हम दोनों ने तय किया है कि इकट्ठे रहेंगे," सराहना भरी नज़रों से वान्या की ओर देखते हुए रागोज़िन ने कहा। "पता है, किरील, इस सब के बाद मैं किस फ़ैसले पर पहुंचा हूं? यहां लेटे-लेटे सोचने को तो बहुत समय मिलता है। देखो न, हम खुश हैं कि उस लक्ष्य की ओर बढ़ रहे हैं, जिसे हम पाना चाहते हैं। मैं सोचता हूं कि जिस लक्ष्य तक हमें पहुंचना है, उसका एक अंश ही अगर हम उस सब में ढूंढ सकें, जो हमने पा लिया है, तो हमारी खुशी और भी अधिक हो। समझे मेरी बात?"

"थोड़ी बहुत," किरील मुस्कराया।

"हां भई, अमूर्त बातें करनी मुझे नहीं आतीं। मैं तो व्यावहारिक रूप से देखता हूं। सो मैं अपने आप से पूछता हूं: क्या हम भविष्य में मानव सम्बन्धों को बदलना चाहते हैं? ज़रूर बदलना चाहते हैं। तो फिर मैं सोचता हूं कि हमें अपने वर्तमान जीवन में ही इन परिवर्तनों के लक्षण ढूंढ़ने चाहिए, ताकि इनमें से कुछ अभी से ही हमारे जीवन का अंग हो जायें। समझे? और कैसे कहूं? यों कहो कि हमें अपने

विचारों को जीते-जागते लोगों में, उनके आपसी सम्बन्धों में उतारना चाहिए। अपने विचारों को व्यावहारिक रूप देना चाहिए। नहीं तो हम अपने सपनों में ही खो जायेंगे, उदाहरण के लिए कम्युनिस्ट समाज के सपने में, जबकि ऐसा समाज अभी है नहीं। और हम अपने सपने की ही पूजा करने के इतने आदी हो जायेंगे कि लोगों को भूल ही जायेंगे। ठीक है न? सो हमें आज ही इस सपने को साकार करना चाहिए। आज के इन्सान में ही भविष्य का थोड़ा सा अंश ढूंढ़ना चाहिए। और इन्सान के साथ ऐसे सम्बन्ध बनाने चाहिए, जैसे कि वह हमारा आदर्श ही हो। है न? और अगर हर कोई ऐसे करेगा, तो हम भविष्य के अपने सपने को अभी ही थोड़ा-थोड़ा साकार करने लगेंगे। बीज बोयेंगे, समझे?"

"समझ गया। पर यह नुस्खा तो हर आदमी पर लागू नहीं हो सकता। खास तौर पर अब। याद है, तुम्हीं ने कहा था: जैसा समय हो, वैसी ही नीति होनी चाहिए।"

"और नहीं तो क्या! तुम ऐसा आदमी ढूंढ़ो, जिसमें इस भविष्य का कुछ अंश है, उसके काम में, जनता के लिए उसकी सेवा में या और किसी बात में। और फिर उसकी मदद से सीखो। उसके ज़रिये अपने विचारों को व्यावहारिक रूप दो। बस, ऐसा आदमी ढूंढ़ना चाहिए," रागोज़िन ने दुबारा कहा और एक बार फिर से संतोष भरी नजरों से बेटे की ओर देखा।

"ठीक कहते हो," किरील सहसा ज़ोर से बोला। "मुझे याद पड़ता है चेर्निशेव्स्की* ने भी कुछ ऐसी ही बात कही है: भविष्य को निकट लाओ, उसमें से जो कुछ ला सकते हो, वर्तमान में लाओ।"

"देखा! जब अपने दिमाग को किसी और का सहारा मिल जाये, तो बात पक्की हो जाती है," रागोज़िन ने आंख मारते हुए कहा, उसकी नजरें अभी भी बेटे पर टिकी हुई थीं।

किरील ने भी वान्या की ओर देखा।

बालक ने मीठी जम्हाई ली।

---

* न० चेर्निशेव्स्की (१८२८–१८८९) – महान रूसी क्रांतिकारी-जनवादी, भौतिकवादी दार्शनिक तथा कल्पनावादी जनवादी। – सं०

चेहरे पर बरबस आ रही मुस्कान को दबाने की कोशिश करते हुए किरील ने पूछा :

"क्यों भई, यह क्या बात हुई कि तुम खुद तो मोर्चे पर चले गये, और अपने साथी को छोड़ गये? मुझे पाव्लिक पाराबुकिन ने सब बताया था कि कैसे तुमने उसे धोखा दिया।"

"मेरा क्या कसूर है? मुझे नौसैनिकों ने धोखे में रखा। पाव्लिक को पता है। हमारी सुलह हो गई है। हम दोनों तो आपके पास जाने की सोच रहे थे।"

"मेरे पास? किसलिए?"

"शिकायत करने।"

"किसकी?"

"उसके बाप की।"

"क्यों, क्या किया है उसने?"

"वह आर्सेनी रोमानोविच की किताबों से लिफ़ाफ़े बना रहा है।"

"आर्सेनी रोमानोविच की किताबों से?" रागोज़िन चिल्लाया, उसने सिरहाने से सिर उठा लिया, पर तुरन्त ही तीव्र पीड़ा से उसका चेहरा विकृत हो गया और उसने हौले से सिर वापस सिरहाने पर रख लिया।

"आर्सेनी रोमानोविच ने अपनी किताबें एक लाइब्रेरी को दे दी हैं। लाइब्रेरी ने आधी किताबें रद्दी में दे डाली हैं। और पाव्लिक का बाप उनके लिफ़ाफ़े बना रहा है। पाव्लिक ने अपनी आंखों देखा है।"

"क्या है यह सब, किरील? तुम जाकर देखो तो," रागोज़िन बोला, वह एकदम शिथिल पड़ गया लगता था। "आर्सेनी रोमानोविच की लाइब्रेरी कोई छोटी-मोटी चीज़ नहीं है। उनको दुख पहुंचा, तो बड़ा पाप होगा।"

"अभी जाता हूं," इज़्वेकोव उठ खड़ा हुआ, "कई दिनों से सोच रहा हूं, जाकर देखूं कि ये किताबों के कद्रदान क्या करते हैं। तुम फ़िक्र मत करो।"

उसने बिस्तर पर झुककर रागोज़िन का हाथ अपने हाथ में लिया। प्योत्र पेत्रोविच ने किरील का हाथ पकड़े रखा, मानो जुदाई से पहले कुछ कहने के लिए शब्द ढूंढ़ रहा हो।

"तुम्हें तो बुखार है। बहुत ज़्यादा बातें कर लीं।"

"कोई बात नहीं। आदमी नहाने से तंदुरुस्त होता है, बात करने से नहीं।"

वह अभी भी इज्वेकोव का हाथ नहीं छोड़ रहा था।

"कोई खबर मिलेगी, तो फ़ौरन बताना। ठीक है?"

उसने किरील को अपने पास खींचा।

"एक कामरेड मुझसे मिलने आनेवाला है। मैं उसे तुम्हारे काम का पता लगाने को कहूंगा। वह कर सकता है।"

"मेरा काम?"

"हां, हां। जिसके लिए मेरकोव की बेटी ने तुमसे कहा है।"

सहसा उसके होंठो पर चालाकी भरी मुस्कान दौड़ गई और उसने इज्वेकोव को धकेला।

"तुम भी सनकी ही हो!" किरील हंसा।

"मुझे मेरकोव की फ़िक्र नहीं है! उसके तो दिन बीत गये। बात तो उसकी बेटी की है। उसमें तो शायद भविष्य का कुछ अंश है—तुम्हारे भविष्य का, है?"

"हो ना निरे सनकी," किरील सहसा झेंपते हुए हंसा और दरवाजे की ओर पीछे हटा। "यह तो तुम्हारा कहना ठीक है कि मेरकोव में भविष्य का कुछ नहीं है। पर वर्तमान में वह काम आ सकता है। तुम मानोगे नहीं, मेरकोव ने पोलोतेन्त्सेव की शिनाख्त कर दी थी!"

"उस जल्लाद कर्नल की? सच? और तुमने मुझे बताया तक नहीं! भई, तुम चाहे जो भी कहो यह तो उसने अच्छी सेवा की है!"

"फिर कभी बताऊंगा। जल्दी-जल्दी ठीक हो जाओ।"

"तो तुम सीधे पुरानी चीज़ों के महकमे में जा रहे हो?" किरील जब गलियारे में निकल गया, तो रागोज़िन ने पीछे से चिल्लाकर पूछा।

"हां, सीधे वहीं जा रहा हूं।"

"मेरे लिए कुछ पढ़ने को ले लेना," रागोज़िन ने कहा। "और अपनी वो अन्नमारी के लिए भी चुनना मत भूलना!"

पुरानी चीज़ों का महकमा उस विशाल संगठन का अंग था, जिसका नाम था प्रदेश आर्थिक परिषद और जिसका भीमकाय मस्तिष्क नगर की प्रमुख सड़क पर आधुनिकतम शैली में निर्मित 'अस्तोरिया' होटल में मुश्किल से समाया हुआ था। यह कहना तो शायद सही न होता कि पुरानी चीज़ों के महकमे का महत्व इस मस्तिष्क के गोलार्ध के समान था। लेकिन आकार में वह पूरा गोलार्ध ही था और इसलिए 'अस्तोरिया' में दूसरे विभागों के साथ उसके लिए पर्याप्त स्थान नहीं हो सकता था, सो उसे पास ही की एक अलग इमारत में रखा गया, मानो एक अलग मस्तिष्क के रूप में।

यहां भांति-भांति के लोग मधुमक्खियों की तरह मंडराते रहते थे। परन्तु फिर भी वे पुरानी चीज़ों के महकमे का सारा काम चलाने में असमर्थ थे। महकमे की हर शाखा में अपना, मंडराता कर्मचारी दल था। अंततः, इस ब्रह्मांड की नींव में निहित थीं उत्पादक शक्तियां: साबुन, टोपी, जूते और लिफ़ाफ़े, आदि बनाने के कारीगर। इस भवन के शिखर से नींव की ओर जितना नीचे जाया जाता, मंडराते लोगों के झुंड उतने ही विरले होते जाते। सो जहां साबुन बन रहा होता, या फ़ौजियों की पुरानी वर्दियों से जूतों के साज सिये जा रहे होते, वहां बहुत कम लोग दिखाई देते और बिल्कुल शांति ही होती।

अनेक शाखाओं वाले इस संगठन पर अपने ज़माने के अंतर्विरोधों की स्पष्ट छाप थी।

संगठन का विशाल प्रबन्ध विभाग जिन शाखाओं का संचालन करता था, वे केवल इस लायक थे कि उन्हें चुपके से ठिकाने लगा दिया जाये। इन धंधों में बाबा आदम के ज़माने के औज़ारों से ही काम चलता था और इनके बदले जाने की किसी को रत्ती भर भी उम्मीद न थी। टोपी बनानेवाला सुई, कैंची और इस्तरी से काम चलाता था। बढ़ई कुल्हाड़ी और आरी से। सच कहा जाये तो कबाड़ में फेंके गये ओवरकोट से टोपी बनाने, या चीड़ के गीले लट्ठे से स्टूल अथवा ताबूत बनाने के लिए किसी और चीज़ की ज़रूरत ही क्या थी? आधुनिक शैली के होटल के कमरों में मंडरानेवाले लोगों में से कोई भी इन धंधों का मशीनीकरण करने के लिए दिमाग लड़ाने का इरादा नहीं रखता था।

हालांकि इन धंधों को चुपके से ठिकाने लगा देना ही ठीक होता, पर अभी इसका वक्त नहीं आया था। उनका काम भले ही बिल्कुल मामूली सा था, पर उसके बिना भी गुज़र नहीं थी। उन दिनों आर्थिक तबाहहाली इस हद तक पहुंच गई थी कि इसे खुले आम क्रांति के लिए एक सबसे बड़ा खतरा माना गया था। साबुन का टुकड़ा, कागज़ की कतरन, हफ़्ते भर भी चल सकनेवाला तलवा या आदमी के फटे-पुराने कपड़ों को शरीर पर टिकाये रख सकनेवाला बटन – यह सब बेशकीमती हो गया था।

सम्भवतया यही कारण था कि पुरानी चीज़ों के महकमे के धंधों में बाबा आदम के जमाने के तौर-तरीकों के बावजूद, इनके माल की इतनी मांग थी, और इतनी बड़ी संख्या में लोग इनके इर्द-गिर्द मंडराते हुए इनके प्राणों की बुझती लौ को जलाये रखने की, इनके अवश्यम्भावी अंत को टालने की कोशिशें कर रहे थे।

इज्वेकोव तुरन्त ही यह पता नहीं लगा पाया कि लिफ़ाफ़े बनाने का धंधा कहां होता है। पुरानी चीज़ों के महकमे ने अपने गोदामों और खातों के लिए वोल्गा से मठ के मोहल्ले तक के इलाके में कई कोठरियां, पुराने गोदाम और तहखाने ले रखे थे। इज्वेकोव को यह पता चलाना था कि पारावुकिन कहां बैठता है, और वह कोई इतनी मशहूर हस्ती था नहीं कि महकमे का हर क्लर्क उसे जानता होता।

पारावुकिन दो बड़े कमरों के बीच पार्टीशन से बनी कोठरी में बैठा था। इन कमरों में से एक अखबारों की रद्दी के लिए था और दूसरे में वे किताबें थीं, जो अभी छांटी नहीं गई थीं। दीवार में बना छेद पहले कमरे को लिफ़ाफ़ों की कोठरी से जोड़ता था।

कागज़ों के ढेरों पर आती-जाती मानव परछाइयां पड़ रही थीं। सन्नाटे में कभी-कभी हवा में फड़फड़ाते कागज़ों की आवाज़ आती। हवा के झोंके ताज़ी लेई, फफूंददार चमड़े और नम कपड़े की मिली-जुली गंध, जो छप्पर में सड़ते पानी की गंध जैसी लगती थी, दरवाज़ों से खिड़की में ले जा रहे थे।

सेफ़ोदी सीलिच न जाने कैसी बोतल कहीं से लाया था, उसे खाली करके पारावुकिन ने अपना मग मेज़ के दराज़ में सरका दिया और अपने दोस्त की बातें सुनने लगा।

"तू मुझे क्या त्स्वेतुख़िन की बता रहा है! वह तो मेरे लिए जुड़वें भाई से बढ़कर है। मैं तो उसे अपने से भी ज़्यादा अच्छी तरह जानता हूं," मेफ़ोदी कह रहा था। "दुखियारा है वह, मेरे जैसे ही। पर मन ही मन घुलता है। अहंकार का मारा गर्दन नहीं झुका सकता। मेधा उसमें है, पर फूटी नहीं। खोल पर चोंच मारती रहती है, पर उसे तोड़ नहीं पाती। बस इसी से उसका मन रोता है। मैं उसके सामने क्या हूं?—कुछ भी नहीं। हालांकि मैं भी एक्टर हूं, बेशक एक्टर हूं।"

"खोल में बंद!" पाराबुकिन ने अपनी ओर से जोड़ा।

"मानता हूं। विनम्रता से स्वीकार करता हूं, क्योंकि मुझे कोई अहं नहीं है, मैं तो बस एक तुच्छ जीव हूं। मेरा मन इतना नहीं कलपता। वह मेधावी है, उसे ज़्यादा पीड़ा होती है। पर उसे अड़चन किस बात की है? दिखावा है! बड़े सिद्धांत मानने का दिखावा करता है। अरे भई, एक्टर के कैसे सिद्धांत? अभिनय अच्छा कर दिया—बस यही सिद्धांत हुआ। नहीं कर पाये, तो कैसा सिद्धांत? हमारे यहां एक एक्टर था, ट्रेजडी खेलता था, शैतान का भी बाप था, कोई सिद्धांत-विद्धांत नहीं मानता था, पर सारा हॉल सुबकियां भरता था। हमारा पेशा भावनाओं के ज़ोर से चलता है। पर येगोर सब कुछ समझना चाहता है।"

"मेरी आनोच्का को ले डूबेगा," पाराबुकिन ने दुखभरी उसांस छोड़ी।

"किसकी बात कर रहा है तू?" मेफ़ोदी ने बुरा मानते हुए कहा। "हैमलेट की बात कर रहा है तू, पिद्दी कहीं का! वह भला डोरे डालेगा?! अरे, वह तो एक्टरों से यही मांग करता है कि उनके मन में कोई छल-कपट न हो। अपने शिष्यों को सदा यही सिखाता है कि उनकी आत्मा निर्मल हो, जैसे सोते का जल! मैं दो हफ़्ते तक उसके पांवों में लोटता रहा, तब कहीं उसने मुझे अपने स्टूडियो में लिया। कहता था, आदमी में प्रतिभा है, तो उसके लिए दो नियमों का पालन अनिवार्य है: सफ़ाई से रहे और नशा न करे। कहता था, जो अपनी प्रतिभा नशे में डुबोता है, वह चोर है। वह लोगों से वह चीज़ चुराता है, जो प्रकृति ने उन्हें दी है, क्योंकि प्रकृति किसी एक आदमी को

प्रतिभा देनी है, पर सबके हित के लिए। अगर प्रतिभा पियक्कड़ों को न मिलती, तो लोग सौ गुना ज़्यादा सुखी होते। कहता था पीना छोड़ दो, तो ठीक है, आ जाओ हमारे साथ काम करो। नहीं तो जाओ भाड़ में। कहता था मैं नौजवान लड़के-लड़कियों को सिखाता हूं, उनकी जिम्मेवारी मुझ पर है।"

"खुद क्या वह टूंटी को माथा टेकता है?"

"यही तो बात है! मैं उसके पैरों में लोट रहा था, पर जवाब भी मैंने दे दिया, बोला, येगोर, तुमने मेरे साथ क्या कम पी है, जो मुझे यों लताड़ रहे हो! और वह बोला: त्स्वेतुख़िन कोई पियक्कड़ नहीं है। कहता था, अगर मैं पीता भी हूं, तो खुशी के लिए पीता हूं, दावत उड़ाता हूं, मस्ती लेता हूं। और हमेशा यह याद रखता हूं कि यह तो बस हंसी-मजाक के लिए है, मज़ा लेने के लिए है। बेलगाम होकर गम के मारे पीना तो व्यभिचार की अति है। और बस उबल पड़ा! कहने लगा, यह सब अपने आप को जाने कहां का खुदा समझने का नतीजा है। सब पियक्कड़ अपने आप को पता नहीं क्या समझते हैं। सीधे-सादे ढंग से बात भी नहीं कर सकते। कुछ कहेंगे भी तो यही सोचकर कि कैसे दूसरों को अचम्भे में डालें। मेधावी बनते फिरते हैं। कहता था, यह तो कला की हेठी है। देखा तूने – किधर ले गया बात?"

"अच्छी खबर ली तेरी।"

"मेरी क्यों?" मेफ़ोदी फिर से बुरा मान गया। "मैं तो सीधा-सादा आदमी हूं, खाली बोतल ही समझो, जिसे भरना है। किसी हुनर-बुनर का मैं दावा नहीं करता। मैं तो बस एक मामूली सर्वहारा की भांति पी लेता हूं।"

"तू सर्वहारा है? वाह रे, मेफ़ोदी गुरु!"

"और नहीं तो क्या? मैं ही निर्धन रूस हूं! समझा?! मेरे जैसों पर देश टिका हुआ है! कैरिएटिड* हूं मैं!"

"कैरि-ए-टिड!" पारावुकिन ने चिढ़ाते हुए कहा।

पर तभी उसका चेहरा लटक गया, उसने जल्दी-जल्दी अपने बालों में हाथ फेरा और उठने की कोशिश करने लगा।

---

* इमारतों में नारी आकृति के रूप में बनाया जानेवाला स्तम्भ। –सं०

"कहां है इस खज़ाने का मालिक?" प्लाईवुड का दरवाज़ा खोलकर कोठरी में झांकते हुए इज़्वेकोव ने ज़ोर से पूछा।

"कामरेड सेक्रेटरी," पाराबुकिन बोला, और फिर उसने अपना छोटा कुर्ता झटका, फिर दाढ़ी, मूंछों पर हाथ फेरा, फिर वह खंखारा; उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि ऐसी अप्रत्याशित स्थिति में और क्या करे।

"कई दिनों से आपका इंतज़ार था," उसने कहा। "यह है मेफ़ोदी सीलिच, त्स्वेतुखिन के स्टूडियो में काम करता है, थियेटर में मेरी बेटी का सहकर्मी। कैरिऐटिड!"

"यह क्या... कुलनाम है?" इज़्वेकोव ने चौंककर सख्ती से पूछा।

"नहीं, रूपक के अर्थ में ही समझिये," मेफ़ोदी ने शान से सिर झुकाते हुए कहा।

"आप क्या कुछ खा-पी रहे थे?" अनबूझ सी गंध पाकर वह एक कदम पीछे हट गया (मेफ़ोदी की टूटी हुई सुकराती नाक पर गौर से नज़र डालकर उसने सोचा: यह तो पाराबुकिन से भी बढ़कर है)।

"बस यों ही काम के बीच पल भर को आराम करने के तौर पर," पाराबुकिन ने समझाने की जल्दी की। "कोई खास चीज़ नहीं। आजकल कोई बढ़िया माल मिलता ही कहां है।"

"यह बताइये, दोरोगोमीलोव की किताबों का आप क्या कर रहे हैं?"

पाराबुकिन खुश था कि एक नाज़ुक मसला टल गया, पर डर भी रहा था कि दूसरा नाज़ुक मसला न उठ खड़ा हो, वैसे इस बीच वह संभल गया और उसने मेहमान को किसी पुराने वेनिसी फ़र्नीचर सेट की खस्ताहाल कुर्सी पेश की।

"बड़ी मेहरबानी आपकी, हमारे इस कबाड़खाने में तशरीफ़ लाये।"

"ज़रा दिखाइये कि दोरोगोमीलोव की किताबों में से कौन सी यहां आई हैं।"

"मेरे पाब्लिक ने शिकायत की है न? यह सब छोकरे के दिमाग की उपज है, अपनी अक्ल से ज़्यादा समझने की कोशिश करता है।"

"अच्छा, यह बताइये किताबें कहां हैं, मैं देखना चाहता हूं।"

विशाल कमरे में जहां-तहां रद्दी के ऊंचे-नीचे ढेर लगे हुए थे और इनके बीच गलियां-कूचे बन गये थे, जिनके पीछे से एक नज़र में पूरा कमरा दिखाई ही नही देता था। वे दोनों इन गलियों-कूचों में से जा रहे थे। पारावुकिन रास्ता दिखाता हुआ लगातार बोलता जा रहा था

"दोरोगोमीलोव से हमें कुछ नही मिला है। हमें तो सब कुछ लैब्रेरी से मिला है, जहां उसने अपनी सारी किताबें दी थी। किताबों में रद्दी ज्यादा निकली, सो वह सब लैब्रेरी ने यहां भेज दी। मैगजीनें, अखबार, बही-खाते वगैरह हैं। रद्दी बुरी नहीं है। कुछ किराने के लिए लिफाफ़े बनाने के काम आयेगी, कुछ जो मोटे कागज हैं उनसे दफ़्तरों के काम के लिए बड़े लिफ़ाफ़े बन सकते हैं। यह देखिये यह दोरोगोमीलोव की रद्दी की ढेरी है। पाब्लिक इसे उलटता-पुलटता रहा है, पता नहीं कमबख्त क्या ढूंढता रहा है।"

किरील ने ऊपर-ऊपर पड़ा एक रजिस्टर उठा लिया। यह नगर की प्रबन्ध कमेटी की कोई बीस साल पुरानी छपी हुई रिपोर्ट थी।

"क्या कागज लगाते थे! हावर्ड का कागज!" पारावुकिन ने चिकने से मोटे कागज को उंगलियों के बीच रगड़ते और आंखें भींचते हुए कहा!

किरील ने एक दूसरा रजिस्टर उठाया। इसमें नगर थियेटर समिति की रिपोर्ट थी और थियेटर से हुई आय तथा उस पर किये गये व्यय का हिसाब-किताब। जिस वर्ष की यह रिपोर्ट थी, वह किरील को अच्छी तरह याद था: उस साल किरील आखिरी बार इस थियेटर में गया था, लीजा के साथ, और उस शो से अगले दिन सुबह ही, जबकि उसके मन में अभी बगल की कुर्सी पर बैठी लीज़ा की निकटता की छाप मिटी भी न थी, उसे जेल के अहाते में ले जाया गया था।

अनचाहे ही उसकी उंगलियां रजिस्टर के पन्ने पलट रही थीं। फिर वे रुक गईं। वह तुरन्त ही यह समझ भी नहीं पाया कि किस बात पर उसका ध्यान टिक गया है। वह पन्ने के अंत में छपी टिप्पणी पढ़ रहा था, जिसमें कहा गया था कि थियेटर का मैनेजर त्स्वेतुखिन

के हितार्थ शो की आय का एक भाग नगर कमेटी द्वारा हस्तगत कर लिये जाने पर आपत्ति करता है। त्स्वेतुखिन का नाम बड़े-बड़े अक्षरों में छपा हुआ था।

किरील ने रजिस्टर परे फेंक दिया।

"किताबें कहां हैं, किताबें?" उसने ज़ोर देकर पूछा।

"किताबें बिल्कुल अलग रखी हैं। यह समझिये कि खजाने में हैं। चलिये, इधर हैं।"

वे बगल के कमरे में चले गये। यहां छत तक किताबों के ढेर लगे हुए थे, ये विचित्र ढेर चोटियों, दर्रों और टूटी ढलानों वाली पर्वत-शृंखला जैसे लगते थे।

किरील ने धीरे-धीरे इन ढेरों पर नज़र दौड़ाई। यह रहा जीवन, सम्मान, यश – उसे वयोवृद्ध पुस्तकप्रेमी के शब्द याद हो आये – अथाह सम्पदा, असीम हर्ष, मानवजाति का सशक्त प्रेम!

फ़र्श पर पड़ा एक मोटा सा ग्रंथ पाराबुकिन का संतुलन बिगाड़ रहा था, उसे एड़ी से परे खिसकाते हुए वह बुदबुदा रहा था:

"यहां किताबों पर वैज्ञानिक ढंग से काम होता है, अध्ययन, छंटाई-बंटाई।"

"हुं!"

"और नहीं तो क्या! विद्वान यह तय करते हैं कि कौन सी किताब काम की है और कौन सी रद्दी। इधर देखिये। इस दीवार के पास धार्मिक ग्रंथ हैं – यूनानी आर्थोडोक्स, रोमन कैथोलिक, जर्मन लूथरी पंथों के। खूब मोटी जिल्दें हैं।"

"वह जो आपके साथ गला तर कर रहा था, वह भी कोई विद्वान ही है?"

"नहीं, वह मेरा दोस्त है। वैसे पढ़ा-लिखा आदमी है, धर्म विरोधी है, लैटिन जानता है। कला का जानकार है, क्योंकि खुद एक्टर है। पर कला की किताबें छांटने के लिए हमारे पास बड़े-बड़े विद्वानों को भेजा जाता है। एक को अपनी ही किताब यहां मिल गई। नाम है 'प्रकाश-छाया-चित्रण क्या है?' पढ़ी है? थियेटर की किताबें खुद त्स्वेतुखिन छांटते हैं।"

इज़्वेकोव ने जल्दी से उसे टोका:

"मैं यह जानना चाहता हूं कि दोरोगोमीलोव की किताबें कहां है?"

"उधर दरवाजे के पास ही। कोई आधा छकड़ा होगा, ज़्यादा नहीं। बेकार सी किताबें है। जिल्दों के बिना।"

"मुझे अकेला रहने दीजिये।"

"अच्छी बात है," पाराबुकिन खुश हो गया। "आप छांट लीजिये, जो पसन्द आता है। बहुत से लोग खुश होकर गये हैं।"

किरील अकेला रह गया। कभी-कभार खिड़की में से सड़क की आवाज़ें आती, हवा के हल्के झोंकों से कभी खुली किताबों के पन्ने फड़फड़ा उठते। ढेर में से एक किताब निकालने से दूसरी किताबें भी खिसक जाती और नीचे गिरने लगतीं। इन असम्बद्ध और मानो विचार-मग्न सी ध्वनियों से वह खामोशी का वातावरण बन रहा था, जिसमें एकान्त इतना अच्छा लगता है।

किरील फ़र्श से किताब उठाने को झुका, पंजों के बल बैठा और वहीं बैठा रह गया – कभी किताब के पन्ने पलटता, कभी एक किताब रखकर दूसरी उठा लेता।

यहां ला फेंकी गई किताबों को देखकर अगर दोरोगोमीलोव के व्यक्तित्व का अनुमान लगाया जाता, तो वह सचमुच ही अनबूझ व्यक्ति था। दसियों बरसों के दौरान उसके पास किताबें जमा होती रही थीं और इन बरसों में लगता था उसने कई विषयों में रुचि ली थी, घड़ीसाज के पेशे और फ़ोटोग्राफ़ी से लेकर दर्शन के इतिहास और जलपोत निर्माण तक। यहां बौद्ध धर्म पर पुस्तकें थीं, घर पर व्यायाम की, फलों को टीनबंद करने की, रूसी सम्प्रदायों और मत्स्य पालन के बारे में भी। छोटी-छोटी नावों के बीच तैरते बजरे की भांति सस्ती किताबों के बीच संख्या सिद्धांत का मोटा ग्रंथ भी था। कैज़ानोवा के कारनामों का जर्मन अनुवाद भी पास ही पड़ा हुआ था और जर्मन होफ़मान की रचना का फ्रांसीसी अनुवाद गवार्नी के उत्कीर्णन चित्रों के साथ, और 'दोन किहोत' का पहला रूसी अनुवाद।

इस सारी खिचड़ी के मालिक ने हर किताब के मुखपृष्ठ पर स्याही से अपना नाम और वह तारीख लिखी थी, जब किताब खरीदी गई थी (शायद कबाड़ी बाजार में)। किरील के लिए वह एक रहस्यमयी और अप्रिय जीव ही था, जिसे कुछ बच्चे 'झबरा' कहते थे, और

जिसे रास्ते में देखकर किरील बचपन में सड़क पार कर लिया करता था। इस जीव से किरील के पिता की दोस्ती कैसे हो सकती थी? हो सकता है दोरोगोमीलोव की ये अजीबोगरीब रुचियां मात्र संयोग ही हों, जो जीवन में ऐसे जमा होते रहते हैं, जैसे जहाज़ की तली पर सीपियां, आदि? अगर पानी में से तली को देखा जाये, तो जहाज़ भी अजीब ही लगेगा। वैसे सोचा जाये तो उस आदमी में क्या खास बात हो सकती है, जिसे हर छोटी-मोटी किताब पर अपना नाम लिखकर संतोष होता हो? जिस पुस्तकप्रेमी ने कभी इज़्वेकोव के मन में पठन-पाठन के प्रति अनुराग जगाया था, उसने एक बार कहा था: आदमी को अपना नाम केवल उस पुस्तक पर लिखने का अधिकार है, जो उसने खुद लिखी हो।

किरील ने ढेर में से सोलोव्योव द्वारा लिखित 'रूस के इतिहास' का मोटा सा खण्ड उठाया और पन्ने थोड़े मोड़कर अंगूठे तले से उन्हें छोड़ा, मानो किताब खरीदते हुए कोई ग्राहक यह देख रहा हो कि पन्ने सही-सलामत हैं या नहीं। हाशियों पर पेंसिल के निशान दिखे। किरील ने पन्ने उलटे-पलटे और वह पन्ना ढूंढ़ा, जहां कुछ पंक्तियों तले गाढ़ी पेंसिल फिरी हुई थी। यह पुगाच्योव के उस हुक्मनामे की पंक्तियां थीं, जिसमें उसने अपने अनुयायियों को खेत और मैदान, नदियां और समुद्र, धन और रसद, सीसा और बारूद तथा चिर स्वतंत्रता देने का ऐलान किया था। हाशिये पर किसी ने लिखा था: "ऐसा होकर रहेगा।"

किसी ने उदार और उन्मुक्त हृदय से निकले इन शब्दों की भव्यता पर मनन किया था, कोई चाहता था कि जो कोई भी ये शब्द पढ़े, वह इन पर विचार करे, किसी को आशा थी कि यह बात सच होकर रहेगी। क्या यह दोरोगोमीलोव ही था?

किरील ने यह खण्ड एक ओर रख दिया। क्षण भर बाद ही उसने तोलस्तोय की रचनाओं का भी एक खण्ड वहां रखा, जिस पर ज़ारशाही रूस में प्रतिबंध लगाया गया था। थोड़ी देर बाद दोरोगोमीलोव की किताबें उलटना-पुलटना छोड़कर वह दूसरी किताबों की ओर बढ़ा।

उसे श्चेद्रिन की 'प्रदेश के शब्दचित्र' मिली। यह बढ़िया किताब दरियां, कालीन बुनने की किताबों के साथ ही पड़ी हुई थी। फिर

इब्सन के नाटक उसके हाथ लगे (सिर्फ़ दो खण्ड थे – संग्रह पूरा नहीं था)। इन्हें भी उसने अपनी ढेरी में जोड़ लिया। पहाड़ों के तंग दर्रों में आगे बढ़ते हुए उसे फ़र्श पर लोम्ब्रोज़ो की किताब मिली – कोनों से फटी हुई, खस्ताहाल। मेधा और पागलपन के विषय पर इस पुस्तक की आलोचकों ने धज्जियां उड़ाई थीं, किरील यह जानता था, पर उसने पुस्तक पढ़ी नहीं थी। जिस चीज़ की बुराई हुई थी, उसे पढ़ने में भी कोई हर्ज तो नहीं है। उसकी नज़र एक पुरानी सी जिल्द पर पड़ी, जिस पर लेखक का नाम था – बेल्तोव। वह आगे बढ़ गया, पर फिर लौटा और किताब का शीर्षक पढ़ा – 'इतिहास के अद्वैतवादी दृष्टिकोण का विकास'। अरे, यह तो प्लेख़ानोव है। पच्चीस साल पुरानी किताब। शायद यह किताब पहले ही किसी ने छांटी थी, वह बिल्कुल सामने ही रखी हुई थी। पर प्लेख़ानोव की तो इज़्वेकोव को हर हालत में जरूरत थी। यह लोम्ब्रोज़ो नहीं।

सहसा उसे शेक्सपियर की चार जिल्दें दिखीं, बिल्कुल एक जैसी शानदार जिल्दें – काले चमड़े पर सुनहरे अक्षर! उसने पहले कभी भी ऐसी जिल्दें नहीं देखी थीं। उसने जिल्द पलटी, अंदर का कागज रेशम सा चिकना और मुलायम था, फूलों और पंछियों से सजा हुआ, जो न नीले थे और न भूरे, बल्कि नीले और भूरे दोनों ही। फूलों और पंछियों के बीच रुपहला तार बेल सा लहराता चला गया था। रेशमी कागज को हाथ लगाते ही उसने सोचा: "ये आनोच्का के लिए अच्छी रहेंगी।" "आनोच्का मुझ से पढ़ने के लिए ले सकती है," तभी एक दूसरा विचार आप से आप मन में उठा।

निश्चय ही ये किताबें पहले से किसी ने अलग कर रखी थीं। वे सलीके से दूसरे सुंदर प्रकाशनों के साथ रखी हुई थीं। पर आखिर कौन यहां किताबें चुन सकता था? कौन यहां विशेषज्ञों को, छंटनी करनेवालों को, विद्वानों को नियुक्त करता था? बेशक किरील को भी किताबें चुनने का उतना ही हक था जितना उन्हें। खैर जो भी हो, अभी तो वह शेक्सपियर को अपनी चुनी किताबों के साथ रखेगा।

वह जल्दी करने लगा। किताबें बहुत ज्यादा थीं, हर किताब को देर तक देखने का अर्थ होना कुछ भी न छांट पाना। वह अपनी अल्-

मारियों की अच्छी तरह कल्पना कर रहा था, जब उन पर किताबें लग जायेंगी, तो वे कैसी लगेंगी। यह बात बहुत मानी रखती है कि वह अपना भावी संग्रह निश्चित प्रणाली के आधार पर बनाये। उसे सर्वप्रथम अपने पुस्तक संग्रह के प्रमुख भागों को पूरा करना चाहिए। पर वह तो अपनी मर्ज़ी से किताबें नहीं चुन रहा, बल्कि इस भूलभुलैयां में भटक ही रहा है और यहां जो है उसमें से सबसे अच्छी किताबें लेता जा रहा है। अभी तो उसे इसी पर संतोष करना होगा, जो सब यहां छोड़ते हुए दुख होता है, वह ले लेना चाहिए। "धत् तेरे की, मैं भी दोरोगोमीलोव जैसा हूं," उसे विचार आया। पर तभी एक दूसरे विचार ने उसे शांत किया: "जो फ़ालतू होगा, बाद में फेंक दूंगा।"

वह लालची हो गया। वह अपनी ढेरी में किताबें जोड़ता ही जा रहा था। अनचाहे ही उसका मस्तिष्क इस ढेरी को "मेरी किताबें" कह रहा था। मन ही मन वह कहता जाता: "यह किताब मां के लिए रोचक होगी, शिक्षा पर है।" या: "यह मैं रागोज़िन को पढ़ने के लिए दूंगा।"

झुटपुटा हो रहा था। वह किताबें आंखों के बिल्कुल पास लाकर उनके शीर्षक पढ़ रहा था। वह बिल्कुल अकेला था। इस सारे समय में एक बार भी कोई अंदर नहीं आया था। यह पूर्ण आत्म-विस्मृति थी। वह इन पहाड़ों को खोदता जा रहा था, उनमें सुरंगें बनाता जा रहा था: वहां गहराई में कोई मनचाही किताब छिपी हो सकती थी! चुनी हुई किताबों के गट्ठर तले हाथ डालकर और ऊपर से उसे ठोड़ी से दबाकर थकावट से लड़खड़ाता हुआ वह अपनी ढेरी के पास जाता, जो बढ़ती ही जा रही थी। फिर वहां जाता, जहां अभी तक नहीं गया था, वे किताबें देखता, जो अभी तक नहीं देखी थीं, और फिर से ढेरियां उलटता-पुलटता, एक जगह से दूसरी जगह जाता, किताबों के टीलों पर चढ़ता, उनकी ढलानों से उतरता। उसके हाथ धूल से चिकने हो गये थे। इस महीन, मीठी धूल से गले में खराश हो रही थी और वह खांस रहा था।

आखिर टीले और पहाड़ियां सब एक ढेर में मिल गये, पढ़ना असम्भव हो गया, केवल खिड़कियों में ही मंद-मंद उजाला शेष रह गया।

किरील ने अपने हाथ और कपड़े झाड़े, और अपनी सम्पदा के पास गया। उसे देखकर वह दंग रह गया: "हे भगवान! यह सब कैसे ले जाऊंगा! रेड़ा करना होगा।" वह क्षण भर को वहीं खड़ा रहा, मानो यह सोचते हुए कि आखिर यह सब हुआ कैसे? ये कैसी किताबें उसने जमा कर ली हैं? उसे लगा उसका सिर चकरा रहा है और वह एक ओर को गिरा पड़ रहा है।

सहसा खिड़की में से मार्चगान के स्वर आये। सड़क पर बूटों की ताल के साथ कर्कश स्वर अधिकाधिक जोर से गूंज रहे थे:

निडर होकर
हम लड़ेंगे,
सोवियत की
रक्षा करेंगे...

किरील ने बाजू से माथा पोंछा। उसे सचमुच ही चक्कर आया और सारे शरीर में झुरझुरी दौड़ गई।

दोनों हाथ दरवाज़े पर मारकर उसने दरवाजा खोला, पारावुकिन गिरते-गिरते बचा और सहमकर पीछे हट गया।

पारावुकिन सिर के पास छोटी सी ढिबरी उठाये खड़ा था। ढिबरी की लौ में उसके बाल और दाढ़ी सुनहरी लग रहे थे।

"मैं आपके लिये दिया ला रहा था। अंधेरा हो गया। मिली कुछ काम की चीज?"

"नहीं," किरील ने कहा। "फिर कभी। नमस्ते।"

"अगर आप चाहें तो हम किताबें भेज देंगे। बस पता बता दीजिये।"

"नहीं, कोई जरूरत नहीं। नमस्ते," किरील ने एक बार फिर कहा और रास्ते में बिखरी पड़ी रद्दी के ऊपर प्रायः दौड़ता हुआ बाहर को चला।

३२

कला के क्षेत्र में ऐसी समस्याएं हैं, जो केवल इसलिए हल कर ली गई प्रतीत होती हैं, कि परिपक्व कलाकार उनके आदी हो गये हैं

और यह मानते हैं कि उनका समाधान ढूंढ़ा जा चुका है। यदि कोई युवा कलाकार ऐसी समस्या परिपक्व कलाकार के सामने रखता है, तो उसे उत्तर में इसका समाधान नहीं, बल्कि उस अनुभव का हवाला मिलता है, जो परिपक्वता के साथ आता है। अनुभव समाधान का स्थान लेता है, क्योंकि यह समाधान किसी शाश्वत नियम के रूप में विद्यमान नहीं होता है, बल्कि हर कलाकार अपने लिए, अपने समय के लिए यह समाधान ढूंढ़ता है।

रंगमंच पर कदम रखते ही आनोच्का पाराबुकिना ने अपने आप को दसियों प्रश्नों से घिरा पाया, जैसे कि जंगल में घुसा व्यक्ति अपने आप को पेड़ों से घिरा पाता है। उसके सामने जो अनगिनत अनबूझ पहेलियां और अस्पष्ट बातें थीं, उनमें एक प्रश्न उसे असाधारणतया महत्वपूर्ण लगता था और उसका उत्तर पाने में वह देरी नहीं कर सकती थी।

प्रश्न यह था कि अपने आप से भिन्न व्यक्ति की भूमिका अदा करने के लिए अभिनेता कौन से साधन इस्तेमाल करे, कहां ये साधन पाये?

यदि आनोच्का पाराबुकिना को आनोच्का पाराबुकिना की ही भूमिका अदा करनी होती, तो समस्या सहज ही हल हो जाती: आनोच्का को बस जीवन में से रंगमंच पर उतर आना होता।

परन्तु आनोच्का को तो 'छल और प्रेम' की लुईज़ा की भूमिका अदा करनी थी। आनोच्का ने कभी लुईज़ा को नहीं देखा था। नहीं, जब वह बिल्कुल बच्ची ही थी, तब एक बार नगर के सिरे पर स्थित सेर्वियै पार्क थियेटर में उसने लुईज़ा को देखा था। लेकिन यह तो किसी अभिनेत्री द्वारा पेश की गई लुईज़ा थी। १८वीं सदी में किसी जर्मन रियासत में जो लुईज़ा मिल्लर कभी थी, उसे तो आनोच्का नहीं जान सकती थी।

ऐसा क्यों कहा जाता है कि थियेटर जीवन का दर्पण है? कैसे जीवन का? उस जीवन का जिसे किसी ने नहीं देखा है? आनोच्का को कैसे अभिनय करना चाहिए? सेर्वियै पार्क की उस अभिनेत्री की भांति?

जब आनोच्का ने ये सब बातें त्स्वेतुख़िन से पूछीं, तो उसने पल भर भी सोचे बिना जवाब दिया:

"तुम ही लुईजा हो! अपने आप को ही मंच पर पेश करो!"

"कैसे?" आनोच्का ने गम्भीरतापूर्वक पूछा, "यह कैसे हो सकता है। मैं घुटनों तक की स्कर्ट पहनती हूं, लम्बे-लम्बे कदम भरती चलती हूं। और लुईजा तो टखनों तक की बहुत बड़े घेरे वाली स्कर्ट पहनती थी।"

"जब तुम ऐसी स्कर्ट पहन लोगी, तो सब ठीक हो जायेगा। बस यह याद रखो कि तुम्ही लुईज़ा हो।"

"और हाथ-पांव? क्या लुईज़ा के हाथ-पांव इतने बड़े हो सकते थे?"

"हां, इतने ही बड़े थे। इनके बारे में मत सोचो। यह सोचो कि तुम फर्दीनांद को प्यार करती हो, कि तुम मेरे... यानी फ़र्दीनांद के साथ सुखी हो सकती थी, पर मैंने... यानी फ़र्दीनांद ने तुम्हें दुखी बना दिया। मेरे प्रति अपनी भावना के बारे में सोचो।"

"मैं तो सोचती ही रहती हू! आप भी कुछ सोचिये न!"

"ओहो!" त्स्वेतुखिन ने मुस्कराते हुए उसे जताया कि ऐसी कमनीय युवती को भी यह नही भूलना चाहिए कि वह शिष्या ही है।

वह सकपका गई, लेकिन यह समस्या हल करने की उसकी इच्छा इतनी उत्कट थी कि उसने हाथ जोड़कर पूछा:

"मेरी समझ में नहीं आता, तो इसमें मेरा क्या कसूर है! लुईज़ा को अपनी स्थिति में कोई रास्ता ही नज़र नहीं आता, लेकिन मैं आसानी से रास्ता ढूंढ़ लेती। सो, वह मेरे जैसी नहीं है।"

"बहुत खूब! तुम बिल्कुल लुईज़ा जैसी ही हो। वह भी बिल्कुल ऐसे ही फ़र्दीनांद के आगे हाथ जोड़ती है! बस, यह याद रख लो!"

"पर मैं कभी उसके पांव न पड़ती! कभी नहीं! मैं उसे जाने देती। जाये!.. आखिर मेरे पास ही लौटकर आयेगा," हठधर्मी के साथ उसने कहा।

त्स्वेतुखिन भाव विभोर हो उठे प्रशंसक की विमुग्ध नज़रों से उसकी ओर देख रहा था।

"अच्छा, सुनो। तुमने खुद जीवन में जो महसूस किया है, उसका एक अंश ही लुईजा में पाने की कोशिश करो।"

"पर अगर उसमें ऐसा कुछ भी नहीं है, जो मेरी भावनाओं से मिलता-जुलता हो, तो?"

"अच्छी वात है। यह मत सोचो कि उसमें तुम्हारे जैसा क्या है। यह देखो कि तुममें उसके जैसा क्या है। उससे मिलता-जुलता कोई लक्षण।"

साथ ही उसने मन ही मन अपने आप से पूछा: "यह लुईज़ा की निराशा कैसे समझ सकती है, जवकि इसने स्वयं कभी प्यार नहीं किया है, निराशा अनुभव नहीं की है?"

"और फिर", त्स्वेतुख़िन ने कहा, "किसी पात्र का जीवन जीना कुछ हद तक अभ्यास की वात है।"

उनकी यह वातचीत अकेले में हो रही थी – जिस क्लव में थियेटर स्टूडियो काम करता था, वहीं पर रिहर्सल के वाद। वे दोनों धूल भरे हॉल की खिड़की के पास खड़े थे, हॉल में दीवार के साथ-साथ कुर्सियां उल्टा कर रखी हुई थीं।

"अच्छा, अभी तुम्हें समझाता हूं यह वात। तुम कहो तो अभी मैं रो पड़ता हूं", त्स्वेतुख़िन ने मुस्कराते हुए कहा।

उसने खिड़की के बाहर नज़र डाली। बूंदावांदी हो रही थी। खड़ंजों की सड़क कीचड़ से चमक रही थी। रेड़ेवाला अपने कफ़्तान के पल्ले कमरबंद में ठूंसे, लगाम के सिरों से मरियल घोड़ी को मार रहा था। घोड़ी के लिए बोझा वहुत भारी था। गोल खड़ंजों पर उसके नाल फिसल-फिसल जाते थे। घोड़ी लड़खड़ाती और अपनी लंवी गर्दन पर थूथना ऊपर को झटकती।

आनोच्का ने देखा कि त्स्वेतुख़िन की काली-काली आंखें धीरे-धीरे वड़ी हो गईं और चमकने लगीं, मानो किसी ने पुतलियों पर लुक की कूंची फेर दी हो। फिर ऊपर की पलकें फड़फड़ाईं, नीचे की पलकों पर एक नम तार खिंच गया, जो नाक के पास आंखों के कोनों में मोटा होता जा रहा था। यह एक पारदर्शी दाना था, जो बड़ी तेज़ी से बढ़ता जा रहा था और सहसा वाईं आंख में वह पलक से टूटा और पतली सी धार में वल खाता गाल पर वह चला।

सड़क की ओर देखे हुए त्स्वेतुख़िन रो रहा था।

"बस कीजिये!" आनोच्का सहसा चिल्लाई, उसकी अपनी आंखें डबडबा आई थी।

त्स्वेतुखिन ने रूमाल से चेहरा पोंछा।

"अब देखना कैसे मेरा चेहरा फक पड़ता है।"

उसने आनोच्का का हाथ पकड़कर अपनी उंगलियों में दबाया और अपना शरीर एक झटके से उससे परे हटाया। आनोच्का ने उसका लटक गया निचला होंठ और अधखुला, जड़ मुंह देखा। उसके गालों का रंग जाता रहा था, सारे नक्श तीखे और निर्जीव हो गये थे।

आनोच्का ने बड़ी मुश्किल से उसकी उंगलियों में से अपना हाथ छुड़ाया।

अपनी सफलता पर संतुष्ट वह हंसने लगा।

"पता है इसे क्या कहते हैं? एक बार सहे दुख की भावना को, कभी हुए भय के अनुभव को मन में फिर से जिलाना।"

आनोच्का पर लगी उसकी नज़रों में श्रेष्ठता और प्रतीक्षा का भाव था।

"जीवन का अनुभव पाना चाहिए। और फिर मन ही मन इस अनुभव को दोहराना चाहिए। शेष सब तुम्हारा शरीर अपने आप करेगा। बस वह तुम्हारी भावनाओं के प्रति संवेदनशील होना चाहिए, वैसे ही जैसे वादक के हाथों में साज।"

आनोच्का को उसकी आंखों में प्रतीक्षा का भाव अच्छा नहीं लगा।

वह समझती थी कि यह सब इस प्रश्न का उत्तर नहीं है कि लुईजा कैसी थी। लेकिन यह जानकर वह विस्मित हो गई थी कि भावनाओं का भी उंगलियों की ही भांति अभ्यास किया जा सकता है, कि इस "तकनीक" से लोगों में वैसी ही भावनाएं जगाई जा सकती हैं।

आनोच्का ने अपनी इच्छा से आंसू लाने की कोशिश की। एकांत में वह ऐसे क्षण याद करती, जब वह रोई थी। लेकिन जैसे वह पहले रोई थी, वैसे अब नहीं रोना चाहती थी। उसके प्रयासों का कोई फल नहीं निकल रहा था।

पर एक बार रात को उसकी आंख खुली और वह मां के बारे में सोचने लगी। सहसा मां का निष्प्राण हाथ, उस पर पड़ती धूप,

सुइयां चुभने से खुरदुरे पड़े उंगलियों के पोर – यह सब उसके स्मृति पटल पर उभर आया और उसे इन उंगलियों पर अपने गाल के स्पर्श की इतनी स्पष्ट अनुभूति हुई कि हृदय अपने लिए ही अनुकम्पा से भर उठा। उसने देखा कि सिरहाना गीला है, और वह समझ गई कि सपने में रोती रही है। तब वह फिर से अपनी स्मृति में मां का हाथ देखने लगी और फिर से उसकी आंखों में आंसू उमड़ आये। उसने गिलाफ़ से आंखें पोंछीं, थोड़ी देर लेटी रही और फिर किसी बुरे काम की भावना से बोझिल मन लिये सो गई।

सुबह उसने फिर से मां के बारे में, उसके हाथ के बारे में सोचा और फिर से रो पड़ी। वह बेहद शर्मिंदा थी कि मां की स्मृति का ऐसा दुरुपयोग कर रही थी, जानबूझकर यह दोहराते हुए उसे डर लगता था, वह सोचती थी कि यह पाप है लेकिन फिर भी वह दोहराती थी। उसे शर्म आती थी और डर लगता था, पर साथ ही वह खुश भी थी कि हर बार उसकी इच्छा के अनुसार ही होता है: यह याद करती कि कैसे उसने मां का हाथ चूमा था और तुरन्त ही आंखें भर आतीं। ऐसा करते हुए वह मां से इस पाप के लिए क्षमा मांगने लगी और मानो उसे यह विश्वास दिलाने लगी कि आखिर उसके आंसू तो सच्चे ही हैं।

आनोच्का बेचारी करती भी तो क्या करती? – उसके जीवन में मां से विदाई का क्षण ही सबसे अधिक हृदयविदारक क्षण रहा था और इसकी याद से ही किसी भी क्षण उसकी आंखें डबडबा आती थीं। मां की स्मृति से वह अपना अभ्यास कर रही थी, "तकनीक" सीख रही थी, पर यह कला की खातिर था, उस कला की खातिर, जिसे वह पावन समझती थी।

अगर वह अभिनेत्री बनना चाहती थी, तो उसे रंगमंच पर एक ही भावना को सैकड़ों बार दोहराना होगा और वह यह भली भांति समझती थी कि अपनी इच्छा से ही सैकड़ों बार किसी पात्र से प्रेम या घृणा नहीं की जा सकती, जब तक कि प्रेम या घृणा को एक "तकनीकी साधन" में न बदल लिया जाये, इसका अभ्यास न कर लिया जाये। उसे यह अभ्यास करना था और अभी उसे इसका केवल एक रास्ता बताया गया था: वास्तविकता अर्थात जीवन का वह अनुभव

जो उसने स्वय पाया था। वह अभी यह नहीं जानती थी कि अपनी भूमिका के प्रति अभिनेता का प्रेम क्या होता है (उसने केवल एक भूमिका अदा की थी और वह भी केवल एक बार)। वह नहीं जानती थी कि अभिनेता को अगर कोई भूमिका प्रिय हो, तो उससे उसके मन मे अनचाहे ही हजारों बार एक जैसी ही भावनाएं उठ सकती हैं, जो, हो सकता है, उसने अपने जीवन में कभी अनुभव न की हों।

और आनोच्का तो अपने रोम-रोम से अभिनेत्री बनना चाहती थी। वह अपनी कल्पना की उड़ान में यह लंबा रास्ता तय कर चुकी थी, जो शायद रंगमंच के सपने देखनेवाली सभी लड़कियों की कल्पना मे बननेवाले रास्ते से ज़रा भी भिन्न न था। लेकिन आनोच्का इस रास्ते को अद्वितीय और पूर्वनिर्धारित मानती थी। इस रास्ते के साथ उसकी बहुत सी विलक्षण यादें जुड़ी हुई थीं।

बहुत पहले जब वेरा निकान्द्रोव्ना ने आनोच्का को स्कूल में दाखिल कराया था, तो उसे थियेटर के नेपथ्य में जाने की मनाही कर दी थी। यह कोई आसान बात नही थी, क्योंकि ओल्गा इवानोव्ना तब थियेटर के लिए पोशाकें सीती थी और इस सिलसिले में बेटी को अक्सर थियेटर भेजा करती थी।

"अगर आप चाहती हैं कि मैं आपकी बेटी को पढ़ने में मदद दूं, तो आपको उसे थियेटर भेजना बंद करना होगा", वेरा निकान्द्रोव्ना का आग्रह था।

आनोच्का ने इतनी जल्दी वेरा निकान्द्रोव्ना का कहना नहीं माना, जितनी जल्दी ओल्गा इवानोव्ना ने। मां बेटी को पढ़ाने-लिखाने का सपना देखती थी, लेकिन बेटी को थियेटर के नेपथ्य में सब कुछ स्कूल से कहीं अधिक रोचक लगता था। पर आखिर वेरा निकान्द्रोव्ना का प्रभाव ही हावी हुआ।

जब आनोच्का कुछ बड़ी हो गई, तो थियेटर के प्रति उसके आकर्षण में एक नया अर्थ आ गया: नेपथ्य में जो कुछ होता था, वह रहस्यमय था, लेकिन हॉल में बैठकर सब कुछ उससे भी अधिक रहस्यमय लगता था – वहां से यह देखा जा सकता था कि कैसे किसी चमत्कारवश रंगमंच पर एक नये जीवन की सृष्टि होती है।

लेकिन इस मामले में भी वेरा निकान्द्रोव्ना ने आसानी से ढील नहीं की।

"रंगमंच पर यही तो दिखाया जाता है कि मानव-आत्मा में क्या कुछ घटता है, इसीलिए मैं कहती हूं थियेटर जाना एक महत्वपूर्ण बात होनी चाहिए। आखिर आदमी के मन में यों ही तो नहीं झांका जा सकता, जैसे चलते-चलते चायखाने में झांक लिया, है न? थियेटर तो ऐसे जाना चाहिए, जैसे मंदिर जा रहे हो", वेरा निकान्द्रोव्ना आनोच्का को समझाती।

सभी नियमों पर सुसंगत रूप से अमल करने के शिक्षकों के स्वभाव के अनुसार वह अपनी इन नसीहतों को पुस्तकों पर भी लागू करती।

"किताब को सरसरी तौर पर देखना, या पन्ने पलटना पढ़ना नहीं होता। पढ़ना तो ऐसे चाहिए, जैसे पादरी किसी की स्वीकारोक्ति सुनता है। पुस्तक में गहरा पैठना चाहिए। तभी वह पूरी तरह उजागर होगी और तुम उसका सारा सौंदर्य समझ सकोगी, रसास्वादन कर सकोगी। जैसे जंगल को दूर से देखकर या उसके किनारे-किनारे चलकर, उसमें अंदर दूर तक जाये विना, उसे नहीं जाना जा सकता, उसी तरह जब तक तुम पुस्तक पढ़ने में मगन होना नहीं सीखोगी, तब तक ज्ञान का आनन्द नहीं पा सकोगी।"

यह सब कहते हुए वेरा निकान्द्रोव्ना के चेहरे से ऐसा स्नेह टपकता और वह इतने आश्वस्तकारी ढंग से सिर हिलाती कि आनोच्का को शर्म आने लगती, क्योंकि वह पुस्तकों को भी ज़्यादा ध्यान से नहीं पढ़ पाती थी, और थियेटर भी हर दिन, सुवह, शाम, पल भर को ही सही, जाने को तैयार थी। हां, भले ही वह थियेटर के प्रति इतना आदर नहीं दिखाती थी, पर फिर भी था वह उसके लिए मंदिर ही। इसके विपरीत, संसार के सारे मंदिर उसके लिए इस एक मंदिर में ही सीमित होकर रह गये थे और यह मंदिर एक पूरे संसार की भांति उसे अपनी ओर आकर्षित करता था।

फिर समझाने-बुझाने के स्थान पर सिर्फ़ सलाह ही देने का समय आया और आखिर सलाह का भी स्थान शुभचिंता भरी मुस्कान ने लिया।

आनोच्का ने स्कूल की पढ़ाई उन दिनों पूरी की, जबकि पुराने विद्यालयों की परम्पराएं अभी पूरी तरह मिटी नहीं थीं। उनकी भूतपूर्व क्लास टीचर ने, जो अब केवल साहित्य ही पढ़ाती थी, एक दिन

आनोच्का के निबंध की सराहना की, पर पाठ के बाद हौले से उससे पूछा

"पारावुकिना, तुम्हारे घरवाले तुम्हें नये हिज्जों से लिखने देते हैं?"

वह चाहती थी कि उसकी छात्रा इस डांवांडोल हो गई दुनिया में पदार्पण करते हुए ध्वस्त हो गई पुरानी परम्पराओं में से कुछ तो बनाये रखे।

लेकिन अब भूतपूर्व बालिका विद्यालय में बालक भी पढ़ने लगे थे; विद्यालय की प्रधानाचार्या का स्थान नये प्रिंसिपल ने ले लिया था, अब जतन से कंघी किये हुए लंबे बालोंवाला, गले में सलीब लटकाये पादरी कक्षाओं में धर्म की शिक्षा देने नहीं आता था, और, अन्ततः, अब लड़कियों ने अपने आप ही 'नाबालिग'* नाटक मंचित करने में निर्देशन पाने के लिए एक पेशेवर अभिनेता को आमंत्रित किया था। यह तो बरसों से चली आ रही परम्परा को एकदम ही ठुकरानेवाली बात थी। इस परम्परा के अनुसार विद्यालय की अंतिम कक्षा की छात्राएं साहित्य की अध्यापिका की मदद से नाटक की रिहर्सल करती थीं। इस परम्परा को ठुकराने की पहल करनेवाली थी आनोच्का पारावुकिना।

अपने दुस्साहस पर स्वयं ही सकपकाई सहेलियों को साथ लेकर आनोच्का येगोर पाव्लोविच त्स्वेतुख़िन के यहां पधारी।

त्स्वेतुख़िन को उनसे मिलने के लिए तैयार होने में काफ़ी समय लगा। लड़कियों का आना बिल्कुल अप्रत्याशित था। त्स्वेतुख़िन ने सोचा शायद थियेटर की शौकीन युवतियां मिलने आई हैं। वैसे अब थियेटर शौकीनों का यों आना काफ़ी विरली बात हो गई थी।

लड़कियां जब आईं, तो वह अंदर केवल अंतरीय पहने बैठा था, उसके सामने ठंडी चाय का गिलास रखा हुआ था और वह पाइप में फंसा तम्बाकू साफ़ कर रहा था। मन न जाने क्यों उदास था। अभी-अभी उसने मेफ़ोदी को भगाया था, जो खुमार तोड़ने के लिए पैसे मांगने आया था और शिकायत कर रहा था कि सिर फटा जा रहा है।

---

* १८ वीं सदी के रूसी लेखक फ़ोन्वीज़िन का नाटक (१७८३)।—सं०

दूसरे कमरे में आग्निया ल्वोव्ना गला साफ़ करते हुए रियाज़ कर रही थी। प्राय: साल भर पहले वह सातवीं बार येगोर पाव्लोविच के पास लौट आई थी, इस आशा में कि आखिर तो वे वफ़ादारी निभाते हुए सुख-चैन से रह सकेंगे। त्स्वेतुखिन झुंझलाते हुए उसकी सिगरेट पीने से वैठी आवाज़ सुन रहा था और उन दिनों के बारे में सोच रहा था, जब वह आग्निया ल्वोव्ना के रूप को नई-नई उपमाएं दिया करता था। उसके चेहरे की रंगत चित्रों जैसी शोख लगती थी पर फिर भी स्वाभाविक ही थी। आग्निया ल्वोव्ना के इस आकर्षण के कारण ही थियेटरों के मैनेज़र उसे खुशी-खुशी लेने को तैयार हो जाते थे, लेकिन यह सिलसिला तभी तक चला, जब तक कि उसकी अयोग्यता सबने पहचान न ली। जिस थियेटर में भी वह जाती उकताऊ अभिनेत्री की ख्याति उसके पीछे-पीछे पहुंच जाती।

त्स्वेतुखिन के जीवन में आग्निया ल्वोव्ना एक गौण तत्व थी लेकिन उसकी सारी ज़वानी में एक महत्वपूर्ण तत्व के रूप में उससे जुड़ी रही थी। पहली वार जब वह उसे छोड़कर गई थी, तो त्स्वेतुखिन उसकी कोई परवाह नहीं करना चाहता था, लेकिन आग्निया ल्वोव्ना ऐसा करती रही कि त्स्वेतुखिन को सदा उसकी परवाह करनी पड़ी इसका नतीजा यह था कि त्स्वेतुखिन के मन में उसके प्रति न केवल प्रेम घटता जा रहा था, वल्कि नफ़रत भी बढ़ती जा रही थी, परन्तु फिर भी वह ऐसा नहीं कर पाता था कि आग्निया ल्वोव्ना उसे सदा के लिए छोड़कर चली जाये, क्योंकि आग्निया ल्वोव्ना की उसे न छोड़ने की इच्छा त्स्वेतुखिन की उसके साथ न रहने की इच्छा से ज़्यादा प्रबल थी।

पत्नियों की एक किस्म वावा आदम के ज़माने से चली आ रही है। इस किस्म की पत्नियां जब तक पति के गले में पालतू कुत्ते की तरह पट्टा बांधे रहती हैं, तभी कुछ हद तक शांत रहती हैं — कुछ हद तक ही, क्योंकि पट्टा अगर थोड़ा सा भी ज़्यादा खिंच जाये तो वेहद खिसिया उठती हैं और अगर कहीं पट्टा टूट जाये, तो तुरन्त ही रोने-बिलखने लगती हैं, छाती पीटने लगती हैं। आग्निया ल्वोव्ना स्वभाव से ऐसी ही थी।

इसके विपरीत, येगोर पाव्लोविच का स्वभाव ऐसा नहीं था कि उसे पालतू वनाया जा सकता। उसका जिज्ञासु और अन्वेषी स्वभाव

उसे स्वप्नदृष्टा बनाता था, ऐसा व्यक्ति आत्मसमर्पण में सुख नहीं पा सकता था। हो सकता है ज़ंजीर उसे बांधे रखती, न कि पट्टा, जिसे वह कभी खींचता था, कभी झटके देता था, कभी तोड़ देता था। लेकिन आग्निया ल्वोव्ना का रूप जाल ज़ंजीर बनाने के लिए पर्याप्त नहीं था। वह तो बस पट्टे को ही जैसे-तैसे जोड़-जाड़कर उसकी बेकाबू गर्दन में बांध सकती थी।

वक्त बीतने के साथ-साथ त्स्वेतुखिन की सारी जिज्ञासा कुछ हद तक पुरानी सनकें और कुछ हद तक बेचैनी बनकर रह गई थी। वायोलिन वह भुला बैठा था, क्योंकि इसे बजाने में वह निपुणता इतनी जल्दी हासिल नहीं कर पा रहा था, जितनी जल्दी उंगलियों की लचक खोती जा रही थी। नये उड़न यंत्रों की योजनाओं में भी वह रुचि खो बैठा था, क्योंकि युद्ध के दिनों में वायुयानों के निर्माण में जिस तेज़ी से प्रगति हुई थी, उससे त्स्वेतुखिन के कभी दुस्साहसपूर्ण लगनेवाले विचार बिल्कुल पिछड़ गये थे। संध्या समय निष्फल गणनाएं करते-करते ऊंघा न करे, इसलिए अब वह ताश खेलने लगा।

बस एक थियेटर ही शेष रह गया था।

इस कला में त्स्वेतुखिन का लगाव सच्चा और उत्साहपूर्ण था। उसकी सबसे बड़ी इच्छा यही थी कि वह थियेटर में कुछ नया करे। लेकिन यहां भी समय के साथ उसका उत्साह ठंडा पड़ रहा था, उसकी उड़ान दौड़ में बदल गई थी, दौड़ नपे-तुले कदमों में और ये कदम भी कभी-कभी अनिश्चय में थम जाते थे।

वह अभिनेताओं से प्रायः बहस करता था, परन्तु ऐसा अब आदतवश ही होता था, न कि किसी विशेष उत्साह के कारण। रंगमंच के उसके अनुभव ने उसे ऐसा अभ्यास, ऐसी परिपाटी दे दी थी, जिसकी मदद से समस्याएं हल करना किन्हीं नई खोजों की तुलना में कहीं अधिक आसान था। शनैः-शनैः वह इस परिपाटी का आदी हो गया था और बढ़ती उदासीनता के साथ अपनी सच्ची रुझानों के विरुद्ध काम करता था। उसके जो कुछेक साथी उम्र में उससे बड़े थे, वे कब के जीवन के थपेड़ों में सारा उत्साह खो बैठे थे और वे कला के महान ध्येयों के प्रति अभिनेताओं की उदासीनता को कोई पाप नहीं समझते थे।

"तुम हमें उपदेश मत दो", वे त्स्वेतुखिन से कहते थे, "यह

दिखाओ कि तुम कर क्या सकते हो। अगर हमें भाया, तो हम तुम्हारे पीछे हो लेंगे। कभी सर्मातोव और ओर्लेनोव जैसे अभिनेताओं के पीछे भी चला करते थे।"

क्रांति के पहले गर्जन के साथ त्स्वेतुख़िन में नये उत्साह का संचार हुआ। उसे लगता था कि अब स्वयं इतिहास ही वह सब कर देगा, जो पहले मनुष्य की शक्ति से परे था। वह सोचता था कि वह तुरन्त ही सारे थियेटर को अपने विचारों का समर्थक बना लेगा। लेकिन उसकी बातों पर कोई कान नहीं देता था। सब उसकी लंबी-चौड़ी, चुनौती भरी बातें सुनने के आदी हो चुके थे। सब उसे पुराना सनकी ही समझते थे और यह नहीं मानना चाहते थे कि उसके नये विचार क्रांति द्वारा प्रेरित हैं। सो उसे वही पुरानी बातें सुनने को मिलतीं:

"तुम तो बस यही कहते रहते हो कि कैसे होना चाहिए। पर, भाई जान, कला तो जो है, वही है। कुछ करके दिखाओ! तुम्हारे इन सब नये-नये विचारों से क्या बनेगा, यह कोई क्या जाने! एक्टर का स्वभाव ही ऐसा है, हर बात पर संशय करना। जब तक वह अपनी आंखों देख नहीं लेगा, हाथ से छूकर नहीं देख लेगा, विश्वास नहीं करेगा।"

उसे कोई अगत पथ पकड़ना था, या शायद ऐसी दिशा में बढ़ना था, जहां कोई रास्ता था ही नहीं।

और अब त्स्वेतुख़िन अपनी किस्मत पर दुखी होता बैठा हुआ था। बगल के कमरे से आते रियाज़ के स्वर से उसे चिढ़ हो रही थी और वह सोच रहा था कि इस स्वर की मालकिन में सब कुछ कितना अस्वाभाविक और बनावटी है, सब कुछ दिखावा ही दिखावा है। वह प्यारी सी बिल्ली बनती फिरती थी, सोफ़े पर पांव रखकर बैठ जाती थी, लेकिन उसकी टांगें बांस जैसी थीं और उभरे-उभरे, नुकीले घुटने बड़े बेहूदा लगते थे। वह उन अभिनेत्रियों की नकल करती थी, जो बड़ी बेतकल्लुफ़ी से दोस्तों की पीठ थपथपा सकती थीं, कूल्हों पर हाथ रखकर चल सकती थीं, किसी परिचित से भी यों गले मिल सकती थीं, जैसे वह सगा भाई हो, और चुम्बनों की झड़ी भी लगा सकती थीं। लेकिन आग्निया ल्वोव्ना जब यह सब करती, तो भठियारिन लगती और त्स्वेतुख़िन को यह देखकर घिन होती।

वह दीवार पर दस्तक देना ही चाहता था, ताकि आग्निया ल्वोव्ना अपना रियाज बंद कर दे, पर तभी लड़कियां आईं।

जल्दी-जल्दी कपड़े पहनकर और कमरे को ठीक-ठाक करके उसने लड़कियों को अंदर बुलाया। वे वहीं दहलीज़ पर रुक गईं, अपने देवता के मंदिर में कदम रखने का साहस नहीं जुटा पा रही थीं।

आश्चर्य की बात है कि आराध्य व्यक्ति पर आराधना का कैसा शारीरिक प्रभाव पड़ता है। युवतियों के दमकते चेहरे और उनकी अलग-अलग रंग की आंखें, जिन्हें वे झपकाने का भी साहस नहीं कर पा रही थीं, देखकर उसकी रग-रग में झंकार हुई। उसकी नसों में मानो सरूर दौड़ रहा था, उल्लास का संचार कर रहा था। युवतियों के सामने ऊंचा, रोबीला, बिल्कुल जवान लगता त्स्वेतुखिन खड़ा था, उस त्स्वेतुखिन से पूर्णतः भिन्न, जो ठंडी चाय में चम्मच चलाता हुआ आग्निया ल्वोव्ना की वजह से मन में उठ रही खीज से जूझ रहा था।

आनोच्का ने ही इस काम की पहल की थी, और अब वह बिल्कुल प्रतिनिधिमण्डल की अध्यक्षा के लहजे में ही कहने लगी :

"आदरणीय येगोर पाव्लोविच ! हम अंतिम वर्ष की छात्राएं ..."

त्स्वेतुखिन के चेहरे पर उत्साहवर्द्धक मुस्कान थी – इससे पहले कि आनोच्का उसे स्कूल में नाटक देखने आने और यदि सम्भव हो तो उसके मंचन में सहायता करने का अनुरोध करती, वह लड़कियों के आने का मकसद समझ गया था।

"'नाबालिग'!" पूरी बात सुनकर उसने कहा और यों सिर एक झटके में ऊपर उठाया, मानो किसी पुराने दोस्त का सिर हिलाकर अभिवादन करने लगा हो। "और सोफ़िया कौन बनेगी ?"

"मैं," आनोच्का ने निडर होकर जवाब दिया और उसके गालों पर लाली दौड़ गई।

"अच्छा, तुम ..." त्स्वेतुखिन कुछ कहते-कहते रुक गया।

क्रांति के बाद उसने आनोच्का को एक बार भी नहीं देखा था और उसका यह रूप तब के उसके रूप से भी अधिक अप्रत्याशित था, जब लड़ाई के दिनों में कई बरसों के बाद उसने आनोच्का को देखा था और उसे अपनी आंखों पर विश्वास ही नहीं हुआ था कि यह वही

पटसनी बालों की छोटी-छोटी चुटियों वाली बच्ची है, जो कभी थियेटर के नेपथ्य में मंडराती रहती थी और एक्टरों के लिए सिगरेट खरीदकर लाया करती थी।

वह तुरन्त ही स्कूल जाने को राज़ी हो गया। उसे कुछ ऐसा पूर्वाभास हुआ कि इन सकुचाती और साथ ही उमंग भरी युवतियों के साथ नाटक की रिहर्सल करते हुए रंगमंच पर किन्हीं नई सम्भावनाओं के द्वार खुल सकते हैं, हालांकि ये लड़कियां तो शायद जानती भी न होंगी कि किधर जा रही हैं। इसके अलावा राज़ी होने का एक और कारण था – उसके मन में इसी क्षण आनोच्का के प्रति जागा कौतूहल: वही अपनी सभी सहेलियों से अधिक उमंग से भरी हुई थी, और वही अपने संकोच से सबसे अधिक साहस से जूझ रही थी।

स्कूल में कुछ दिन काम करने पर ही उसे विश्वास हो गया कि उसका पूर्वाभास पूर्णतया सही था। युवाजन के लिए उसका हर शब्द अटल नियम के समान था। वह 'नाबालिग' की सभी भूमिकाओं की अपने ढंग से व्याख्या कर सकता था और सभी कलाकार तत्परता से उसकी बात मानते और ठीक अपने गुरु के पदचिह्नों पर ही चलने का पूरा-पूरा यत्न करते।

बेशक, यह अभिनय कला में कोई क्रांति नहीं थी! हां, यहां एक नवीनता थी, ऐसा कोई बंधन नहीं था, जिससे थियेटर में काम करनेवाले कलाकार बंधे हुए थे। यहां निश्छलता को भोलापन नहीं माना जाता था। यहां लड़कियां अपनी सरल हृदयता पर शर्माये बिना कहती थीं: "मैं तो रो ही पड़ी!" वे नहीं जानती थीं कि थियेटर के तौर-तरीकों का तकाज़ा यह है कि ऐसे मौके पर व्यंग्यपूर्ण मुस्कान के साथ कहा जाये: "अरी, मैं तो बिलखने ही लगी!"

'नाबालिग' नाटक वैसे बिल्कुल स्कूली नाटकों जैसा ही रहा, यहां तक कि ऐसे सभी कार्यक्रमों की भांति इसमें भी एक मजेदार घटना घटी। चौथे अंक के अंत में जब श्रीमती प्रोस्ताकोवा रंगमंच पर इधर-उधर दौड़ रही थी, तो उसके घेरेदार स्कर्ट से उठे झोंके से प्रोम्पटर के बॉक्स में लैम्प बुझ गया और उसके धुएं से प्रोम्पटर ज़ोर-जोर से छींकने लगा।

लेकिन इस नाटक से त्स्वेतुखिन की अपने काम में नई रुचि जागी,

वह जान गया कि उसके विचार कहां फलप्रद हो सकते हैं।

उसने एक ऐसी मण्डली गठित करने का फ़ैसला किया, जिसमें प्रमुख स्थान उन जवान लड़के-लड़कियों का होगा, जिन्हें अभी रंगमंच का कोई अनुभव नहीं है। वह जानता था कि पेशेवर थियेटर वाले उसकी मण्डली को नौसिखिये शौकीनों का झुंड कहेंगे, लेकिन वह इन कटाक्षों से नहीं डरता था, क्योंकि वह यह भी जानता था कि कला में सभी बड़ी खोजें नौसिखियों द्वारा ही हुई हैं।

इस नये कार्य के लिए सबसे प्रबल प्रेरणा थी आनोच्का। त्स्वेतुख़िन को इस बात में जरा भी संदेह नहीं था कि उसे रंगमंच पर उतरना चाहिए। आनोच्का की कोहनियां नुकीली थीं, गर्दन पतली और बांहें मानो कुछ ज़्यादा ही लंबी – इस सबके कारण लगता था कि वह अभी किशोरी ही है। लेकिन जैसे ही उसने सोफ़िया की पोशाक पहनी, उसकी इस चढ़ती जवानी की बेढबी से सोफ़िया के बिम्ब में आश्चर्यजनक सजीवता आ गई। आनोच्का अत्यंत सजीव थी, उसके चेहरे का भाव बड़ी तेजी से बदलता था, पल भर में वह सकपकाई होती, पल भर में उदास, पल भर में व्यंग्य भरी और पल भर में कठोर। लेकिन रंगमंच पर उसकी यह सजीवता उत्तेजना में बदल गई, व्यंग्य भाव साथी के लिए संवेदना बन गया, सकपकाहट – निश्छलता और उदासी – विचारमग्नता।

त्स्वेतुख़िन को पता भी नहीं चला कब आनोच्का की प्रतिभा पर रीझते हुए वह इस प्रतिभा की स्वामिन का दीवाना हो गया। 'नाबालिग' की रिहर्सल और फिर मण्डली गठित करने की दौड़धूप के दौरान त्स्वेतुख़िन को लगा मानो उसका पुनर्जन्म हुआ है। पहले भी कई बार उसे ऐसा अनुभव हुआ था, लेकिन इस बार यह एक पूर्णतया नवीन अनुभव लगता था, जैसा कि बर्फ़ीले जाड़े के बाद सहसा उतर आया बसंत एकदम नया लगता है। सबके देखते-देखते ही त्स्वेतुख़िन आनोच्का की परछाईं बन गया, एक वह ही अपने काम में इतनी मगन थी कि उसे सबसे कम इस बात का आभास था।

त्स्वेतुख़िन की मण्डली पर कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा वाली बात सच बैठती थी। कला के मामले में अदीक्षित युवाजन के साथ सुरीले अभिनेता आ मिले। इस स्टूडियो को सौभाग्यवश एक सैनिक

क्लब का समर्थन मिल गया, इसका अर्थ यह था कि उनकी रोटी मुकर्रर हो गई। अभिनेता कंधे पर झोला लटकाये रिहर्सलों में आते, त्स्वेतुखिन भी अपने राशन का झोला सदा साथ रखता। क्लब की ओर से मिलनेवाले ज्वार-बाजरे और सूखी मछली से वह आग्निया ल्वोव्ना को शांत करता था, जो इस बात पर दुखी थी कि "अपनी मण्डली" तक में उसे कोई अच्छी भूमिका नहीं दी जा रही।

और स्वयं त्स्वेतुखिन तो हवा खाकर ही जीने को तैयार था, बस हर रोज़ आनोच्का के साथ रिहर्सल करने को मिले और फिर वह उसे घर छोड़ने जाया करे। एक दिन जब वह लाल कढ़ाई वाला सन का रूसी कुर्ता पहनकर आया और आनोच्का ने कहा: "वाह, कितनी अच्छा लगता है आपको!"—तो उसे लगा कि वह जीवन भर यही सन का कुर्ता पहने रहेगा। वह जवान हो गया था और मानो पहली बार फ़र्दीनांद के पार्ट की रिहर्सल कर रहा था, हालांकि पहले भी कई बार यह भूमिका अदा कर चुका था और इससे बहुत आनन्द पा चुका था।

उसने स्टूडियो के पहले नाटक के लिए 'छल और प्रेम' चुना, जो क्रांति के दिनों में एक सबसे लोकप्रिय रोमांसी रचना थी। इसमें भावना की वह आग थी, जिसे पहले हवा लगने देने से डरते थे। लेकिन पुराने अभिनेताओं को इस नाटक में कोई नई बात नहीं दिखाई देती थी—वही रोल थे, जो कई बार किये जा चुके थे और जिन्हें एक बार फिर करना होगा। सो वे इसके लिए कोई खास जतन करने का इरादा नहीं रखते थे, उन्हें तो बस कौतूहल ही अधिक था—त्स्वेतुखिन इन नौसिखियों को लेकर क्या कर पायेगा?

जैसे ही आनोच्का ने यह दिखा दिया कि उसमें अभिनय प्रतिभा है, तुरन्त ही लोग उसे तरह-तरह की सलाहें देने लगे। कोई फ़्रांसीसी शैली की बात करता, कोई यथार्थवाद की, कोई स्तानिस्लाव्स्की* की और कुछ तो बस अभिनेता के लिए अच्छे से उपनाम के महत्व पर ही भाषण झाड़ते।

---

* क० स्तानिस्लाव्स्की (१८६३–१९३८) – सुविख्यात सोवियत निर्देशक, अभिनेता, अध्यापक और थियेटर के सिद्धांतकार।—सं०

एक दिन बूढ़ों की भूमिकाएं करने में उस्ताद एक अभिनेता उससे कहने लगा "अरी, बच्ची, यह भी कोई नाम है पाराबुकिना! ज़रा सोचो तो लोग चिल्लायेंगे: बु-ऊ-किना!"

"आदमी के नाम की शोभा कर्मों से होती है", आनोच्का ने पाण्डित्यपूर्ण लहजे के पीछे मन को पहुंचे आघात को छिपाते हुए कहा।

"वो तो ठीक है। पर अगर नाम ही हो चूचीकिन, तो फिर उसकी क्या शोभा होगी? नाम में कुछ शान होनी चाहिए – पारा... बेल्ला, पारा ... त्सेल्ला... या कुछ ऐसा ही! हमारे थियेटर की बात है, एक एक्टर प्रेमी का पार्ट करता था – तबीयत खुश हो जाती थी। पर हॉल मे सन्नाटा रहता था, कोई ताली नहीं, कोई वाह-वाही नही। तुम पूछोगी क्यो? लोगों को नाम पसन्द नहीं था, इसलिए। नाम था पीपकिन! खैर वह दूसरे शहर चला गया। एक्टिंग क्या करता था, बस मरा जाता था, खुद को मतली आती थी। पर जनता खुश थी। क्यो? नाम बदल लिया उसने – रसिकोव। यह नाम पसन्द आया लोगो को!"

सेफ़ोदी भी यह बातचीत सुन रहा था, उसने आनोच्का को हौसला बांधना अपना फ़र्ज़ समझा:

"इसकी बातों पर कान मत दो। यह भी कोई एक्टर है? बैरा है यह तो। हमेशा सलाहें देता रहता है।"

"मेरी तो समझ में नही आता, आनोच्का कि यह येगोर पाव्लोविच को पार्ट रटवाने की क्या धुन सवार हुई है", आग्निया ल्वोव्ना कहती। "प्रोम्प्टर किसलिए है? अब याद नहीं पड़ रहा, पर किसी फ्रांसीसी उपन्यास में, शायद बल्जाक का था वह, मैंने पढ़ा था: थियेटर जगत का उदीयमान सितारा है – अभिनेत्री फ़्लोरीना, उसके ड्रेसिंग रूम में उसके कद्रदान जमा हैं, उसे स्टेज पर जाना है, और वह कहती है: 'जाओ सब बाहर, मुझे अपना पार्ट पढ़ तो लेने दो, कुछ समझ तो लूं है क्या!' घंटी बजने के बाद वह यह बात कह रही है! स्टेज पर जाने का वक्त आ गया और वह कहती है, कुछ समझ तो लूं है क्या! इसे कहते हैं अभिनेत्री! कलाकार! और यहा तुम महीनों से घोटा लगा रही हो! आखिर अभिनय कौसा

और पूर्णविराम से नहीं होता, इसके लिए तो कुछ और भी चाहिए। देखेंगे, मेरी जान, है तुममें यह कुछ और या नहीं!"

रंगमंच के ये सब सूरमा, जो उम्र भर यश के सिंहद्वार के बाहर कतार लगाये खड़े रहे थे, अपना अनुभव इस युवती को बांटने को उतावले थे, जो अभी अपनी अल्पायु के कारण खास ज्ञान नहीं पा सकी थी, और यदि इन सब परामर्शों से आनोच्का का सिर चकराया नहीं, तो इसका एकमात्र कारण यह था कि वह येगोर पाव्लोविच को सबसे बढ़कर मानती थी और अगर किसी के बताये रास्ते पर चलने की कोशिश करती थी, तो केवल उसके बताये रास्ते पर।

वह शायद शब्दों में आनोच्का को कला का सिद्धांत समझाने में असमर्थ था, और यह बताने में भी कि अगर तुम आनोच्का पाराबुकिना हो, तो लुईज़ा मिल्लर की भूमिका कैसे अदा करो, लेकिन वह एक सच्चा कलाकार था और व्याख्याओं के स्थान पर उसके पास अनुभव था। वह आनोच्का को वे हल बताता था, जो उसने स्वयं पाये थे, और समय ही यह बता सकता था कि क्या आनोच्का उन्हें समझ सकती है, और क्या वह उन्हें स्वीकार करना चाहती है।

आखिर अक्तूबर बीतते न बीतते नाटक तैयार हो गया।

३४

नाटक तैयार था।

विश्वविद्यालय के पास स्थित रेजीमेंट की बैरकों में नाटक हुआ। विशाल हॉल, जिसे अभी तक गरम नहीं किया गया था, एक सिरे से दूसरे सिरे तक नये रंगरूटों से भर गया। रंगरूट टखनों तक लंबे फ़ौजी ओवरकोट या घुटनों तक के भेड़ की खाल के ओवरकोट पहने थे। प्रहरी कम्पनी के सिपाही बंदूकें भी उठाये थे। गैरफ़ौजी लोग भी यहां काफ़ी थे, जिन्होंने अंधेरे और ठंड में आधा शहर पैदल पार करके यहां आने का साहस किया था। आखिर यह कोई मामूली घटना नहीं थी और फिर त्स्वेतुखिन के नाम ने इसे और भी अधिक आकर्षक बना दिया था। स्वाभाविक ही है कि आगे की कतारों पर नये अभिनेताओं के रिश्तेदारों और परिचितों का कब्ज़ा था।

पागत्रुकिन पहले कभी भी मंच के इतनी पास नहीं बैठा था, हालांकि यह उसके लिए काफ़ी तकलीफ़देह था, पर फिर भी वह गेबीला दिखने की पूरी कोशिश कर रहा था। हौसला बुलंद रखने के लिए उसने यहां आने से पहले घूंट भर ही पी थी और बड़े जतन से यह छिपा रहा था। पर खचाखच भरे हॉल की गर्मी का अहसास उसी को सबसे पहले हुआ और वह अपने तह किये हुए रूमाल से माथा पोंछने लगा।

दोरोगोमीलोव की तबीयत काफ़ी अरसे से खराब चल रही थी, पर लड़कों के आग्रह को टाल नहीं सकता था। उसके नन्हे दोस्त कुर्सियों पर कुलबुला रहे थे, कभी गर्दन तानकर यह देखते कि मंच पर उन्हें सब कुछ दिखाई देगा कि नहीं, कभी कटे बालों वाले सिर इधर-उधर घुमाते। उनकी आंखें अभी से हर्षोल्लास से चमक रही थीं, लगता था जैसे वे बिजली की तेज़ रोशनी को प्रतिबिम्बित कर रही हों क्लब को इस अवसर के लिए बिजली दी गई थी।

लीजा और अनातोली मिखाइलोविच एक ओर को ऐसी जगह पर बैठे थे कि वीत्या पर भी नजर रख सकें और वेरा निकान्द्रोव्ना की नजरों में न पड़ें। लीजा नहीं चाहती थी कि किसी का ध्यान उसकी ओर जाये। यहां का वातावरण उसे उत्तेजित कर रहा था, यह थियेटर जैसा नहीं था, पर फिर भी इससे तुरन्त ही उसकी अनेक स्मृतियां सजीव हो उठी थीं।

वेरा निकान्द्रोव्ना ने किरील के लिए सीट घेर रखी थी। वह बिल्कुल अंतिम क्षण पर ही आया, जब बत्तियां बुझीं और दर्शकों की बातचीत तेज़ी से थम गई।

इस क्षण आनोच्का मंच पर परदे को थोड़ा सा हटाकर हॉल में झांक रही थी। त्स्वेतुखिन ने उससे कहा था कि वह किसी एक व्यक्ति को, जो उसे अच्छा लगे, चुन ले और फिर उसी व्यक्ति के लिए अभिनय करे :

"मैं सदा किसी एक व्यक्ति के लिए अभिनय करता था और सोचता था कि वही आदमी मेरे अभिनय का फैसला करेगा।"

आनोच्का दसियों चेहरों पर नज़र दौड़ा चुकी थी, पर यह फ़ैसला नहीं कर पा रही थी कि किसे चुने। वह एक नये संसार में झांक

रही थी। अपने भविष्य के संसार में, जिसकी ओर शीघ्र ही उसे पहला कदम बढ़ना था। उसका कलेजा बैठा जा रहा था।

और सहसा उसे कतारों के बीच बढ़ता किरील दिखाई दिया। उसी क्षण हॉल अंधेरे में डूब गया। वह एकदम भयभीत हो उठी, उसे लगा उसका सिर चकरा दहा है, घुटने कांप रहे हैं, पर तभी उसने सुना, कैसे फ़र्दीनांद पास आया और उसके कान में बोला:

"बहुत हुआ, लुईज़ा, अब शुरू करना चाहिए!"

'छल और प्रेम' की घटनाएं दर्शकों को पहले दृश्य से ही वशीभूत कर लेती हैं, और दर्शक जितने अधिक सरलचित्त होते हैं, उतना ही अधिक वे प्रभावित होते हैं। मंच पर तुरन्त ही ऐसी स्थिति पैदा हो जाती है, जिसे सब समझ सकते हैं, और परस्पर विरोधी भावनाओं का टकराव दर्शकों में कौतूहल पैदा करता है।

इस बात से कि अभिनेता अठारहवीं सदी की वेशभूषा – ज़रीदार कोटियां, पाउडर लगे विग और सुनहरे बकलसों वाली जूतियां पहन लेते हैं, वे दर्शकों के लिए अस्वाभाविक नहीं हो जाते हैं। पात्रों का विचित्र रूप मंच पर हो रही घटनाओं में दर्शकों की रुचि को बढ़ाता ही है। नाटक का सार मुखौटों में नहीं, बल्कि उनसे कहीं गहरा होता है।

कौनसा ऐसा हृदय है जो युवक के पहले ज्वार को अनुभव नहीं कर सकता, या युवती के पहले प्रेम को, इस प्रेम को रोक पाने की असमर्थता और भावना को प्रकट कर देने की अदम्य इच्छा को नहीं समझ सकता? किसने ऐसे क्रुद्ध पिता को नहीं देखा है, जो मां को बेटी के खतरनाक अनुराग की ओर से आंखें मूंदे रहने का दोषी ठहराता है? किसने जीवन में उन बड़े लोगों को नहीं देखा है, जो अपने स्वार्थ की खातिर पराये सुख को उजाड़ते हैं?

रेजीमेंट की बैरकों के इस हॉल के बाहर, नगर में और नगर से बाहर, सारे असीम देश में वे लोग अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष कर रहे थे, जो सदियों से इसके शिकार होते आये थे और अब अपनी मुक्ति के लिए उठ खड़े हुए थे। हॉल में जमा लाल सैनिक टुटपुंजिया परिवार की इस दुखद कथा की छोटी-छोटी घटनाओं में अपनी भावनाओं की प्रतिध्वनि स्पष्टतया सुन रहे थे। वहां मंच पर अन्याय का राज था।

यहां हॉल में अन्याय से घृणा व्याप्त थी। हॉल न्याय का भूखा था। मंच पर न्याय को रौंदा जा रहा था, और यहां हॉल में से सहानुभूति की लहर मंच की ओर बढ़ रही थी।

नहीं, लुईज़ा यों व्यर्थ ही नहीं तड़प रही थी। अत्याचार के प्रति अपनी घृणा में, सर्वशक्तिमानों की गर्व से अवज्ञा करने में और यहां तक कि अपनी निर्बलता और दुख में भी वह अकेली नहीं थी। क्रांति के सेनानी, जो जीवन के हर पहलू में सच्चाई खोज रहे थे, दर्शक बनकर रंगमंच से भी सच्चाई की मांग करते थे। इस सच्चाई का एक अंश वे इस निस्सहाय युवती में देख रहे थे, और लुईज़ा की वेदना उन्हें जितनी अधिक उदात्त लगती थी, उतनी ही अधिक गम्भीरता से वे उसकी ओर सहायता का हाथ बढ़ाने को तत्पर थे।

हॉल में ऐसा सन्नाटा था, जैसा अमावस की रात में खेत में होता है। दर्शकों के हृदयों में जो भावनाएं उमड़ रही थीं, उनमें सबसे प्रबल थी विस्मय की भावना, दर्शक इस बात पर विस्मित थे कि रंग-बिरंगी कोटियां और तिकोनी टोपियां पहने ये लिपी-पुती आकृतियां सचमुच के लोगों जैसे जी रही हैं।

रंगमंच से शब्दों की धाराएं, नदियां और महासागर उमड़ते आ रहे थे, और इन शब्दों में से एक भी उन साधारण शब्दों जैसा नहीं था, जिनमें आम लोग अपने मन की बात कहते हैं, परन्तु फिर भी इन शब्दों की मर्मर ध्वनि में ऐसा जादू था कि इनमें निहित विचार को हर कोई सहज ही समझ पा रहा था।

फ़र्दीनांद भले ही अपने उद्गार आडम्बरपूर्ण और अलंकृत भाषा में व्यक्त कर रहा था, फिर भी दर्शकों के मन में त्स्वेतुख़िन के प्रति विश्वास ही जाग रहा था, जब वह भावनाओं के आवेग में बहता हुआ यौवन की विशालहृदयता के साथ लुईज़ा के सामने प्रेम की सौगंधें खा रहा था।

मोटे ऊनी ओवरकोट में लिपटा हर सैनिक अपनी मुट्ठी में खांस रहा था, ताकि पास बैठे लोगों को सुनने में कठिनाई न हो, और खुद भी वह डर रहा था कि कहीं त्स्वेतुख़िन के मखमली कंठ से उच्चारित कोई ध्वनि उसके कानों में पड़ने से न रह जाये। हर कोई फ़र्दीनांद के मंत्ररूपी शब्दों को अपनी बोली में रूपांतरित कर रहा था और

शायद सोच रहा था कि एक दिन वह भी फ़र्दीनांद की भांति कहेगा: "हमारे रास्ते में बाधाओं के पहाड़ ही क्यों न खड़े हो जायें, मेरे लिए वे सीढ़ियों के समान होंगे और मैं उन्हें लांघता हुआ लुईज़ा के बाहुपाश में पहुंच जाऊंगा! दुर्भाग्य के तूफ़ान मेरे प्रेम की ज्वाला को और अधिक भड़कायेंगे, ख़तरे मेरी लुईज़ा को और भी कमनीय बनायेंगे!" और शायद हर किसी को यह आशा थी कि एक दिन उसे भी कोई लुईज़ा की ही भांति त्रास और भावावेग से बुदबुदाते हुए कहेगी: "बस करो! मैं हाथ जोड़ती हूं, चुप हो जाओ! क़ाश, तुम्हें पता होता!.."

यह लुईज़ा, जिसका कठिन सा नाम – पारावुकिना – इश्तहारों पर स्याही से लिखा गया था, अपनी कुमारीसुलभ सरलता, निश्छलता और हृदय की व्यथा से दर्शकों का मन जीत रही थी। यह सच्ची लुईज़ा थी। परन्तु शायद यह एक भ्रम ही था। शायद उसका मन यह सोचकर भयभीत हो रहा था कि इतने दुस्साहस के साथ उसने जो काम करने का बीड़ा उठाया है, उसे पूरा नहीं कर पायेगी। परन्तु दर्शकों से उसका यह डर किसी अनबूझ ढंग से दूसरे डर में समाता जा रहा था – यह एक गरीब लड़की का अपने निराशापूर्ण प्रेम से जन्मा डर था।

लीज़ा अचम्भे और ईर्ष्या के साथ आनोच्का का अभिनय देख रही थी। उसका मन यह मानना ही नहीं चाहता था कि मंच पर वही लड़की है, जो उन दिनों अनजानी-अनदेखी घास की तरह बढ़ रही थी, जबकि लीज़ा थियेटर का रसास्वादन कर रही थी और एकांत में इसके सपने देखा करती थी, इसे संसार की सबसे बड़ी खुशी माना करती थी। हां, यह घास बड़ी हो गई थी। यह अब बच्ची नहीं थी, यह तो नारी ही थी – अपने भाग्य में निर्धारित खिलने की घड़ी की पूर्ववेला में। आनोच्का में ये गरिमामयी भंगिमाएं कहां से आईं? किसने उसे इतने सहज भाव से ये पुराने परिधान पहनने सिखाये? आख़िर त्स्वेतुख़िन तो ऐसा नहीं कर सकता था! वह त्स्वेतुख़िन के साथ अभिनय कर रही है! स्वयं त्स्वेतुख़िन के साथ! वही आनोच्का, जो बचपन में डरते हुए उसे "कालू" कहती थी! त्स्वेतुख़िन के साथ लीज़ा का अभिनय कैसा रहता? निस्संदेह, वह अभिनेत्री बनती,

26–60

तो अच्छी लगती – उसकी चाल में शान है, और चेहरे पर कांति! लेकिन अभिनेत्री यह बेढब सी आनोच्का बनी है, जो सच पूछो, तो सुंदर नहीं कही जा सकती। और लीज़ा शायद प्रांतीय नगर की साधारण स्त्री के रूप में ही अपने दिन काटेगी। पर क्या इसी में भला नहीं है? हो सकता है, भाग्य ने उसे नीचा देखने से बचा लिया है? जीवन मे तो वह मोहक थी, मंच पर दयनीय हो सकती थी – कौन जाने? शायद भाग्य की उदारता इसी में थी कि उसे चुपके-चुपके रंगमंच से प्रेम करने का अवसर दिया गया था, जैसे कि अधिकांश स्त्रियों को रंगमच से लगाव होता है?

क्षण भर को रंगमंच की ओर से ध्यान हटाकर लीज़ा ने नज़रें दौड़ाकर किरील को खोजा।

वह कुर्सी में थोड़ा आगे को बढ़ा हुआ एकदम सीधा बैठा था। फ़ुटलाइटों की प्रतिबिम्बित लाल-पीली रोशनी में उसका चेहरा सदा से अधिक पीला लग रहा था और किसी परछाईं की पृष्ठभूमि में उसके नयन-नक्श स्पष्टतया उभरे हुए थे। दूर से यह देख पाना सम्भव नही था कि इस चेहरे पर क्या भाव आ जा रहे हैं, हां इतना साफ़ था कि किरील लुईजा पर आंखें गड़ाये हुए है।

नाटक से दर्शकों में विस्मय की जो भावना उत्पन्न हुई थी, किरील भी उससे अभिभूत लग रहा था। परन्तु वह नाटक पर नहीं, अकेली आनोच्का पर विस्मित था। वैसे उसे अपने आप पर भी हैरानी हो रही थी: क्योंकर पहले कभी भी आनोच्का के व्यक्तित्व के सबसे सशक्त, सबसे आश्चर्यजनक पहलू – उसकी प्रतिभा की ओर उसका ध्यान नही गया! आनोच्का के व्यक्तित्व को जैसे वह समझता आया था, वास्तव में वह उससे कहीं अधिक समृद्ध और व्यापक था। उसके बारे में वह जो कुछ भी सोच सकता था, वास्तव में वह उस सबसे कही बढ़कर थी, कहीं अधिक श्रेष्ठ थी।

उसके होंठों पर धीरे-धीरे मृदु मुस्कान आ गई। नाटक की इन वेदनाओं में ऐसी निश्छलता थी, ऐसा भोलापन था कि कठोर से कठोर हृदय भी इनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था।

जब घुटनों के बल खड़ी लुईज़ा उछली और पिता की बांहों से अपने आपको छुड़ाकर चले जा रहे फ़र्दीनांद की ओर लपकी और

कराही: "मत जाओ! मत जाओ! कहां जा रहे हो? पिता जी! मां! इस मुसीबत की घड़ी में ये हमें छोड़े जा रहे हैं..." – किरील और भी आगे खिसक गया और खांसने लगा, ताकि रुंधे गले से उठती अजीब सी आवाज़ को दबा पाये। उसे खिड़की के पास अपनी हंसी याद आई, जब शाम बीते उसने यह दर्दनाक कराह सुनी थी, जिससे पहले तो वह भयभीत हो गया था और फिर उसकी हंसी फूट पड़ी थी: "मत जाओ! मत जाओ!" लेकिन अब उसे हंसी नहीं आ रही थी। इस क्षण उसके मन में उफनती भावनाएं उसे आनोच्का के इतना निकट ला रही थीं, जितना वह उस शाम को भी नहीं था, जब उसने पहली बार आनोच्का को अपनी बांहों में भरा था। वह अपने इस उद्वेग को छिपाना चाहता था और आगे ही आगे, कुर्सी के ऐन सिरे पर खिसकता जा रहा था। वेरा निकान्द्रोव्ना के लिए इस तरह उसके चेहरे पर आते भाव देखना और भी आसान था, वह थोड़ा पीछे झुककर बैठी थी और बार-बार आनोच्का से नज़रें हटाकर बेटे पर डाल रही थी: अभी तक जो कुछ उसके लिए एक प्रश्न हो सकता था, वह सब इस क्षण पूरी तरह स्पष्ट होता जा रहा था।

दूसरा अंक बड़ी अच्छी तरह खत्म हुआ और दर्शक अभिनेताओं को पुकारने लगे। वे सब हाथ पकड़कर फ़ुटलाइटों के पास आने लगे। उनकी हर्षमय उत्तेजना पर्दे में भी व्याप्त होती लगती थी, जो उनके कंधों के पीछे लहरा रहा था।

आनोच्का ने झुकते हुए उधर नज़र डाली, जहां किरील बैठा था। और सहसा उसकी मुस्कान फीकी पड़ गई। उसने देखा एक सैनिक इज़्वेकोव पर झुका उसके कान में कुछ कह रहा था। किरील तत्क्षण उठा और जल्दी-जल्दी लाल गार्ड के पीछे चल दिया।

दर्शक अभी भी तालियां बजा रहे थे और अभिनेताओं को पुकार रहे थे। आनोच्का के कानों में किसी युवा कंठ से निकली आवाज़ पड़ी: "पारा-बू-ऊ-कि-ना!" इस लम्बे "ऊ-ऊ" के बावजूद यह आवाज़ उसे प्रभावोत्पादक और यहां तक कि सुरीली लगी। लेकिन मन पर सहसा घिर आई उदासी के कारण वह अपनी पहली सफलता का पूरा आनन्द नहीं ले पा रही थी: किरील ने उसकी ओर नज़र तक न डाली थी, और अब शायद क्लब से चला ही गया होगा –

आखिर उसे नौसिखियों का नाटक देखने से कहीं अधिक महत्वपूर्ण काम करने हैं।

अभिनेता चौथी बार एक दूसरे का हाथ पकड़कर पर्दे के बाहर आने को तैयार हुए थे और नायक नायिका का हाथ पकड़कर सबसे आगे चलने ही लगा था, पर तभी नेपथ्य में वही लाल गार्ड दिखाई दिया, जो थोड़ी देर पहले किरील को हॉल में से ले गया था।

"कामरेड त्स्वेतुखिन, ज़रा ठहरिये!"

उसके कहे कुछ शब्द सुनते ही त्स्वेतुखिन ने पर्दे से बाहर निकलने का इरादा छोड़ दिया, और फिर पल भर में ही मंच पर सब कुछ बदल गया।

मददगारों ने मंच सज्जा को हटाना छोड़ दिया, हथौड़े और प्लायर्स हाथ में लिये आगे के आदेश की प्रतीक्षा करने लगे। अस्त-व्यस्त प्रोम्पटर अपने कपड़े झाड़ता बूथ में से निकल आया, आग बुझाने की ड्यूटी पर तैनात आदमी अपनी जगह से हट गया, किसी तानाशाह हुकूमत की पुलिस की वर्दी पहने एक्स्ट्रा मंच पर आ गये। अभिनेताओं को यह सब कुछ बुरा लग रहा था, क्योंकि हॉल में अभी भी तालियों की गड़गड़ाहट शांत नहीं हुई थी।

"कोई नहीं जाये, भई, कोई नहीं", निदेशक का सहायक नाटक की खस्ताहाल कापी सिर के ऊपर हिलाता हुआ कह रहा था।

"सारी मण्डली!" त्स्वेतुखिन आदेश दे रहा था।

"हॉल में बत्तियां बुझा दें?" मंच के परले सिरे से बिजली मिस्त्री पूछ रहा था।

"अर्द्धचन्द्र बनाइये, अर्द्धचन्द्र," सहायक सबको खड़ा करने में लगा हुआ था।

"अरे, हुआ क्या? फ़ोटो खींचेंगे क्या?"

"मेक-अप वाले को बुलाओ! मरीया इवानोव्ना को बुलाओ!"

"एक्टर आगे आयें! पास-पास! लुईज़ा बीचोंबीच! चलिये-चलिये! सटके खड़े होइये, सटके!"

"गायेंगे क्या?"

"मददगार कहां हैं? आप लोग भी खड़े होइये न! कहां जा रहे हैं?"

"दाईं स्पॉट लाइट! स्पॉट लाइट बुझ गई!"

"मीटिंग होगी? किस बात की?"

"हॉल में लंबी घंटी दो! है कोई घंटी पर?"

"सब कुछ तैयार है, येगोर पाव्लोविच। सब आ गये।"

त्स्वेतुख़िन ने मण्डली पर नज़र दौड़ाई, बीचोंबीच जाकर खड़ा हो गया और अपने सहायक को सिर से इशारा किया।

"चलो!" नाटक की कापी को सिर के ऊपर उठाकर और फिर एक झटके से नीचे लाते हुए वह चिल्लाया।

पर्दा मंथर गति से उठने लगा।

दर्शक आपस में बातें करते हुए अपनी-अपनी सीटों पर बैठने लगे और फिर से तालियां बजाने लगे। कोई नहीं जानता था कि क्या होनेवाला है, बहुतों ने सोचा कि दर्शकों ने जिस तरह ज़ोरदार तालियां बजाई हैं, उस पर आभार प्रकट करने के लिए ही मण्डली यों जमा हुई है—आखिर यहां सब कुछ नया था: लोग भी थियेटरी परम्पराओं से परिचित नहीं थे और थियेटर का भी इन परम्पराओं पर चलने का कोई इरादा नहीं था।

सहसा इज़्वेकोव तेज़-तेज़ कदमों से चलता हुआ मंच के ऐन बीचोंबीच आ खड़ा हुआ। उसने हाथ ऊपर उठाया और सब खामोश हो गये।

"साथियो!" वह ऊंची, चीखती सी आवाज़ में बोला, जो अभिनेताओं की सधी हुई आवाज़ों से बिल्कुल भिन्न थी। और इसमें ऐसी नवीनता थी कि जो कुछ भी रंगमंचीय था, वह मानो पलक झपकते ही विलुप्त हो गया, और उसका स्थान किसी बिल्कुल ही भिन्न वातावरण ने ले लिया।

"अभी-अभी हमें तार से खबर मिली है कि दक्षिणी मोर्चे पर हमारी शानदार जीत हुई है।"

सारा हॉल मानो एक साथ फुसफुसाने लगा और फिर अपने आप ही शांत हो गया।

"वोरोनेज के पास कामरेड बुद्योन्नी के लाल रिसाले ने मामोन्तोव और श्कुरो की सफ़ेद कैवेलरी कोरों को धूल चटा दी है! वोरोनेज ..."

उसे आगे बोलने नहीं दिया गया। धीरे-धीरे बढ़ती गड़गड़ाहट की भांति नहीं, बल्कि एकदम ही फट पड़े बादल जैसा शोर हुआ।

चीखें मानो तालियों के शोर को दबा देना चाहती थीं, पैरों की पटापट फर्श पर बंदूकों के कुंदों की ठकाठक से होड़ लगा रही थी। पहले सबसे दूरवाली कतारों में और फिर आगेवाली कतारों में भी बैठे सैनिक उठने लगे और झुंड के झुंड मंच की ओर बढ़ने लगे।

किरील ने फिर से हाथ उठाया और भीड़ की ओर कदम बढ़ाया। वह अनिच्छापूर्वक शांत होने लगी।

"हमने वोरोनेज आज़ाद करा लिया है! हमारे सैनिकों ने बहुत बड़ी संख्या में दुश्मन के हथियारों, आदि पर कब्ज़ा कर लिया है। सफ़ेद गार्ड दुम दबाकर भाग रहे हैं!"

फिर से युवा कंठ 'हुर्रा' चिल्लाये और तालियों की गड़गड़ाहट गूंजी। मंच से नीचे दिखाई दे रहे ये असंख्य और विविधतम चेहरे मानो एक ही मुस्कराते चेहरे में मिलकर किरील के स्मृति-पटल पर अंकित हो गये।

"किसी भी क्षण और ब्योरों का पता लगने की उम्मीद है। तार में कहा गया है कि हमारी सेनाएं दुश्मन का पीछा कर रही हैं। हम मामोन्तोव के कज़्ज़ाकों और श्कुरो के वालंटियरों को खदेड़ रहे हैं। साथियो, यह सफ़ेद गार्डों के अंत की शुरूआत है। देनीकिन की हार पक्की है। देनीकिन और उसके जैसों को हम सदा के लिए दफ़ना देंगे। लाल सेना उनके लिए अथाह कब्र खोद रही है। मजदूरों और किसानों का यशस्वी सोवियत रिसाला ज़िंदाबाद!"

यह हर्षोन्माद की पुकार थी और हॉल इस हर्षोन्माद से गूंज उठा, बैंकों की पुरानी दीवारें इस गूंज की लहरों को प्रतिध्वनित करती हुई इसे और भी ज़ोरदार बनाने लगीं।

सामने की कतारों में बैठे सभी गैर सैनिक लोग भी उठ खड़े हुए। पहले पाव्लिक और फिर उसकी देखादेखी वान्या और वीत्या भी कुर्सियों पर खड़े हो गये। आर्सेनी रोमानोविच सिर के ऊपर हाथ ऊंचे उठाकर तालियां बजा रहा था और उसकी हल्की सुरमई सी लटें उनकी ताल पर हिल रही थीं। पारावुकिन जाने क्यों अपना जतन से तह किया हुआ रूमाल ही हिलाता जा रहा था। लीज़ा बेटे की ओर देखती हुई तालियां बजा रही थी, वह इस ताक में थी कि कब बेटा उसकी ओर मुंह मोड़े और वह उसे कुर्सी से उतर जाने

का इशारा करे। ओज़्नोबिशिन भी बड़े सलीके से अपनी छोटी सी हथेली पर उंगलियों से ताली बजा रहा था।

मंच पर अभिनेताओं ने अपना अर्द्धचंद्र तोड़कर इज़्वेकोव को घेर लिया। वे भी तालियां बजा रहे थे और किरील को मंच से जाने नहीं दे रहे थे। अठारहवीं सदी के रंग-बिरंगे आतलसी, रेशमी और मखमली परिधानों के बीच किरील की खाकी कमीज़ बिल्कुल अटपटी लग रही थी। पाउडर लगे विगों के बीच अकेला वही काले बालों वाला था। अपने स्वाभाविक रूप पर उसे संकोच हो रहा था, मानो अकेले उसने ही ताम-धाम कर रखा हो और उसके इर्द-गिर्द के मुखौटे स्वाभाविक हों। इस संकोच को छिपाने के लिए उसने हाथ जेब में डाल लिये, पर तुरन्त ही बाहर निकाल लिये और पता नहीं क्यों त्स्वेतुख़िन की ओर हाथ बढ़ाया, उसका मज़बूत हाथ दबाया और फिर हंसती आनोच्का का हाथ पकड़कर ज़ोर से हिलाया।

उसे लगा कि इस क्षण तालियां और भी अधिक ज़ोर से बजने लगीं, और उसने सोचा कि यों हाथ मिलाकर वह हॉल का ध्यान जीत के समाचार से अभिनेताओं पर ले गया है, और यह अक्षम्य भूल है। दृढ़तापूर्वक कदम बढ़ाता हुआ वह मंच से चला गया।

आनोच्का दौड़ी-दौड़ी उसके पास पहुंची। अभी भी हंसते हुए उसने ज़ोर से पूछा:

"ऐसी खबर पाकर तो आप अब यहां रुकेंगे नहीं?"

वह थम गया। पहली बार वह उसकी पाउडर लगी ग्रीवा, उसका अधखुला वक्ष, उसके चमकते से होंठ और उसकी आंखों की नीलिमा, जो मानो पलकों पर फैल गई थी, इतने निकट से देख रहा था। किन्तु इस सारे साज-शृंगार के पीछे से आनोच्का अपनी आश्चर्यजनक स्पष्ट दृष्टि से उसकी ओर देख रही थी–वही आनोच्का, जिसे वह सदा अपनी कल्पना में देखा करता था, वह आनोच्का जिसे कोई भी मेक-अप उसकी नजरों में न कम खूबसूरत बना सकता था, न अधिक, और जो धड़कते दिल से उसके उत्तर की प्रतीक्षा कर रही थी।

"नहीं, मैं आखिर तक नाटक देखूंगा। बस बीच-बीच में मुझे फ़ोन पर जाना होगा–यहीं पास ही है, दो कमरे छोड़कर।"

वह थोड़ी देर चुप खड़ा रहा। शृंगार के पीछे से, मानो थोड़ी-

थोड़ी धूल जमे शीशे के पीछे से उसने आनोच्का का जो रूप देखा था, उससे नजरें हटाने का उसका जी नहीं चाहता था।

"कितनी अच्छी लग रही हैं आप!" उसने कहा।

वह थोड़ा परे हट गई।

"आप और किसी को फ़ोन पर बिठा दीजिये," वह बोली। "मुझे खुद वहां होना चाहिए।"

"तो फिर हॉल में अपनी जगह किसी को बिठा दीजिये, ताकि आपको यह बता दें कि मेरा खेल कितना बेकार रहा।"

"मैं सिर्फ़ इंटरवल में ही जाऊंगा," वह मुस्कराया।

आनोच्का के चेहरे के भाव में लेशमात्र भी नखरा या नाज़ नहीं था – उसे बस विश्वास नहीं था कि किरील ने गम्भीरतापूर्वक वायदा किया है। दूसरे अभिनेता दूर से उन्हें देख रहे थे। एक मददगार चिल्लाया. रास्ता छोड़ो! किरील ने हौसला बढ़ाने के अंदाज़ में सिर हिलाया और चला गया।

त्स्वेतुखिन ने तुरन्त ही आनोच्का से चलते-चलते पूछा:

"क्या कहता था?"

"अच्छा लग रहा है," आनोच्का ने भी यों ही भावहीन से स्वर में उत्तर दिया।

नाटक के दौरान वह किरील को नहीं देख सकती थी (उसे हॉल में देखते हुए ही डर लगता था), और इंटरवलों में उसकी सीट खाली होती थी। सो वह नहीं जानती थी कि उसने अपना वायदा पूरा किया है या नहीं।

नाटक एक बार जो चल पड़ा, तो फिर आखिर तक उखड़े बिना चलता ही गया। उल्टे, वह दर्शकों को अधिक ही अधिक अच्छा लग रहा था। शायद विजय के समाचार से मनों में उठी उमंग का दर्शकों पर प्रभाव पड़ा था, वे पहले से भी अधिक सहृदय हो गये थे और दबादब तालियां बजा रहे थे, लेकिन अभिनेता लोग दर्शकों की इस सद्भावना को अपनी सफलता का ही परिणाम समझ रहे थे और अपना काम अच्छी तरह विश्वासपूर्वक कर रहे थे।

अंतिम अंक की समाप्ति पर दर्शक और भी अधिक जोश से तालियां बजाने लगे और अभिनेताओं को बुलाने लगे। सब मंच के पास जमा

हो गये। सारे अभिनेता त्स्वेतुखिन को सम्बोधित करके तालियां बजा रहे थे, वह उनकी प्रशंसा में करतल-ध्वनि कर रहा था, आनोच्का का हाथ पकड़कर उसे आगे ला रहा था। अभिनेताओं ने न जाने कितनी बार कमर तक झुक-झुककर दर्शकों का आभार प्रकट किया।

पाराबुकिन गर्व से खड़ा था, यह प्रतीक्षा करता कि कब लोग उसे बधाइयां देंगे। सबसे पहले दोरोगोमीलोव ने बड़े जोश से उससे हाथ मिलाया।

"देखा आपने! क्या कहने हैं! होनहार है लड़की! होनहार! अपने घर पर ही ऐसा हुनर मिल गया, है न? सब त्स्वेतुखिन का कमाल है! कितनी बढ़िया मिसाल है!"

पाराबुकिन अपने जाने कब से खुल गये और बिल्कुल भीग गये रूमाल से माथा पोंछते हुए सिर हिला रहा था और अर्थपूर्ण ढंग से खांस रहा था। बेटे का हाथ पकड़कर और भीड़ में से उसे अपनी ओर खींचते हुए वह उस पर झुक गया:

"अरे पाव्लिक, अब तो हम लखपती बन जायेंगे, लखपती! येगोर पाव्लोविच तेरी बहन पर सोने की बौछार कर देगा!"

लीज़ा टकटकी लगाये फ़ुटलाइटों के पास आती और फिर पर्दे के पीछे जाती आनोच्का को देख रही थी। इस क्षण उसे न ओज़्नोबिशिन की सुध थी, जो बड़े धीरज से उसकी प्रतीक्षा कर रहा था और न ही वीत्या की। पहले की ही भांति वह अपने आप से पूछ रही थी— इस लड़की में ऐसे संघर्ष में कूदने और उसमें विजयी होने का साहस कहां से आया? और पहले की ही भांति वह इस प्रश्न का उत्तर नहीं पा रही थी। तभी बिल्कुल पास ही खड़े किरील पर उसकी नज़र पड़ी।

वह पंजों के बल खड़ा होकर वेरा निकान्द्रोव्ना के कंधे के पीछे से मंच की ओर देख रहा था। उसके होंठ फड़क रहे थे। प्रत्यक्षत: वह निष्पक्ष निर्णायक बना रहना चाहता था, जबकि उसकी भावनाएं उसे बहाये लिए जा रही थीं, और इस द्वंद्व में हर्ष की चिनगारियां फूटी पड़ रही थीं। उसे मानो यह आभास हुआ कि कोई उसकी ओर देख रहा है, बेचैन सा वह मुड़ा और लीज़ा को देखकर सकपका गया। भीड़ को चीरता हुआ उसके पास गया और उसका अभिवादन किया।

"आप भी आनोच्का के खेल से प्रसन्न लगते हैं," लीज़ा ने कहा।

"मुझे तो लगता है कि पूरा नया थियेटर ही तैयार हो गया है। मैंने सोचा तक न था कि त्स्वेतुखिन इतनी अच्छी तरह सब कर लेगा। देखिये तो सैनिकों को कितना पसन्द आया है।"

"खास तौर पर आनोच्का, है न?" लीज़ा अपनी ही बात पर अड़ी हुई थी।

"हां," किरील ने अनिश्चित से स्वर में कहा। "ऐसे सीधे-सादे दर्शकों के लिए खेलना आसान है।"

"मुझे लगता है, आसान नहीं है। खेल ऐसा होना चाहिए कि सब कुछ समझ में आये।"

"समझाने को है क्या? लोग खुद ही सब समझते हैं", किरील ने कहा, फिर पल भर को मानो अपने किसी विचार पर रुककर सहसा बोला: "वैसे इस मतलब में आपका कहना सही है कि ऐसा नाटक पेश करना ज़्यादा आसान है, जिसमें किसी को कुछ समझ में न आये।"

अभी भी खासा शोर हो रहा था और वे दोनों ज़ोर-ज़ोर से बातें कर रहे थे। वे इतने पास-पास खड़े थे कि उनके कंधे एक दूसरे को छू रहे थे।

"मुझे खुशी है कि आप से मुलाकात हो गई," लीज़ा ने कहा।

"मुझे भी।"

"मैं आपके पास आने की हिम्मत नहीं जुटा पा रही थी, आपका शुक्रिया अदा करना चाहती थी।"

"शुक्रिया किस बात का?"

"पिता जी की मदद के लिए। वह दो हफ़्ते से घर पर हैं।"

"वह... अच्छा! समझा। पर इसमें मेरा कोई हाथ नहीं।"

"यह सच नहीं!"

वह हंस पड़ा।

"मैं दूसरों के किये का श्रेय क्यों लूं? यह सब रागोज़िन ने किया है। वह तो आपके पिता जी को जानता है।"

"पर यह बात सच नहीं। मैंने भी सुना था कि रागोज़िन ने मदद की है। मेरे पति आभार प्रकट करने गये थे। पर रागोज़िन ने कहा कि उसे इस मामले की खबर तक नहीं और उन्हें भगा दिया।"

"सख्त आदमी है," किरील फिर से हंसा, "और वह भी परोपकार करनेवालों में नहीं है। वैसे मेरे ख्याल में आपके पिता जी पर किसी का कोई उपकार नहीं है। उन्हें अपने किये की जितनी सजा मिलनी थी मिल गई।"

लीज़ा ने जहां तक सम्भव था किरील के कंधे से अपना कंधा परे हटा लिया, और चुपचाप उसकी आंखों में झांकती रही।

"आपने सदा की भांति बेटी का कर्तव्य निभाया है, आपको इस पर संतोष होना चाहिए। और क्या चाहिए?"

"यह क्या है? पुराना बदला?" लीज़ा ने कड़वा घूंट भरते हुए कहा।

"यह सच्चाई है," किरील ने रुखाई से कहा और इधर-उधर नज़र दौड़ाई। "लगता है अब अभिनेता नहीं निकलेंगे। चलना चाहिए।"

उसने जल्दी-जल्दी विदा ली।

हॉल में सचमुच ही शोर कम हो गया था, पर अभी भी काफ़ी लोग तालियां बजा रहे थे, सो त्स्वेतुखिन आनोच्का का हाथ पकड़कर आखिरी बार उसे पर्दे से बाहर लाया।

आनोच्का के चेहरे पर ऐसा भाव था, मानो इस अप्रत्याशित सफलता का नशा अभी उतरा न हो—उसकी मुस्कान जड़ सी लगती थी और उसकी कमर में लचक नहीं रही थी! बढ़ती चिंता के साथ उसकी नज़रें किरील को ढूंढ रही थीं और बढ़ती निराशा के साथ वह पर्दे के पीछे लौट रही थी।

अंततः वह अपने बिल्कुल छोटे से ड्रेसिंग रूम में दौड़ी आई, कुर्सी पर ढह ही गई और आंखें मूंद लीं। एकांत के अनमोल क्षणों में देखे उसके सपने सच हुए थे—वह नायिका बनी थी, वह सफल रहीं थी! पर अब उसे बेइंतिहा थकावट और अजीब सी उदासी के अलावा और कुछ महसूस नहीं हो रहा था। वह इतनी निढाल थी कि उसका रोने को जी हो रहा था।

उसने गहरी सांस ली ही थी कि दरवाज़े पर ज़ोर से भड़भड़ हुई और तुरन्त ही वह खुल गया।

त्स्वेतुखिन अंदर दौड़ा आया। उसने झटके से अपना विग उतारा, चोटी से उसे पकड़ लिया और सिर के ऊपर यों घुमाने लगा, जैसे

वह किसी जीत का इनाम हो। आनोच्का से कदम भर की दूरी पर आकर उसने बांहें फैलाई:

"भई वाह, कमाल कर दिया तुमने! जी करता है तुम्हें चूम लूं!"

आनोच्का की सारी थकावट पलक झपकते ही गायब हो गई। कुर्सी पीछे ठुकराकर वह उठ खड़ी हुई। लपककर उसने त्स्वेतुख़िन के गले में बांहें डालीं। उसने आनोच्का को बांहों में भरा और होंठों पर चूमा, फिर मुंह परे हटाकर बोला:

"एक बार फिर, मेरी प्यारी एक्ट्रेस!"

आनोच्का ने ख़ुद उसे चूमा। त्स्वेतुख़िन ने फिर से मुंह से उसके होंठ टटोल लिये। वह पीछे हटना चाहती थी, पर त्स्वेतुख़िन ने उसका सिर अपनी मुड़ी बांह में दबोच लिया। आनोच्का ने अपने आप को छुड़ा ही लिया। त्स्वेतुख़िन जल्दी-जल्दी बुदबुदाया:

"एक बार फिर... चलो न!"

आनोच्का ने उसकी काली आंखों में कोई नया, भयावह भाव देखा।

वह झुकी और कुर्सी उठाकर अपनी मेज़ के सामने बैठ गई – त्स्वेतुख़िन की ओर पीठ करके। शीशे में वह देख रही थी कैसे वह अपना माथा पोंछ रहा था, जो स्पष्टतया दो भागों में बंटा हुआ था – ऊपर वाला संवलाया सा था और उसके ऊपर खिचड़ी बाल थे, निचला भाग मेक-अप के कारण नारंगी सा था, मेक-अप से उसकी झुर्रियां और भी उभर आई लगती थीं।

"येगोर पाव्लोविच, अब आप जाइये। मुझे कपड़े बदलने हैं।"

त्स्वेतुख़िन पल भर को खड़ा रहा। सहसा उसने विग यों हिलाया मानो फेंकने लगा हो, फिर मुड़ा और अपने पीछे हौले से दरवाज़ा बंद करके चला गया।

आनोच्का बुत बनी थी। फिर से वह निढाल हो गई थी, और चाहकर भी हाथ नहीं उठा पा रही थी, ताकि सुइयां निकालकर टोपी उतारे। हॉल के शोर और नेपथ्य के विचित्र एकांत की सीमा पर ही उसे अभूतपूर्व और जोखिम भरे नये जीवन के आरम्भ की अनुभूति हो रही थी।

सहसा एक नीचा सा नारी स्वर सुनाई दिया। आनोच्का उसे पहचान गई और कपड़े बदलने लगी।

"अरे कहां जा छिपीं, मेरी जान?" आग्निया ल्वोव्ना चहकती आ रही थी। "यहां तुम्हें बधाइयां देने आ रहे हैं, और तुम कहां भाग गई हो!"

वह ड्रेसिंग रूम में घुस आई, कुर्सी पर बैठी आनोच्का को पीछे से बांहों में भरा और उसके कान, गर्दन और गाल पर बोसे बरसाने लगी।

"भई मानना होगा, मानना होगा!" चुम्मों के बीच-बीच में वह चहकती जाती। "बड़ी ही प्यारी रहीं तुम, और ऐसी स्वाभाविक कलात्मकता थी! ईमान कसम मैंने तो सोचा तक न था! वैसे तो जान, अभी तुम्हारे खेल में वह भावनाओं का तूफ़ान नहीं है। पर कल की बच्ची से इसकी उम्मीद ही कैसे की जा सकती है! हां, नाराज़ मत होना, मेरी जान! और फिर, बेशक, अभी तुम्हारे अभिनय में कौशल नहीं छलकता! मैंने रंगमंच पर उतरने के चार साल बाद कहीं लुईज़ा का पार्ट अदा किया। ओह, कैसी बावली हो उठी थी जनता! भुलाये न भूलूंगी! और तुम चाहती हो कि पहली बार में ही सब कुछ हो जाये! बेशक, अभी तुम्हारे अभिनय में गहराई नहीं आ सकती! पर तुम दुखी मत होओ, और हां देखो बिसूरने मत लगना। सबसे बड़ी बात है कि बड़ा प्यारा रहा और जनता को पसन्द आया। कौशल तो समय के साथ आ जायेगा, और जहां तक भावनाओं का सवाल है..."

इतना कहते हुए उसने अपना जलता गाल आनोच्का के कान से सटाया:

"इस मामले में येगोर पाव्लोविच की बातों में मत आ जाना।"

"यह आप क्या कहती हैं?!" आनोच्का झटके से परे हटी।

"अरी छोरी, मैं उसे जानती नहीं क्या? अभी आता होगा, चुम्मा-चाटी करने लगेगा! फिर तुम्हारे आगे अपना दुखड़ा रोने लगेगा। कहेगा कि मैंने उसका जीना हराम कर रखा है, कि अकेली तुम ही उसे मेरे चंगुल से छुड़ा सकती हो, उसे तबाह होने से बचा सकती हो। किसी बात पर विश्वास मत करना! यह सब ढोंग है और बकवास!

वह तो बस लम्पट है, और कुछ नहीं! और अगर मेरी लगाम न होती, तो वह कभी भी त्स्वेतुखिन न बन पाता, बस यों ही लौंडियों के चक्कर में घूमता-फिरता! मैंने ही उसे बड़ी हस्ती बनाया है!"

आनोच्का इसका प्रतिकार करना चाहती थी, यह शब्द-जाल, जो उसे लपेटे जा रहा था, उससे मुक्त होने की कोशिश में वह उठ भी गई, पर आग्निया ल्वोव्ना ने अपनी हथेली से उसका मुंह कसकर बंद कर दिया और उससे बिल्कुल सटकर मंत्र पढ़ती सपेरिन की तरह धीरे-धीरे बोली:

"याद रख ले! अगर तू मेरे येगोर के बहकावे में आ गई, तो मैं तेरा जीना हराम कर दूंगी!"

इसी क्षण वह ठहाका मारकर हंसी और फिर से अपनी गाती आवाज़ में बोली:

"मेरी जान, अभी से घमंड मत करने लगो! देखो तो जनता तुमसे मिलने आई है, जैसे वो मजूसी बाल यीशू की पूजा करने! लगता है तुम्हारे पिता जी की अगुआई में। और तुम दर्शन नहीं देना चाहतीं। देखो तो। लो स्वागत करो। मैं चली येगोर पाव्लोविच के पास!"

जनता-वनता कोई नहीं थी, हां पारावुकिन और पाव्लिक गलियारे में से सचमुच झांक रहे थे। इस बीच न जाने कहां पारावुकिन गला तर कर आया था। शायद वह अपने साथ जेब में शीशी लेता आया था कि कहीं ज़्यादा उत्तेजित हुआ तो काम आयेगी, और वह वाकई काम आई थी।

"आनोच्का! मेरी प्यारी बेटी!" अंदर आकर हांफता हुआ सा वह बोला। "मुझे तो अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा था! क्या यह तुम ही थी? मेरे तो आंसू ही टपक पड़े! कबूल करता हूं। दिल भर आया! जरा सोचो तो किसका दिल! पारावुकिन का! इतने बड़े बलवान का! बाप को भलमानसी के रास्ते पर ला रही हो। बहुत-बहुत शुक्रगुजार हूं तुम्हारा!"

पहले वह कमर तक झुका और फिर बेटी को प्यार देने लगा।

"तुम्हारी खातिर मैं अपने बाकी दिन एक थियेटर से दूसरे थियेटर का चक्कर काटने बिताने को तैयार हूं! जहां तुम जाओगी, वहीं

मैं भी। तुम्हारे लिए पर्दा खोलूंगा! हुक्म दोगी, तो तुम्हारी पोशाकों पर इस्तरी करूंगा। और पाव्लिक तो अब तुम्हारे ज़िम्मे है। हां, बस, तुम्हीं उसके लिए मां हो। बेचारी मां को यह खुशी का दिन देखना नसीब न था। वह भी आज खुशी के आंसू बहाती!"

"अच्छा, पिता जी, जाइये अब। बाहर खड़े होइये, मैं अभी आती हूं।"

पाराबुकिन ने रहस्यमय ढंग से उंगली हिलाई।

"मैं खड़ा नहीं रह सकता, खड़ा कोई और होना चाहता है। बाहर वाले दरवाज़े के पास..."

वह हौले से आनोच्का की ओर झुका:

"कामरेड इज़्वेकोव है!"

"कहां?" आनोच्का प्रायः चीख उठी।

"चलो, मैं दिखाता हूं," पाव्लिक ने बड़े उत्साह से कहा।

लेकिन वह उनकी ओर देखे बिना ही दौड़ चली, गलियारों को पार करती हुई वह हॉल के दरवाजे के पास रुकी। यहां कोई नहीं था। उसने चुपके से दरवाजा खोला।

सीढ़ियों के ऐन सिरे पर, जो लाल पर्दे द्वारा हाल से अलग किया हुआ था, पिंजरे में बंद चीते की तरह किरील आगे-पीछे तीन-तीन कदम नाप रहा था।

"आप अभी तैयार नहीं हुई?" उसने खुश होते हुए पूछा।

"आप कहां थे?" मुश्किल से सांस लेते हुए आनोच्का ने पूछा।

"मैं कहीं नहीं गया था।"

"मैंने आपको देखा नहीं।"

"पर मैं आपको देखता रहा हूं। मेरे ख्याल में ऐसे ही होना चाहिए। जल्दी से मेक-अप साफ़ कीजिये। मैं आपको घर पहुंचाना चाहता हूं।"

"अगर आप जल्दी में हैं, तो मैं आपको नहीं रोकूंगी!"

"मैं चाहता हूं कि हमारे पास ज़्यादा समय हो।"

लेकिन वह मानो किरील की बात नहीं सुन रही थी, और सहसा वह बच्चों की भांति हताश हो उठी, उसकी आंखें डबडबा आईं और उसके मुंह से दीनता भरे उलाहने निकलने लगे:

"जाइये, जाइये यहां से! अगर आप के पास वक्त नहीं है... मैंने सोचा भी नहीं था कि आप मेरा इंतज़ार करें, मेरे लिए अपना काम छोड़ें। जाइये, अपना काम कीजिये। जाते क्यों नहीं?"

किरील ने उसके हाथ दबाये।

"सुनो तो, सुनो तो," असहाय सा मुस्कराता हुआ वह कहने लगा। "ऐसा शुभ दिन है आज! सच!"

आनोच्का की मानो चेतना लौट आई। किरील का इतना भावभीना स्वर उसने पहले कभी नहीं सुना था।

"यह सब तुम्हारी खुशी की वजह से है, है न? रोओ नहीं, आनोच्का, रोओ नहीं!"

आनोच्का की आंखें अभी भी डबडबाई हुई थीं, परन्तु उसका रोम-रोम एक नई हर्षमय भावना से पुलकित हो उठा था। अब उसने अपने हाथ छुड़ाकर किरील के हाथ दबाये।

"ठहरो, अभी आती हूं!" जल्दी-जल्दी वह फुसफुसाई और जोर से दरवाजा खोलकर दौड़ गई।

दौड़ते-दौड़ते ही टोपी के साथ विग उतारते हुए वह अपने ड्रेसिंग रूम में पहुंची।

"आप जाइये घर, मुझे छोड़ आयेंगे!" पिता और पाव्लिक को कमरे से बाहर करते हुए वह कह रही थी, पर साथ ही भाई से मदद मांगते हुए उन्हें रोक रही थी:

"एप्रन! एप्रन खोलो! अब हुक! पहले ऊपर वाला! जल्दी करो न! डरो नहीं। दोनों तरफ़ से दबा दो, अपने आप खुल जायेंगे। हे भगवान, कैसा बुद्धू है! अच्छा बस, मैं अपने आप कर लूंगी। जाओ, जाओ!"

उसने सिर के ऊपर खींचकर लुईज़ा का परिधान उतारा और चेहरे पर वैसलिन मलकर जल्दी से आनोच्का के आम वस्त्र पहन लिये। तौलिये से मेक-अप पोंछते हुए वह बच्चों की तरह पांव झटक रही थी—जूतियां उतारने के लिए। सबसे ज़्यादा वक्त उसे अपने जूतों के तस्मे बांधने में लगा। वह बुरी तरह से झुंझला रही थी, कैसा बेहूदा फ़ैशन है—कपड़े के जूते, जिनमें घुटनों तक छल्लों में तस्मा बांधना पड़ता है। लेकिन आखिर यह झंझट भी खत्म हो गया। उसने

अपना हल्का सा ओवरकोट ओढ़ा, कील पर टंगी वैरट को गेंद की तरह उछालकर पकड़ा और बाहर निकल आई। सौभाग्यवश, रास्ते में कोई नहीं मिला।

शरद ऋतु की अंधेरी रात में जब किरील आनोच्का के साथ बाहर निकला, तब तक दर्शकों की भीड़ छंट चुकी थी और सड़कें खाली थीं। उन्होंने लम्बी बैरक पार की और मोड़ के पीछे उन्हें कार की झलक दिखाई दी।

"कार?" आनोच्का स्पष्टतया निराशा भरे स्वर में बोली। "फिर से पल भर में अलविदा?"

किरील ने उसका हाथ पकड़कर खींचा।

"धीमी चाल से पुराने गिरजे की ओर ले चलिये," उसने ड्राइवर से कहा।

इसका मतलब था वे सारा शहर पार करेंगे।

हवा चल रही थी, पर कार में ठंड नहीं थी। जब वे कार में बैठ रहे थे, तो अगली और पिछली सीटों के बीच लगे शीशे में उनकी सभी गतियां प्रतिबिम्बित हुईं, जैसे कि वहां दर्पण लगा हो। बैठ जाने पर आनोच्का ने किरील का सिर अपने बिल्कुल पास ही देखा। शीशे में दोनों हौले-हौले हिल रहे थे और आनोच्का इस अस्पष्ट से, कंपकंपाते प्रतिबिम्ब से नज़रें नहीं हटा पा रही थी। दरवाज़े की झिरी में से ठंडी, चुभती हवा लहराती डोर सी आ रही थी, सीट के नीचे किसी चीज़ से एकसार ऊंचे सुर में झंकार सी हो रही थी और इंजन की उनींदी घरघराहट सुनाई दे रही थी।

दिन भर की उदासी, भय, व्यथा और आशाओं के बाद, शाम की विजय, सूनेपन, अपमान, ठेस, आंसुओं और हर्षोल्लास के बाद अब आनोच्का एक विचित्र शांति अनुभव कर रही थी। यह कुछ ऐसा था जैसे वह बेहोश हो गई हो और किसी ने बड़े ध्यान से उसे बिस्तर में लिटा दिया हो और कान में कोई प्यारा शब्द कहा हो। वह इतनी शांत थी कि इस विचित्र परिवर्तन पर उसे ज़रा भी आश्चर्य नहीं हो रहा था। उसे लग रहा था कि सब कुछ ऐसे ही तो होना चाहिए, मानो वह सैकड़ों बार यों ही किरील के बगल में कार में बैठी हो, और कंधे से घुटने तक उसका सारा शरीर सैकड़ों बार किरील

का स्पर्श पा चुका हो। यह सब उसे बिल्कुल स्वाभाविक लग रहा था, वह और कुछ नही चाहती थी, बस ऐसे ही वे कार में जाते जायें, जाते जायें।

सारे रास्ते कोई नहीं मिला, खिड़कियों से बाहर कुछ दिखाई नही देता था और ड्राइवर ने एक बार भी हार्न नहीं बजाया। ताजी हवा की डोर सीधे चेहरे को छू रही थी और लगता था जैसे यही ऊंचे सुर मे झंकृत हो रही हो।

नगर के केन्द्र में जब कार तारकोल की पक्की सड़क पर ऐसे चलने लगी, जैसे पटरे पर इस्तरी, तब आनोच्का ने हौले से कहा:

"आज मुझे याद आ रहा था कैसे जब स्कूल में पढ़ती थी, तो सहेलियों के साथ थियेटर जाया करती थी। सबसे सस्ते टिकट लेकर ऊपर गैलरी में हम बैठती थीं। एक अभिनेत्री थी हम सबकी चहेती। आप तब यहां नहीं थे।"

"आप?" किरील ने मानो मजाक में कहा।

वह थोडी देर सोचती रही। किरील का हाथ पकड़कर और उससे उसका घुटना ज़रा दबाकर वह सहज ही आगे बोलने लगी:

"तुम तब यहां नही थे... तुम उसे नहीं जानते... हम लड़कियां जब उसका कोई पार्ट देखकर दीवानी हो उठती थीं, तो हम सब की सब बिल्कुल उसके जैसी ही बनना चाहती थीं। अब मैं चाहती हूं कि सब मेरे जैसी हों, कि सब वैसे ही महसूस करें, जैसे मैं इस वक्त कर रही हूं।"

किरील ने कुछ जवाब नहीं दिया, वह बस उसकी ओर मुड़कर उसे देखने लगा। कार ज़रा भी धचके खाये बिना चलती जा रही थी। फिर पक्की सड़क खत्म हो गई और शीशे में बनते अक्स फिर से डोलने लगे।

"तुम्हें त्स्वेतुखिन अच्छा लगा?" आनोच्का ने पूछा।

"हां! मुझे उम्मीद भी नहीं थी कि वह इतना अच्छा अभिनय करेगा। एक नाटक के बाद मुझे उससे चिढ़ हो गई थी... मेरे निर्वासन से पहले की बात है।"

आनोच्का काफ़ी देर तक चुप रही।

"मैं शायद जल्दी ही उसकी मण्डली छोड़ दूंगी।"

अब किरील चुप था, वह समझ नहीं पा रहा था कि आनोच्का क्या कहना चाहती है, बस उसके चेहरे को टकटकी लगाये देखता जा रहा था। आनोच्का उसकी ओर नहीं देख रही थी।

"वह मुझे केवल कला ही नहीं सिखाना चाहता," उसने कहा और बिल्कुल दूसरी ओर मुंह मोड़ लिया।

"मुझे लग रहा था," किरील ने तुरन्त कहा और फिर कुछ रुककर अपने सवाल में ही अपना विश्वास प्रकट करते हुए पूछा: "पर वह ऐसा नहीं कर पायेगा न?"

आनोच्का ने कंधे बिचकाये।

"किधर चलें? दायें, बायें?" शीशे के पीछे से ड्राइवर ने चिल्लाकर कहा।

"रुकिये!"

किरील ने कार का दरवाज़ा खोला। गिरजे के घण्टागार की नुकीली मीनार मटमैले आसमान में काली स्याह लग रही थी। वोल्गा की ओर से बयार की चौड़ी धार बहती आ रही थी।

"चलो, उतरते हैं!"

वे चौक में पहुंच गये थे। वोल्गा से आती बयार में नदी किनारे की काई, पुराने गलते रस्से, लकड़ी, अलकतरा और मशीन का तेल – इन सबकी गंधें मिली हुई थीं।

"वाह, कितना अच्छा लग रहा है!" किरील ने कहा और आनोच्का का हाथ कसकर पकड़ लिया।

वे ढलान पर नदी की ओर उतरने लगे। दूर नदी पर टिमटिमाते प्लव दिखाई दिये, कोई छोटा सा स्टीमर बहाव से जूझता बढ़ रहा था, उसकी बत्तियां कभी चमक उठतीं, कभी मानो आंसुओं से धुंधली पड़ जातीं।

वे ऐन तट तक नहीं गये, कगार पर ही रुक गये, उनके सामने नदी का विशाल पाट था, जो कहीं-कहीं सीसे सा चमक रहा था। लहरों की छपछप और किनारे पर औंधी पड़ी नावों की सूखी लकड़ी में हवा से होती चरमराहट कानों में पड़ रही थी।

आनोच्का बिल्कुल शांत थी और किरील ने जब उसे बांह में भरा, तो वह उससे सट गई।

"मैं इस अंधकार में नजर दौड़ाता हूं और मुझे असंख्य रोशनियां और अनगिनत लोग दीख पड़ते हैं, आवाजें ही आवाजें सुनाई देती हैं," किरील ने कहा। "तुम्हें कैसा लगता है?"

"क्या कारण है कि जब भी हम किसी अच्छी बात की चर्चा करते हैं, तो सदा यही सोचते हैं कि भविष्य में क्या होगा?"

"ताकि हम ऐसे भविष्य की ओर बढ़ें, जो अधिक अच्छा होगा।"

"पर ऐसा भी तो होता है कि अभी जो है वही अधिक अच्छा है? मैं इस अंधेरे विस्तार में देख रही हूं और मुझे यही सबसे अच्छा लग रहा है। और अब मैं इससे अधिक अच्छा कुछ नहीं चाहती।"

"मैं भी," किरील ने कहा और अपना आलिंगन और कस लिया।

"मुझे लगता है मैंने ऐसी रात कभी नहीं देखी।"

"मैंने भी।"

"और ऐसी हवा भी कभी नहीं बही।"

"हां।"

"पर देखो, फिर भी कितनी शांति है।"

"सच। जाने को मन नहीं करता!"

"इतनी जल्दी?"

"मन दुखता है, पर क्या किया जाये? जाना चाहिए।"

"और कब यह खत्म होगा?"

"क्या?"

"यह सदा का 'चाहिए'।"

"मेरी बात सुनो। और मुझे जवाब देना। तुम्हारा जवाब मेरे लिए बहुत जरूरी है। ठीक है?"

"अच्छा।"

"तो सुनो। कोई भी उड़ान धरती के बिना नहीं हो सकती। उड़ने के लिए ठोस जमीन चाहिए। आजकल हम यह ज़मीन जीतने में ही लगे हुए हैं। हम भविष्य की उड़ान का मैदान बना रहे हैं। यह बड़ा मुश्किल और लंबा काम है। शायद सभी कामों से मुश्किल काम है यह। इसके लिए हमें सुख-सुविधाओं को भूलना होगा। जरूरी हुआ तो हम अपने हाथों से ज़मीन खोदेंगे, अपने नाखूनों से इसे भुरभुरा

करेंगे, नंगे पांवों इसे कूटेंगे। और तब तक पीछे नहीं हटेंगे, जब तक कि हमारी उड़ान का मैदान तैयार नहीं हो जाता। हमारे पास आराम करने का समय नहीं है। कभी-कभी तो मुस्कराने भर की फ़ुरसत नहीं मिलती। हमें जल्दी करनी चाहिए। शायद, इस काम ने ही हमें इतना रूखा बना दिया है। कभी-कभी तो मैं अपने आप को वो हौआ लगने लगता हूं, जिसका बच्चों को डर दिखाते हैं, इतना नीरस हो जाता हूं। मैं मज़ाक नहीं कर रहा। पर मैं अपने आप को बदल भी नहीं सकता। मैं तब तक ज़मीन कूटता रहूंगा जब तक कि वह उड़ान की दौड़ भरने के लिए तैयार नहीं हो जायेगी। ताकि फिर इतनी ऊंची उड़ान भरी जा सके, जिसकी लोगों ने कल्पना भी नहीं की है। यह ऊंचाई सदा मेरी आंखों के सामने रहती है, हर पल, – विश्वास है तुम्हें मेरी बात पर? मैं टीले खोदता जाता हूं, गड्ढे पाटता हूं, और नज़रें ऊपर ही लगी रहती हैं! और मैं लोगों को, उनके साथ स्वयं को भी बिल्कुल दूसरा, नया मनुष्य बना देखता हूं। और मैं बिल्कुल भी हौआ नहीं। तुम्हें विश्वास है मेरी बात पर?"

जब वह बोल रहा था, तो आनोच्का उससे परे हट गई थी, ताकि अंधकार में उसका चेहरा अच्छी तरह देख सके, पर जब उसने बोलना बंद किया, तो वह मुस्करा उठी, क्योंकि हौए की बात उसने बहुत ही गम्भीरता से कही थी।

"किस बात का जवाब दूं? हौआ हो कि नहीं?"

"तुमने पूछा था कब अंत होगा। मुझे पता नहीं। जल्दी नहीं। पर बहुत जल्दी भी हो सकता है।"

"मैं समझी नहीं।"

"तुम यह नहीं देख पाती हो कि मेरा यह 'चाहिए-चाहिए' कब खत्म होगा, क्योंकि मेरा यह 'चाहिए' तुम्हारा नहीं है। अगर यह तुम्हारा भी होगा और मेरा भी, तब तुम्हें इस बात की खास परवाह नहीं होगी कि कब इसका अंत होगा।"

"लेकिन इससे यह अंत जल्दी तो नहीं आ जायेगा?" आनोच्का फिर से मुस्कराई।

किरील भी मुस्कराया:

"थोड़ी सी जल्दी आ जायेगा। ज़मीन खोदनेवालों में एक और

आदमी जो मिल जायेगा... तो यही मेरा सवाल है। तुम मेरे साथ भविष्य की उड़ान का मैदान बनाना चाहती हो?"

"मैं तो सोच रही थी कि... हम बनाना शुरू कर चुके हैं?" आनोच्का ने एक तिरछी नजर उस पर डालकर और फिर आंखें चुराते हुए बड़े हौले से कहा।

वह ज़ोर से हंसा, आनोच्का को रास्ते की ओर घुमाकर जल्दी-जल्दी उसे ऊपर ले चला।

किरील उसे उसके घर ले गया, दरवाज़े तक छोड़ने गया और उन्होंने विदा ली—शीघ्र ही फिर मिलने का वायदा करके।

आनोच्का अंदर पहुंची ही थी कि उसका बाप और भाई भी आ गये। वह किसी से बात नहीं करना चाहती थी, पर पाराबुकिन फिर से उसे बधाइयां देने लगा। ठंडी हवा में नशा सिर पर और चढ़ गया था।

"माफ़ करना, बेटी, पर मुझे बिल्कुल विश्वास न था कि सब कुछ इतना अच्छा होगा। सोचता था कहां यह इतना ऊंचे पहुंच पायेगी! थियेटर का सितारा! तीख़ोन पाराबुकिन की बेटी सितारा बनेगी! मैं तो सोचता था बस यों ही होगी कामचलाऊ एक्ट्रेस... पर आज देखा, लोग वाहवाही कर रहे हैं! मुझ को भी देख रहे थे कि देखो इसी की बेटी है! बधाई हो, बिटिया, दिल ख़ुश कर दिया।"

यह कहते हुए पाराबुकिन ने ताली बजाई।

"और फिर मेरा पापी मन येगोर पाव्लोविच पर भी भरोसा नहीं करता था। सोचता था, पता नहीं किस फेर में है यह? बेचारी भोली-भाली लड़की का न जाने क्या करे? पर अब देख लिया मैंने, अपने पैरों पर खड़ा कर रहा है, सही रास्ते पर ले जा रहा है! बधाई हो!"

"बस, पिता जी, अभी बहुत हुई बधाइयां! बाद में और देनी होंगी।"

"हां, हां समझता हूं, जब थियेटर में तुम्हारा सितारा और चमकेगा!"

"हां, थियेटर में भी, और भी कहीं!"

पाराबुकिन तुरन्त ही नहीं समझ पाया कि बात क्या है, और

काफ़ी देर तक बेटी की पीठ ठोंकता रहा, बधाइयां देता रहा। फिर सहसा कुछ समझ गया और मानो उस पर वज्रपात हुआ, वह कुर्सी पर ढह गया और चिल्लाया:

"पाव्लिक! इधर आ! क्या कहा था मैंने तुझे? कहा था न त्स्वेतुखिन तेरी बहन पर सोने की बौछार करेगा? कहा था न? इधर आ, बता दे आनोच्का को कहा था कि नहीं? येगोर पाव्लोविच आनोच्का से शादी कर रहा है! है न? हैं? ठीक है न?"

फिर वह सहसा हक्का-बक्का हो गया:

"कैसे कर सकता है वह? अपनी घरवाली के होते? क्या है यह सब? तलाक? मैं पूछ रहा हूं, क्या वह तलाक देगा, हैं?"

"यह सब तो आपके दिमाग की उपज है!" आनोच्का ने कहा। "सो जाइये अब।"

"क्या मतलब दिमाग की उपज? तो फिर यह क्यों कहती हो कि बधाई दूं? दिमाग की उपज! नहीं, दाल में कुछ काला है! मैं कब से देख रहा हूं। मेरे क्या आंखें नहीं हैं? तेरा बाप अंधा है या आंखोंवाला? अंधा है क्या?.. ठहर तो! नहीं, नामुमकिन," — वह और भी ज़ोर से चिल्लाया और उछल खड़ा हुआ। "इज़्वेकोव? हैं?"

वह आंखें फाड़-फाड़कर बेटी की ओर देख रहा था। उसकी मुट्ठियां मेज़ पर टिकी हुई थीं, और दुबला-पतला, सपाट सा धड़ बेटी की ओर झुका हुआ था।

आनोच्का खिलखिलाकर हंसी और अपने कमरे में चली गई — कपड़े बदलने।

"लो, तीख़ोन प्लातोनोविच, मुबारक हो, बेटी बहू बनने चली है!" दरवाज़े के पीछे से पारावुकिन गरज रहा था। "जब तक बाप ने पाला-पोसा, तब तक बाप की ज़रूरत थी। अब बुड्ढे को लात मारकर निकाल दो! बेटी को पढ़ाया-लिखाया, इन्सान बनाया और बेटी खी-खी करती चल दी घर छोड़कर? और भाई को कौन रोटी देगा? कामरेड इज़्वेकोव? ये इज़्वेकोव सारी उम्र तुझे तेरे घर से दूर करते रहे हैं। वे तो सब कुछ अपने ही ढंग से करना चाहते हैं। हमेशा दूसरों को नसीहतें देते रहते हैं। पहले वो मास्टरानी मुझे नसीहतें दिया करती

थी, अब क्या उसका बेटा देगा ? नहीं, तू पहले काम कर, फिर खी-खी करना!' "

आनोच्का काफी देर तक बाप की बड़बड़ सुनती रही। पर वह उसकी बेमतलब बातों को समझने की कोशिश नहीं कर रही थी।

वह अभी सोई नहीं थी। उसे लग रहा था जैसे नींद उसे अपनी गोद में थपथपा रही है और बीती शाम की अलग-अलग आश्चर्यजनक घटनाओं को उसकी आंखों के सामने खोल रही है, जैसे कोई किस्मत बतानेवाला अपनी गड्डी में से ताश के पत्ते निकाल-निकालकर खोलता जाता है। अपने थके-मांदे मस्तिष्क से आनोच्का यह भेद करने का जतन कर रही थी कि इस शाम को उसने क्या पाया है और क्या खोया है। लेकिन आंखों के सामने मिले-जुले, गड्डमड्ड से चित्र अधिकाधिक तेजी से घूम रहे थे और इस भंवर में उसे लग रहा था कि इज़्वेकोव भी उसके साथ नींद की गोद में समा रहा है और बालिश्त भर का त्स्वेतुखिन दूर कहीं, नदी के अंधेरे, असीम पाट से अपना पाउडर लगा विग हिला रहा है।

उसके कानों में जो आखिरी आवाज़ पड़ी, वह थी बिस्तर पर करवटें बदलते बाप की गहरी उसांस:

"बख्शना प्रभु, मुझ हरामी के पिल्ले को!"

उम्र ढलने के साथ-साथ, खास तौर पर पत्नी की मृत्यु के बाद, पारावुकिन दैवी शक्तियों से ख़ौफ़ खाने लगा था – आनोच्का काफ़ी अरसे से यह देख रही थी।

३५

सैनिक कार्रवाइयों का उपसंहार

सितम्बर के तूफ़ानी विप्लव दिनों में सफ़ेद गार्डों ने दक्षिण में अपना अभियान जारी रखते हुए कूर्स्क के इलाके पर कब्ज़ा कर लिया। कुतेपोव की कोर में शामिल चुनिंदा पैदल डिविज़नें उत्तर, उत्तर-पश्चिम और उत्तर-पूर्व की ओर बढ़ने लगीं। कोर्नीलोव की डिविज़नें ओर्योल की ओर बढ़ रही थीं, द्रोज़्दोव की ब्रयान्स्क की ओर, अलेक्सेयेव तथा मार्कोव की डिविजनें येलेत्स की ओर। श्कुरो की

कैवेलरी कोर मामोन्तोव के साथ मिलकर दोन सेना के वायें पार्श्व के साथ संयुक्त कार्रवाइयां करने के उद्देश्य से वोरोनेज की ओर वढ़ रही थी।

अक्तूबर के मध्य में ओर्योल हाथ से जाता रहा और देनीकिन की फ़ौजें तूला को जानेवाली सड़क पर पहुंच गईं, जिससे लाल सेना को गोला-बारूद, बंदूकें और तोपें मुहैया करनेवाले इस नगर के लिए सीधा खतरा पैदा हो गया।

मास्को पर संकट गहराता जा रहा था।

यह देनीकिन की "दक्षिणी रूस की सशस्त्र सेनाओं" की सफलताओं का चरम बिंदु था और साथ ही गृहयुद्ध के मोर्चों पर प्रतिक्रांतिकारी शक्तियों के विरुद्ध सोवियत राज्य के संघर्ष का सबसे अधिक तनावपूर्ण क्षण।

सन् उन्नीस सौ उन्नीस रूस के लिए ऐसी कठिनतम परीक्षा का वर्ष था कि अगर जनता का आत्म-बल टूट जाता, इतिहास ने उस पर जो विपदाएं ढाईं, उनको वह सह न पाती, तो वह न जाने कितनी दशाब्दियों के लिए उस नव जीवन से वंचित हो जाती, जिसके लिए उसने महान समाजवादी क्रांति की थी।

रूस के प्रसिद्ध विस्तारों के वारे में अनेकों वार यह कहा गया है कि वे ही रूस को शत्रुओं के आक्रमणों के दिनों में वचाते रहे हैं, किन्तु अव इनका अधिकांश भाग विभिन्न प्रतिक्रांतिकारी सरकारों और विदेशी हस्तक्षेपकारियों के कब्ज़े में था। गृहयुद्ध जिन दिनों पूरे ज़ोर पर था, उन दिनों सोवियतों के हाथ में केवल रूस के केन्द्र मास्को के आस-पास का भीतरी भाग ही बचा था।

रूस के पास न केवल सुदूर पूर्व और साइवेरिया का असीम विस्तार नहीं वचा था, वल्कि एक समय सारा उराल और वोल्गा पार का प्रायः सारा इलाका भी नहीं था। रूस के पास तुर्किस्तान समेत सारा दक्षिण-पूर्वी भाग तथा काकेशिया, कुवान, दोन के इलाकों और दोनेत्स के मैदान समेत सारा दक्षिणी भाग भी नहीं रहा था। उक्राइना, मोल्दा-विया, वेलोरूस तथा वाल्टिक सागर के तटवर्ती प्रांत उससे अलग कर दिये गये थे। झीलों वाला इलाका तथा सारा उत्तरी इलाका उससे छीन लिया गया था। चारों दिशाओं में कहीं भी रूस के लिए समुद्र का रास्ता नहीं बचा था।

विशाल राज्य को अपनी अधिकांश सम्पदा इन बाहरी भागों से ही प्राप्त होती थी। १९१९ तक प्रतिक्रांतिकारी शक्तियों ने रूस को उसके प्रमुख अन्न क्षेत्र से, उराल के खनिजों से, मध्य एशिया की कपास से, तेल और कोयले से, स्तेपी की और पहाड़ी चरागाहों से, औद्योगिक और इमारती लकड़ी के जंगलों से वंचित कर दिया था।

रूस से छीन ली गई उसकी सारी सम्पदाओं के बदले अब दो राजधानियों समेत उसके भीतरी भाग के पास केवल भूख और ठंड ही बची थी।

और अब शरद ऋतु में शत्रु दक्षिण से मास्को की ओर तथा पश्चिम एवं उत्तर-पूर्व से पेत्रोग्राद की ओर बढ़ता आ रहा था।

पूर्व में कोल्चाक की पराजय के साथ वसंत में एंटेंट का पहला अभियान विफल हो गया था और तब सोवियत रूस के विरोधी पूंजीवादी देशों ने एक दूसरे अभियान की योजना तैयार की – इस बार चारों ओर से जोरदार हमला करके वे क्रांति का गला घोंट देने का इरादा रखते थे। इस अभियान के प्रधान प्रवर्तक, इंगलैंड के फ़ौजी मामलों के मंत्री चर्चिल की योजना के अनुसार सोवियत रूस के खिलाफ़ सैनिक कार्रवाइयां चौदह देशों के संयुक्त प्रयासों द्वारा की जानी थी, जिनमें इंगलैंड, अमरीका, फ़्रांस, जापान, इटली, फ़िनलैंड, पोलैंड तथा सात अन्य देश शामिल थे। किन्तु शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि चौदह देशों का गठजोड़ कुछ कर पाने में असमर्थ है। इसकी निष्फलता के चार प्रमुख कारण थे। एक तो, कोल्चाक की हार से यह पता चल गया कि लाल सेना की शक्ति तेज़ी से बढ़ रही है। दूसरे, अधिकांश छोटे देश, जिन पर एंटेंट की महाशक्तियां इस अभियान को पूरा करने का बोझ डालना चाहती थी, सोवियत राज्य द्वारा घोषित जातियों के आत्म-निर्णय के अधिकार की नीति से लाभ उठाने की आशा रखते थे और इसमें ही अपना हित समझते थे। तीसरे, पश्चिमी यूरोपीय हस्तक्षेपकारियों ने जब सोवियत इलाकों को हथियाने के लिए अपनी फ़ौजों से काम लेने की कोशिश की, तो इन फ़ौजों में असंतोष फैला, साथ ही हस्तक्षेपकारी देशों में मजदूर इसका विरोध करते हुए हड़तालें करने लगे। चौथे, स्वयं इन देशों का रूस के प्रति रुख परस्परविरोधी था, इंगलैंड और फ़्रांस की विदेश नीति में यह विरोध विशेषतः स्पष्ट रूप से

प्रकट होता था: फ़्रांस की सरकार "अविभाज्य" और सशक्त रूस की पुनःस्थापना करनी चाहती थी, जो पराजित जर्मनी के लिए एक स्थायी खतरा हो; जबकि अंग्रेज़ सरकार रूस का विभाजन करना चाहती थी, ताकि एशिया में उसके उपनिवेशों के लिए कोई खतरा न रहे।

चर्चिल चौदह देशों के जिस संयुक्त हमले के सपने देखता था, वह आयोजित नहीं किया जा सका और तब एंटेंट को रूस के आंतरिक प्रतिक्रांतिकारियों को यथासम्भव अधिक समर्थन देकर ही संतोष करना पड़ा। बाज़ी देनीकिन पर लगाई गई – उसे सोवियतों के विरुद्ध एंटेंट के दूसरे अभियान का सूत्रधार बनाया गया।

"दक्षिणी रूस की सशस्त्र सेनाओं" को काले सागर के बंदरगाहों के रास्ते छह महीनों तक लगातार हर तरह के हथियार मिलते रहे। स्वयं देनीकिन ने यह स्वीकार किया था कि सितम्बर तक उसकी सेनाओं को इंगलैंड से साढ़े पांच सौ से अधिक तोपें और लगभग सत्तरह लाख गोले मिल चुके थे। अंग्रेज़ों ने एक लाख बंदूकें, सोलह करोड़ अस्सी लाख कारतूस तथा ढाई लाख वर्दियां भी भेजी थीं। इंगलैंड के साथ मिली-भगत में संयुक्त राज्य अमरीका ने भी देनीकिन को एक लाख बंदूकें तथा बहुत बड़ी संख्या में फ़ौजी वर्दियां दीं। टैंक और हवाई जहाज़ भी भेजे गये। देनीकिन की तिजोरियां पाउंडों और डालरों से भरती जा रही थीं।

उधर लाल सेना केवल स्वदेशी हथियार कारखानों पर ही निर्भर थी और ये कारखाने उसकी युद्धकालीन आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ थे। वसंत में बंदूकों और कारतूसों का उत्पादन १९१७ के अंत की तुलना में एक तिहाई ही रह गया था। १९१९ के पहले चार महीनों के दौरान गोलों का उत्पादन पहले के उत्पादन का पांचवां भाग ही था। इसके कई कारण थे: देश की आम तबाहहाली, कच्चे माल की कमी, युद्ध के लिए मज़दूरों की लामबंदी, टाइफ़स की महामारी में हुई मौतें और देश में फैली भुखमरी। इन दिनों नगरवासियों को दिन में सिर्फ़ आध पाव डबलरोटी ही मिलती थी

तो फिर यह कैसे हुआ कि देनीकिन की सफ़ेद गार्डी फ़ौज की हार हुई और उसका बिल्कुल सफ़ाया कर दिया गया? यह कैसे हुआ कि जब सोवियत रूस से उसके सारे बाहरी इलाके, भूगर्भ की सारी

गम्पदाए और प्राय. मारा अन्न छीन लिया गया था, जब नये-नये शस्त्रास्त्रों से पूरी तरह लैस दुश्मन ने लाल सेना के सबसे महत्वपूर्ण मोर्चे को अथाह गर्त के किनारे ला खड़ा किया था और मास्को पर उसके कब्जे का खतरा पैदा हो गया था, कैसे तब सोवियत रूस ही विजयी हुआ?

सितम्बर के अंत के संकटपूर्ण दिनों में डांवांडोल हो गये दक्षिणी मोर्चे को सुदृढ़ करना ही क्रांतिकारी शक्तियों का सबसे प्रमुख काम था। लेनिन के सुझाव पर रूसी कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति ने पार्टी के अधिकतम सदस्यों को सैनिक कार्यों में लगाने तथा शक्तिशाली रिजर्व टुकड़ियों को दक्षिणी मोर्चे पर भेजने का फ़ैसला किया, दक्षिणी मोर्चे की नई कमान गठित की, स्तालिन को क्रांतिकारी सैनिक परिषद का सदस्य नियुक्त किया। त्सरीत्सिन से नोवोरोस्सीइस्क की ओर हमला करने की गर्मियों की जो योजना नाकाम सिद्ध हो चुकी थी, उसके स्थान पर खार्कोव – दोनबास – रोस्तोव-आन-दोन की लाइन पर देनीकिन की सेनाओं पर प्रमुख प्रहार करने की योजना तैयार की गई।

कम्युनिस्ट पार्टी और युवा कम्युनिस्ट संघ के दसियों हज़ार सदस्य मोर्चे पर गये। एक "पार्टी सप्ताह" घोषित किया गया, जिसमें लाखों मजदूर, किसान और सैनिक पार्टी के सदस्य बने। देश के कोने-कोने में देनीकिन से पिंड छुड़ाने की इच्छा इतनी प्रबल थी कि युदेनिच के फिर से पेत्रोग्राद की ओर बढ़ते आने से पैदा हुई नाजुक स्थिति के बावजूद बाल्टिक बेड़े के एक हजार नौसैनिक दक्षिणी मोर्चे पर लड़ने गये। युवा कम्युनिस्ट संघ की अनेक स्थानीय समितियों के सारे के सारे सदस्य मोर्चे पर चले गये, जगह-जगह समिति कार्यालयों के दरवाजों पर ऐसे पर्चे देखे जा सकते थे: "समिति बंद है। सभी सदस्य मोर्चे पर चले गये"।

इस तरह देनीकिन के विरुद्ध संघर्ष का एक नया पृष्ठ आरम्भ हुआ, वह पृष्ठ जो सारे सफ़ेद गार्डी आंदोलन, सारी प्रतिक्रांति के इतिहास का अंतिम पृष्ठ बना।

इस योजना के क्रियान्वयन के लिए भगीरथ प्रयत्नों और असाधारण संकल्प की आवश्यकता थी। दक्षिणी मोर्चे की कमान को अपना आर-

म्भिक दल प्राय: पूरी तरह उन टुकड़ियों से बनाना पड़ा, जो पहले से ही रणक्षेत्र में थीं। लाल सेना की टुकड़ियों को पीछे हटने से रोकने और उन्हें तुरन्त ही जवाबी हमले में कूदने के लिए पुनर्गठित करने की आवश्यकता थी।

यह काम करने के साथ-साथ सेना में से निकम्मे कर्मियों को निकाला जा रहा था। दक्षिणी मोर्चे के सर्वोच्च कमांडर से लेकर निम्नतम श्रेणी तक के अनेक कमांडरों के स्थान पर नये कर्मठ कमांडर नियुक्त किये गये।

लाल सेना में भरती हो रहे सहस्रों मजदूर और किसान थकी-मांदी सैनिक टुकड़ियों में नई शक्ति का संचार कर रहे थे। इसके फलस्वरूप अभूतपूर्व गति से लाल सेना एक बार फिर से शत्रु के दांत खट्टे करने लायक हो रही थी। वोरोनेज – दोनबास की सबसे महत्वपूर्ण दिशा में आठवीं सेना (जो यहां उसके पार्श्व में तैनात बुद्योन्नी की कैवेलरी कोर के साथ लाल सेना की प्रमुख शक्ति थी) एक-एक करके अपनी डिविज़नें रणक्षेत्र से पीछे हटा रही थी और कुछ दिनों में ही उन्हें नये सैनिकों और शस्त्रास्त्रों से लैस करके वापस भेज रही थी। हफ़्ते भर में ही इस सेना में सैनिकों की संख्या तिगुनी बढ़ गई। दक्षिणी मोर्चे की सेनाओं को जवाबी हमले के लिए तैयार करने के उद्देश्य से उनमें नई भरती और उनके पुनर्गठन का यह विराट कार्य कल्पनातीत अल्प अवधि में पूरा कर लिया गया।

देनीकिन के विरुद्ध संघर्ष की रणनीतिक योजना के दो चरण थे: पहले चरण में देनीकिन की वालंटियर और कज़्ज़ाक सेनाओं को मोर्चे पर एक-दूसरे से अलग किया जाना था और फिर एक-एक करके दोनों का सफ़ाया किया जाना था। योजना के पहले चरण की पूर्ति के लिए दक्षिणी मोर्चे के सम्मुख दो फ़ौरी कार्यभार रखे गये थे। एक कार्यभार यह था कि वोरोनेज की दिशा में देनीकिन की मोर्चेबंदी तोड़कर दोनेत्स के मैदान तक पहुंचा जाये। दूसरा यह कि सफ़ेद फ़ौजों को मास्को की ओर बढ़ने से रोका जाये, जिसके लिए ओर्योल क्षेत्र में जवाबी हमला किया जाना चाहिए था।

दक्षिणी मोर्चे की क्रांतिकारी सैनिक परिषद ने ओर्योल के पास देनीकिन की सेना के विरुद्ध कार्रवाइयों के लिए सैनिक टुकड़ियों का

प्रहारक दल गठित किया। इस प्रहारक दल ने उन आरम्भिक मुठ-भेड़ों में बहुत बड़ी भूमिका अदा की, जिनके साथ दक्षिणी मोर्चे की घटनाओं में निर्णायक मोड़ आया।

जब सफ़ेद गार्डों ने तूला की ओर बढ़ने का रास्ता साफ़ कर लिया था, जब लगता था कि मास्को बस देनीकिन की तोपों का निशाना बनने ही वाला है, तभी वालंटियर सेना के सफल अभियान को रोक दिया गया।

कोर्नीलोव की सफ़ेद गार्डी डिविज़नों द्वारा ओर्योल पर कब्ज़ा किये जाने से पहले ही दक्षिणी मोर्चे की क्रांतिकारी सैनिक परिषद ने पश्चिमी मोर्चे से यहां भेजी गई टुकड़ियों से गठित प्रहारक दल को ओर्योल की दिशा में लड़ रहे शत्रु के प्रमुख दल के खिलाफ़ जवाबी हमला करने का आदेश जारी कर दिया था। यह प्रहार पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर, कोर्नीलोव की टुकड़ियों के पार्श्व में किया जाना था, और इसका उद्देश्य था शत्रु के चंडावल में ओर्योल – कूर्स्क रेल लाइन काट देना।

सफ़ेद गार्डों की संख्या बहुत अधिक थी। दो सेनाओं के संधि-स्थल पर सोवियत मोर्चाबंदी तोड़कर उन्होंने ओर्योल से दक्षिण-पश्चिम में स्थित क्रोमी नगर पर कब्ज़ा कर लिया। यहां घमासान युद्ध हुआ, सफ़ेद गार्डों को पता था कि इसका महत्व निर्णायक है, इसलिए वे अपनी सर्वश्रेष्ठ अफ़सरों की रेजीमेंटों को रणक्षेत्र में भेज रहे थे। द्रोज्दोव की रेजीमेंटें क्रोमी के पश्चिम की ओर से उत्तर दिशा में बढ़ने की कोशिश कर रही थीं। कोर्नीलोव की टुकड़ियों ने ओर्योल को दक्षिण की ओर से आड़ दे रहे सोवियत सैनिकों को हराया तथा लाल सेना की टुकड़ियों को नगर छोड़ने पर विवश किया।

लाल सेना के प्रहारक दल के लिए यह असाधारणतया कठिन स्थिति का क्षण था, दल को न तो अपने पार्श्वों से ही और न ही चंडावल से कोई समर्थन प्राप्त था। एक ओर से कोर्नीलोव तथा दूसरी ओर से द्रोज्दोव की टुकड़ियों ने प्रहारक दल को मानो शिकंजे में कस दिया था और लम्बी लड़ाइयों में इसकी शक्ति क्षीण पड़ती जा रही थी। लड़ाई में भाग लेने के चौथे दिन धीरे-धीरे बढ़ते हुए यह दल क्रोमी के पास जा पहुंचा।

द्रोज़्दोव की टुकड़ियों ने ब्र्यान्स्क की ओर बढ़ने की कोशिश में सोवियत प्रहारक दल के पश्चिम में युद्धरत सैनिक दल के बायें पार्श्व को क्षत-विक्षत कर दिया और क्रोमी को दायीं ओर से खतरा पैदा कर दिया ; उधर कोर्नीलोव की टुकड़ियों ने तूला की ओर बढ़ने का दिखावा करते हुए क्रोमी पर बाईं ओर से प्रहार किया – इस सबको देखते हुए दक्षिणी मोर्चे की कमान ने शत्रु के इन दोनों दलों के खिलाफ़ एक साथ ही कार्रवाई करने का फ़ैसला किया। प्रहारक दल को यह कार्यभार सौंपा गया कि वह दो अलग-अलग दिशाओं में हमला करे, अपनी प्रमुख टुकड़ियां ओर्योल की दिशा में कोर्नीलोव के खिलाफ़ बढ़ाये और शेष टुकड़ियों को द्रोज़्दोव के खिलाफ़ द्मीत्रोव्स्क की ओर।

इस कार्रवाई से द्मीत्रोव्स्क के पास काफ़ी लंबी लड़ाइयों में बहुत रक्तपात हुआ। यहां प्रहारक दल की टुकड़ियां कभी आगे बढ़ जातीं और कभी फिर उन्हें पीछे हटना पड़ता। किन्तु ओर्योल के पास तीन दिन तक जूझने के बाद प्रहारक दल की प्रमुख टुकड़ियों ने कोर्नीलोव की डिविज़न को खदेड़ दिया। इसके फलस्वरूप लाल सेना ने ओर्योल को तीन दिशाओं – उत्तर, पश्चिम तथा दक्षिण-पश्चिम से घेर लिया। सफ़ेद गार्डों के पास कुमक बची न थी, सो उन्हें कोर्नीलोव की टुकड़ियों को ओर्लोव से एकमात्र खाली रास्ते पर – दक्षिण की ओर – हटाना पड़ा।

ओर्योल को आज़ाद करा लेने पर लाल सेना में देनीकिन की सेना पर अपनी श्रेष्ठता में विश्वास दृढ़ हुआ – हफ़्ते भर पहले ही तो देनीकिन की सेना ने ओर्योल पर कब्ज़ा किया था। सफ़ेद सेना में क्षीणता के लक्षण दिखाई देने लगे और यह भी साफ़ हो गया कि पहलकदमी सोवियत कमान के हाथों में आ रही है।

परन्तु ओर्योल छुड़ा लेने पर भी दक्षिणी मोर्चे के केन्द्रीय भाग की स्थिति में आमूल परिवर्तन नहीं आया था। देनीकिन अभी भी सक्रिय था, उसकी वालंटियर सेना हाल ही की अपनी सफलताओं के परिणामों को हाथ से न जाने देने की जी-तोड़ कोशिशें कर रही थी।

क्रोमी के पास लड़ाई ठंडी नहीं पड़ रही थी।

मोर्चे के तीस किलोमीटर लंबे भाग पर द्रोज़्दोव के सैनिकों ने दक्षिण-पश्चिम की ओर से हमला किया और अत्यंत भारी क्षति उठाते हुए सोवियत सैनिकों का प्रतिरोध तोड़ दिया तथा क्रोमी पर फिर से कब्जा कर लिया। अगले दिन क्रोमी के रक्षकों ने नई कुमक के साथ वीरतापूर्ण हमला करके सफ़ेद गार्डों को नगर से खदेड़ दिया। लेकिन उससे अगले दिन द्रोज़्दोव फिर आगे बढ़ा, एक स्थान पर मोर्चा भेदने में सफल रहा, जिससे सेना के घिरने का खतरा पैदा हो गया और सोवियत टुकड़ियों को उत्तर की ओर हटना पड़ा। क्रोमी पर तीसरी बार सफ़ेद गार्डों का कब्जा हो गया।

दो हफ्तों तक लगातार होती रही लड़ाई से प्रहारक दल की सारी कुमक खत्म हो गई और उसकी टुकड़ियां विशाल मोर्चे पर जहां-तहां बिखर गई। इस बीच ओर्योल के पास हुई पराजय के बाद सफ़ेद गार्डों ने दक्षिणी मोर्चे के केन्द्रीय भाग के खिलाफ़ इस इरादे से अपनी सारी शक्ति जमा की कि प्रहारक दल को विखंडित करके उसका सफ़ाया कर दें और फिर से ओर्योल पर कब्ज़ा कर लें।

लेकिन शत्रु का इरादा समझ लिया गया। कमान ने यह योजना बनाई कि केन्द्रीय भाग में लड़ रही दोनों सेनाएं शत्रु के ओर्योल और क्रोमी दलों के खिलाफ़ स्पष्टतया निश्चित दिशाओं में ही प्रहार करें तथा अलग-अलग टुकड़ियों में नहीं, बल्कि विशाल दलों में आगे बढ़ें।

२४ अक्तूबर को प्रहार की प्रमुख दिशा में शानदार जीत हुई: बुद्योन्नी की अश्वारोही टुकड़ियों और आठवीं सेना की टुकड़ियों ने वोरोनेज से शत्रु को खदेड़ दिया। इससे अब वालंटियर सेना के चंडावल में प्रहार करना सम्भव हो गया और इस तरह मोर्चे के केन्द्रीय भाग में लम्बी खिंच गई लड़ाई में निर्णायक सहायता दी जा सकती थी।

वोरोनेज के पास हुई लड़ाई विशिष्ट ही थी। यह अश्वारोही सेनाओं का बड़ा भारी टकराव था, जिसके बाद सफ़ेद गार्डों के लिए यह स्पष्ट हो गया कि रिसाले में उनकी श्रेष्ठता के दिन चुक रहे हैं।

अक्तूबर के आरम्भ में वोरोनेज पर कब्जा करके श्कुरो की कैवेलरी कोर उत्तर की ओर बढ़ने लगी। आठवीं सोवियत सेना के नियंत्रणाधीन इलाकों पर चढ़ाइयां करते हुए मामोन्तोव श्कुरो का समर्थन कर रहा

था। आठवीं सेना के उत्तरी (दायें) पार्श्व पर मज़बूत मोर्चाबंदी नहीं थी, सो सफ़ेद गार्डों की कैवेलरी दक्षिणी मोर्चे के चंडावल के इलाके में दूर तक पहुंच सकती थी।

श्कुरो और मामोन्तोव का रास्ता अगर कोई रोक सकता था, तो वह थी बुद्योन्नी की कैवेलरी कोर।

परन्तु कमान का वह पुराना आदेश बदला नहीं गया था, जिसके अनुसार इस कोर को दोन के इलाके में बढ़ना था।

बुद्योन्नी श्कुरो के उत्तर की ओर बढ़ने के खतरे को ताड़ गया था, सो उसने दृढ़ संकल्प के साथ अपने रिसाले को मोड़ा और वोरोनेज पर सफ़ेद गार्डों का कब्ज़ा होने से पहले ही उत्तर की ओर बढ़ने लगा, शत्रु के रिसाले से टक्कर लेने का मौका ढूंढ़ने लगा। बाद में हुई घटनाओं से यह सिद्ध हो गया कि बुद्योन्नी का यह निडर और उत्तरदायित्वपूर्ण कदम बिल्कुल उचित था।

शीघ्र ही दक्षिणी मोर्चे की क्रांतिकारी सैनिक परिषद ने बुद्योन्नी को यह निर्देश दिया कि वह वोरोनेज के इलाके में शत्रु के रिसाले से टक्कर ले और आठवीं सेना को शीघ्रातिशीघ्र दोन तक पहुंचने में सहायता प्रदान करे। बुद्योन्नी ने जल्दी से अपनी कोर वोरोनेज के उत्तर-पूर्व में जमा कर ली।

अपनी टुकड़ियों को इस कार्रवाई के लिए तैयार करते हुए तथा सफ़ेद दलों की अवस्थिति की टोह लेते हुए बुद्योन्नी ने एक चतुर चाल चली। उसने श्कुरो की तार की लाइन के साथ अपनी लाइन जोड़ दी और बुद्योन्नी की प्रथम कैवेलरी कोर को एक भूठा आदेश भेजा। इस आदेश में वोरोनेज पर हमले की तैयारी तथा दक्षिण-पूर्व की ओर से प्रमुख प्रहार करने की चर्चा थी, जबकि वास्तव में यह प्रहार उत्तर-पूर्व की ओर से किया जाना था। श्कुरो की कैवेलरी कोर के कमांडर इस भ्रम में थे कि "लाल सेना का आदेश" उनके हाथ लगा है और यह सच्चा है।

श्कुरो को डर था कि कहीं पहलकदमी उसके हाथों से न निकल जाये, सो बारह कैवेलरी रेजीमेंटें लेकर वह हमला करने बढ़ा। आरम्भ में वह बुद्योन्नी की दो डिवज़नों में से एक को पीछे हटाने मे सफल रहा, लेकिन फिर दूसरी डिविज़न उसकी रेजीमेंटों पर बगल से और

पीछे से टूट पड़ी। इस चाल से ही लड़ाई का फ़ैसला हुआ। बुद्योन्नी ने सफ़ेद गार्डों की कुबान कज्जाक डिविजन को धूल चटाई, पैदल रेजीमेंट का सफाया कर दिया तथा वोरोनेज के पूर्वी बाह्यांचल तक शत्रु का पीछा किया।

इसके बाद बुद्योन्नी ने नया व्यूह रचा। वोरोनेज पर उत्तर की ओर से हमला करने के लिए उसने अपनी प्रमुख टुकड़ियां जमा कीं। बाकी टुकड़ियों को दक्षिण-पश्चिम की ओर से नगर को घेरने का काम सौंपा गया। सारा तोपखाना और बहुत भारी संख्या में मशीन-गनें इन टुकड़ियों की मोर्चेबंदी पर ही लगाई गई।

नगर के लिए निर्णायक युद्ध के दिन सुबह तड़के दुश्मन पर ज़बर-दस्त गोलाबारी की गई, और बुद्योन्नी की एक डिविज़न ने घोड़ों से उतरकर वोरोनेज नदी पार की। नगर के पूर्व में मुठभेड़ होने लगी और धीरे-धीरे सफ़ेद गार्डों की प्रमुख टुकड़ियां इसमें फंस गईं। उधर बुद्योन्नी की प्रमुख टुकड़ियां उत्तर और उत्तर-पश्चिम से तेज़ी से नगर की ओर बढ़ने लगीं। सफ़ेद गार्डों को ऐसे प्रहार की ज़रा भी उम्मीद न थी। श्कुरो के पास इसके सिवा और कोई चारा न था कि वह पीछे हटने का हुक्म दे। उसका रिसाला तोपें और मशीनगनें छोड़कर दोन की ओर दौड़ चला।

दोन और वालंटियर रिसालों की वोरोनेज के पास हुई पराजय के एक दिन बाद प्रहारक दल ने, जिसकी टुकड़ियां ओर्योल से हटकर क्रोमी के इलाके में आ चुकी थीं, फिर से हमला किया। दो दिन की लड़ाई में लाल सेना ने ओर्योल – क्रोमी – द्मीत्रोव्स्क मोर्चे के तीनों भागों पर कुतेपोव की कोर के दांत खट्टे कर दिये, और इस तरह मास्को पहुंचने की देनीकिन की उम्मीदों को दफ़ना दिया। प्रहारक दल ने रात को हमला करके सफ़ेद गार्डों को क्रोमी से खदेड़ दिया; दल के पश्चिम की ओर जो डिविज़न थी उसने द्रोज्दोव की डिविजन को हराकर द्मीत्रोव्स्क में प्रवेश किया; प्रहारक दल से दाईं ओर के मोर्चे पर लड़ रही डिविजनों ने रेल लाइन के साथ-साथ दक्षिण की ओर बढ़ते हुए ओर्योल के पास कोर्नीलोव की टुकड़ियों को रौंद डाला।

इस तरह दक्षिणी मोर्चे के सारे केन्द्रीय भाग में सफ़ेद गार्ड पीछे हटने लगे।

साथ ही हर नई लड़ाई में सोवियत रिसाले को अधिकाधिक सफलता मिलने लगी। दोन नदी पार करके बुद्योन्नी ने श्कुरो के रिसाले को एक बार फिर धूल चटाई और कूर्स्क की दिशा में कस्तोर्नया स्टेशन के इलाके में खदेड़ दिया। यहीं पर नवम्बर के मध्य में, जब बहुत ही जल्दी आ गये जाड़े की बर्फ़ीली आंधियां पूरे ज़ोरों पर थीं, बुद्योन्नी ने अश्वारोही और पैदल सैनिकों के संयुक्त प्रहार से सफ़ेद गार्डों की धज्जियां उड़ा दीं।

देनीकिन के वालंटियर पीछे क्या हट रहे थे, दुम दबाकर भाग ही रहे थे। ऐसे हालात में सोवियत रिसाले द्वारा, जिसे अब वोरोशीलोव और बुद्योन्नी की कमान में प्रथम अश्वारोही सेना का रूप दिया गया था, शत्रु का पीछा किया जाना निर्णायक महत्व रखता था। सैनिकों में उत्साह तथा जीत में विश्वास बहुत बढ़ गया था। आगे बढ़ाये गये हर कदम के साथ वे लाभ अधिक स्पष्ट होते जा रहे थे, जो हमले की रणनीतिक योजना में निहित थे।

वोरोनेज के इलाके से प्रमुख प्रहार के फलस्वरूप सेनाओं का प्रमुख दल (समन्वित रिसाला और पैदल टुकड़ियां) उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम की ओर, दोनेत्स के मैदान में पहुंच रहा था। साथ ही ओर्योल के इलाके में किये गये प्रहार से दायें पार्श्व की सेना के लिए कूर्स्क से ख़ार्कोव की ओर दक्षिण का रास्ता खुल गया था।

दोनेत्स के मैदान में सभी मज़दूरों ने मिलकर सोवियत सेना को जिताया। इन जीतों का नतीजा यह हुआ कि दोन कज़्ज़ाक रिसाले और वालंटियर सेना के संधि-स्थल पर कार्यरत अश्वारोही सेना अब सबसे छोटे रास्ते से अज़ोव सागर की ओर बढ़ रही थी। और इससे योजना के पहले चरण की पूर्ति सुनिश्चित होती थी: देनीकिन की सेना को दो भागों में काटा जा रहा था: वालंटियरों को क्रीमिया की ओर तथा द्नीप्र के दायें तट की ओर खदेड़ा जा रहा था, और कज़्ज़ाकों को दोन के निचले भाग तथा उत्तरी काकेशिया की ओर।

नवम्बर और दिसम्बर में द्नीप्र से वोल्गा तक के विशाल विस्तार में देनीकिन की जगह-जगह हार हो रही थी। लाल सेना उक्राइना को आज़ाद करा रही थी। दक्षिण-पूर्वी मोर्चा आगे बढ़ने लगा। कीरोव की कमान में अस्त्राख़ान की ओर से लाल सेना उत्तरी काकेशिया

28*

में जमा सफ़ेद टुकड़ियों का सफ़ाया करने चली। "दक्षिणी रूस की सशस्त्र सेनाओं" पर पूर्ण विजय का दिन निरंतर निकट आता जा रहा था।

१९१९ के वसंत में देनीकिन ने कोल्चाक को एक पत्र में लिखा था: "सबसे बड़ी बात यह है कि हम वोल्गा पर न रुकें, बल्कि मास्को की ओर, बोल्शेविज़्म के हृदय की ओर बढ़ते जायें। मुझे आशा है सरातोव में आपसे मिलेंगे..."

न सरातोव में, न कहीं और ही देनीकिन कोल्चाक से मिल पाया। कोल्चाक को वोल्गा पार के क्षेत्र में ही हरा दिया गया, उसकी फ़ौजें उराल के पार भाग गई।

एंटेंट के दूसरे (दक्षिणी) अभियान की सफलताएं जब चरम बिंदु पर थीं, तब देनीकिन के सेनापतियों को अपनी जीत में पूरा विश्वास था। वे "अधिक से अधिक दिसम्बर के अंत तक, १९१९ के क्रिस्मस तक..." मास्को पधारने की सोच रहे थे, जैसा कि ओर्योल पर कब्जा करने के बाद जनरल माइ-मायेव्स्की ने कहा। लेकिन जब क्रिस्मस आया, तो वालंटियर सेना के आधे सैनिक हताहत हो चुके थे, सफ़ेद गार्डों को पोल्तावा से परे खदेड़ा जा चुका था, दोनेत्स के उस मैदान में वे सिर पर पांव रखकर भाग रहे थे, जहां के पूंजीपतियों ने राजधानी में सबसे पहले प्रवेश करनेवाली वालंटियर रेजीमेंट को जार के ज़माने के दस लाख रूबल का इनाम देने की घोषणा की थी।

ओर्योल और वोरोनेज वे पहले उत्तोलक थे, जिन्होंने उन्नीस सौ उन्नीस की घटनाओं का पलड़ा सोवियत रूस की ओर झुकाया तथा देनीकिन के "मास्को अभियान" पर एंटेंट की बाज़ी पलट दी।

दोन कज़्ज़ाक रिसाले की चढ़ाइयों के साथ आया मामोन्तोव तथा चुनिंदा अफ़सर डिविज़नें लिये कुतेपोव ही वे दो सफ़ेद गार्डों जनरल थे, जो भीतरी रूस की सीमा तक पहुंचे, बल्कि उससे आगे भी बढ़ आये। वे तूला से कोई डेढ़-दो सौ किलोमीटर दूर आकर ही रह गये – मामोन्तोव दक्षिण-पूर्व से तथा कुतेपोव दक्षिण-पश्चिम से।

एंटेंट के बूते पर देनीकिन रूस के भीतरी भागों की ओर बढ़ चला था, लेकिन इस अभियान का अंत यह हुआ कि किसान समूहों

ने दृढ़तापूर्वक सोवियतों का समर्थन किया। सबसे नाज़ुक घड़ी में किसानों ने क्रांति के सबसे खतरनाक शत्रु देनीकिन के विरुद्ध क्रांति का पक्ष लिया। इस अभियान का अंत यह हुआ कि मज़दूरों ने न केवल अपनी लाल सेना के लिए नई-नई रेजीमेंटें तैयार कर दीं, बल्कि सफ़ेद गार्डों के कब्ज़े में जो इलाके थे उनमें भी छापामार आंदोलन के लाल झंडे उठाये। न केवल उन इलाकों में जो सोवियतों की सत्ता में थे, बल्कि *उन इलाकों में भी जहां सफ़ेद गार्डों का राज था, आम जनता को* क्रांति की सच्चाई में विश्वास था और अपने सबसे श्रेष्ठ, सबसे शक्तिशाली और सबसे समझदार भाग – आबादी के मेहनतकश भाग पर भरोसा था, क्योंकि जनता मानती थी कि यह भाग – सर्वहारा वर्ग ही – जनता को न्याय दिलायेगा, नया, बेहतर जीवन बनायेगा।

जनवरी के पहले दिनों में ही अश्वारोही सेना ने देनीकिन का मोर्चा तोड़ दिया, तगनरोग नगर के पास उसे बुरी तरह पराजित किया और फिर रोस्तोव के पास सफ़ेद गार्डों के भीषण प्रतिरोध को कुचलकर नगर में प्रवेश किया।

वालंटियर सेना बुरी तरह पिट चुकी थी और अब वह देनीकिन की प्रमुख शक्ति न रही थी। देनीकिन ने अब कज़्ज़ाक टुकड़ियों को अपनी प्रमुख शक्ति की भूमिका सौंपी। इन्हीं से उसे अपने उद्धार की उम्मीद थी, ये ही उसका बचा-खुचा आसरा थीं।

परन्तु यह नये वर्ष की, उन्नीस सौ बीस की बात है, जो नवोदित सोवियत रूस की प्रगति में एक नया चरण था, और उन्नीस सौ उन्नीस के आग्नेय वर्ष में तपकर ही सोवियत रूस इस चरण में पहुंचा था।

३६

नवम्बर की आखिरी तारीखों में एक दिन सुबह पाव्लिक ने बहन से पैसे मांगे। जब आनोच्का यह पूछने लगी कि वह पैसों का क्या करेगा, तब उसने बताया कि पिछले कई दिनों से लड़के आपस में पैसे जमा करके आर्सेनी रोमानोविच के लिए दूध खरीद रहे हैं।

इस तरह दोरोगोमीलोव की बीमारी का पता चला। आनोच्का ने किरील को यह बताया और उसने अपनी मां को।

"हमें शायद कुछ मदद करनी चाहिए न?"

"हां... करनी तो चाहिए," वेरा निकान्द्रोव्ना ने जवाब दिया।

परन्तु किरील को उसके स्वर में अनिश्चितता का पुट लगा। वह स्वयं भी यह तय नहीं कर पा रहा था कि इस व्यक्ति के प्रति उसका रुख कैसा होना चाहिए।

"रागोजिन उसका आदर करता है।"

वेरा निकान्द्रोव्ना चुप रही। वह समझ गया कि किसी व्यक्ति का आदर करने के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह भाता भी हो। उसे यह कहने में कोई तुक नहीं दिखी कि आनोच्का दोरोगोमीलोव को बहुत ही नेक और उदारमना आदमी मानती है। वेरा निकान्द्रोव्ना स्वयं आनोच्का की बातों से यह जानती थी। इसका एक ही उत्तर हो सकता था: किसी आदमी का पसन्द या नापसन्द होना उसके बारे में दूसरों की राय पर निर्भर नहीं करता। इज़्वेकोव परिवार और आर्सेनी रोमानोविच के सम्बन्ध इतने व्यक्तिगत रहे थे कि बाहर का कोई आदमी इनमें कुछ परिवर्तन नहीं ला सकता था। और क्या परिवर्तन की आवश्यकता भी थी?

"सारी बात इतनी पुरानी है और फिर कुछ भी साफ़ नहीं है। अब बूढ़े के लिए मन में क्या मैल रखना," किरील ने कहा।

"मेरे मन में उसके लिए कब से कोई मैल नहीं। और पहले भी उसे देखकर दुखद यादें ही मन में उठती थीं, और कुछ नहीं।"

"शायद वह भी यह जान ले तो अच्छा रहे?"

"मैं आनोच्का से बात करूंगी। वह राजी हुई तो हम उसके पास हो आयेंगी।"

"बेशक वह राज़ी है," किरील के मुंह से निकला पर तभी उसे यह ख्याल आया कि ऐसा जवाब तो आनोच्का ही दे सकती है और वह चुप हो गया।

शरद ऋतु के पहले दिनों से ही दोरोगोमीलोव की तबीयत खराब रहने लगी थी। उसे कोई बीमारी नहीं थी, बस तबीयत कुछ ढीली-ढीली थी। उन दिनों ही, जब उसने अपना पुराना कोट उतारकर फ़ौजी वर्दी पहनने का इरादा किया था, जब वह फ़ौजी दफ़्तरों में नये काम के बारे में पूछताछ करने लगा था और सहसा अपनी सारी किताबें उसने दे डाली थीं, तभी वह बीमार पड़ गया।

कमज़ोरी का पहला दौरा उसे उस दिन महसूस हुआ, जब घर से किताबें ले जाई जा रही थीं। एक साथ दो ठेले आये, अभी उन्हें पूरी तरह से लादा भी न गया था कि आधी अलमारियां खाली हो गईं। स्याह धूल कमरे में उड़ती फिर रही थी, मानो यह विरोध करते हुए कि उसकी शांति में क्यों विघ्न डाला गया। एक अजीब बात हुई: सबसे बड़ी अलमारी में से एक ओर से किताबें निकाली ही थीं कि सारी अलमारी ढह गई। धूल का गुबार छत तक उठा, किताबों के ढेर पर चुहियां चीं-चीं करती दौड़ने लगीं।

दोरोगोमीलोव से यह विनाश देखा न गया, वह सोफ़े पर लेट गया। लेटने पर उसे कमज़ोरी का स्पष्ट अहसास हुआ – उसके हाथ-पांव कांप रहे थे। बाकी बची किताबें जब लेने आये, तब भी वह नहीं उठा।

दोरोगोमीलोव ने अपनी यह निधि एक पुस्तकालय को भेंट की थी, जो बच्चों के लिए वाचनालय खोल रहा था। बच्चों के लिए ही उसने जो किताबें जमा की थीं, उनके इससे अच्छे उपयोग की वह कल्पना भी नहीं कर सकता था। और फिर वह जिस अस्पष्ट से किन्तु साहसपूर्ण अभियान का स्वप्न देख रहा था, उसके लिए अपना बोझ यथासम्भव हल्का करना चाहता था। परन्तु जब किताबें चली गईं, तो उसे सूनापन कचोटने लगा, हालांकि बरसों से उसे कभी सूना नहीं लगा था। पहले जो घटनाएं उसके मन को विचलित करती थीं, अब वह उनके प्रति उदासीन हो गया। शायद इसका कारण यह था कि इन घटनाओं से जिस खतरे की आशंका थी, वह टल गया था।

लड़के अभी भी उसके यहां आते रहते थे, लेकिन उसे लगता था कि अब किताबें न रहने से उसके घर में उनकी दिलचस्पी कम हो रही है। उसे पाव्लिक और वीत्या में सुलह करानी पड़ी, क्योंकि पाव्लिक वाचनालय के पक्ष में था और वीत्या इसके खिलाफ़।

आर्सेनी रोमानोविच की तबीयत अक्सर खराब रहने लगी। इसके कई कारण थे: खाना ढंग का नहीं मिलता था, शरद ऋतु की ठंड और नमी भी अपना काम कर रही थीं, और सबसे बड़ी बात – बुढ़ापा आ गया था। अचानक निमोनिया ने उसे धर दबोचा।

दोरोगोमीलोव के नये प्रशंसक वान्या रागोजिन ने अपने पिता को इस मुसीबत के बारे में बताया। डाक्टर देखने आया, छकड़ा भर लकड़ियां भेजी गईं, और लड़के बारी-बारी से रोगी की सेवा-टहल करने लगे।

दोरोगोमीलोव की रातें पहले कभी भी इतनी लंबी न हुई थी, घर भी कभी इतना बड़ा न था। बीमारी धीरे-धीरे ही चल रही थी। कमजोरी तथा खांसी के साथ छाती में होनेवाली पीड़ा के अलावा उसे और कुछ महसूस नहीं हो रहा था। हां, अनिद्रा ने खासा परेशान कर रखा था।

उसके विचार छोटी-छोटी बातों में उलझते रहते। कभी उसकी नजरें कमरे में पड़ी सैकड़ों चीजों में से किसी एक पर टिक जातीं और फिर यादों का सिलसिला शुरू हो जाता। ये सब चीज़ें, जो कभी उसके लिए जरूरी थीं, उसके जीवन से वैसे ही जुड़ी हुई थीं, जैसे पुच्छलतारे की पूंछ। इन सबकी अपनी-अपनी "जीवन कथा" थी। वह लेटा-लेटा यह याद करने लगता कि वह कैंची कितने बरसों से उसके काम आ रही है। कैंची इतनी खस्ताहाल थी कि दूसरा कोई आदमी उससे कुछ नहीं कर सकता था, पर दोरोगोमीलोव के हाथों में वह चीर-फाड़ के लिए और कीलें निकालने के लिए भी काम आती, यहां तक कि जब वह विचारों में खोया कोई धुन गुनगुनाता तो कैंची साज़ का भी काम देती, जिसे वह गुनगुनाते हुए खनकाता जाता।

सहसा उसे कोई विरली पुस्तक याद आ जाती, और यह याद भी पुस्तक के विषय से इतनी नहीं जुड़ी होती थी, जितनी कि उसकी किसी खास निशानी से, जो उसे सैकड़ों अन्य पुस्तकों से अलग करती थी – कहां खरीदी गई, कौन से दिन, किसने जिल्द बांधी, कहां रखी थी, क्यों आखिर तक पढ़ी नहीं गई।

दोरोगोमीलोव विरले ही कभी कोई पुस्तक अंत तक पढ़ता था, पुस्तकें तो क्या, दूसरे काम भी वह शुरू करके विरले ही खत्म करता था। कभी कुछ बनाने लगता, और देखता कि हां, चीज़ बन रही है, तो बस उसे अधूरी छोड़ देता, दूसरे किसी काम में लग जाता। कोई किताब पढ़ने लगता, हर्षोल्लास से भरपूर हो उठता, कल्पना के घोड़े दौड़ाने लगता और बस किताब धरी ही रह जाती। वह मानो अपनी

कल्पना में स्वयं पुस्तकों के अंतिम अध्याय लिखता था, इसलिए पुस्तकों की पहली पंक्तियां ही उसे याद रहती थीं, जैसे लोग हमें उनके चेहरों से याद रहते हैं। यही कारण था कि उसकी वस्तुओं का, उसकी पुस्तकों का संसार कहीं ख़त्म नहीं होता था, वह अंतहीन था। सो अब यह समझ नहीं आता था कि इस अंतहीनता का अंत क्यों हो रहा है? पुस्तकें चली गई थीं, शायद चीज़ें भी चली जायेंगी, और फिर वह स्वयं भी चला जायेगा।

जब आनोच्का और वेरा निकान्द्रोव्ना उससे मिलने आईं, तब तक वह बहुत कमज़ोर हो गया था। पर उनके आने पर वह उत्तेजित हो उठा, वाचाल हो गया और उसकी स्वभावगत बेचैनी लौट आई, हालांकि वह केवल उसके चेहरे के हाव-भाव और हाथों की गति में ही व्यक्त हो सकती थी। वह आनोच्का की ओर देखे जा रहा था, बस कभी चोरी-चोरी दूसरी मेहमान पर तिरछी नज़र डाल लेता, पर वेरा निकान्द्रोव्ना को अपने रोम-रोम से यह अहसास हो रहा था कि दोरोगोमीलोव को उसके बोलने की प्रतीक्षा है। वह उपयुक्त शब्द नहीं ढूंढ पा रही थी। बूढ़े को देखकर वह स्तब्ध रह गई थी – उसका ज्वर से लाल चेहरा बालों के चौखटे में जड़ा हुआ था, जो न काले ही रहे थे और न अभी पूरी तरह सफ़ेद हुए थे।

आनोच्का ने भोलेपन से पूछा कि अकेले बैठे जी उदास होता होगा? दोरोगोमीलोव ने छोटी सी एक सांस में, जितनी जल्दी हो सकता था, नकारा:

"मैं कभी अकेला नहीं होता। इतने लड़के हैं..."

फिर अच्छी तरह सांस ले चुकने पर वह धीरे-धीरे बोलने लगा:

"अकेलापन तभी खलता है, जब किसी को तुम्हारी ज़रूरत न हो, तुम सड़क पर खड़े हो और सब तुम्हारे पास से गुज़रते जायें... यह तो बहुत ही अच्छी बात है कि अपना एक कोना हो, और आदमी कभी कभार दरवाजा बंद करके उन लोगों से आराम पा सके, जिन्हें उसकी ज़रूरत है।"

"जब ठीक हो जायेंगे, तब बेशक ताला लगाकर बैठना, और हम से आराम करना, पर अभी तो आप की देखभाल का प्रबन्ध किया जाना चाहिए," आनोच्का ने कहा।

"मुझे कोई परेशानी नहीं है। आपका पाव्लिक आग जला देता है। वान्या रागोज़िन बर्तन धोता है। लड़के अपनी ओर से सब कुछ कर रहे हैं।"

"लड़के भला क्या समझते हैं! आपको तो कोई देखभाल करनेवाली चाहिए। हम इंतजाम कर देंगी, है न वेरा निकान्द्रोव्ना?"

दोरोगोमीलोव ने वेरा निकान्द्रोव्ना पर सहमी नजर डाली।

"नहीं, नहीं! मैं तो अब काफ़ी ठीक हो गया हूं! मुझे नौकरी करनी है!"

"नौकरी कहीं भागी नहीं जाती," बड़ों के से अंदाज़ में आनोच्का ने कहा।

उसकी लाल पड़ी आंखों में मुस्कान दौड़ गई और वह बूढ़ों की भांति जिंदादिली दिखाते हुए, पर साथ ही मानो क्षमा-याचना करते हुए बोला:

"अभी तो मैं लड़ने जाऊंगा।"

"बिल्कुल पाब्लिक जैसी बातें करते है," आनोच्का हंसी।

"और फिर रिटायर होकर कोई ऐसा काम करूंगा, जिससे मन को आनन्द मिले।"

"यह तो बहुत अच्छी बात है! ज़रा बताइये तो क्या काम करेंगे?"

"मछली पकड़ा करूंगा।"

"पर यह तो वक्त काटना है, कोई काम थोड़े ही है।"

"क्यों नहीं? इससे दो पैसे भी कमाये जा सकते हैं।"

"तब तो आप मछेरे होंगे, यों ही मछली पकड़नेवाले नहीं।"

"मछेरा होना भी अच्छा है, पर आनन्द तो बस यों ही मछली पकड़ने में है।"

उसे थकावट महसूस होने लगी थी। उसके गाल पीले पड़ गये थे, आंखों में उदासी गहरा रही थी।

"आपका क्या ख्याल है, कोई दिन ऐसा भी आयेगा, जब पुरानी किताबें बेचनेवाले नहीं रहेंगे?" सहसा उसने पूछा।

"आप क्या किताबें बेचना चाहते हैं? इससे अच्छा तो लाइब्रेरियन बन जाइये।"

"नहीं, किताबें बेचना ज्यादा अच्छा है, वह भी पुरानी किताबें। पुरानी किताबें बेचनेवाले को कोई किताब अच्छी लगती हो... तो वह उसे ऐसे आदमी को ही देगा... जो उससे भी बढ़कर... उस किताब की कद्र कर सकता हो... लाइब्रेरियन होना भी अच्छा है... पर उसे सबकी मर्जी पूरी करनी होती है।"

"हां, हां, आप किताबें बेचना," आनोच्का बड़े जोश से बोली। "मैं आपके पास आया करूंगी, पुरानी किताबों के ढेर उलटा-पुलटा करूंगी!"

"पाव्लिक के साथ आना। लड़कों को... पढ़ने का शौक... कद्र करना..."

उसके लिए बोलना मुश्किल हो रहा था, वह मानो बेहोशी में बुदबुदा रहा था।

वीत्या कमरे में आया, एक ओर को बैठकर सख्ती से औरतों की ओर देखने लगा। वे उठ खड़ी हुईं।

वेरा निकान्द्रोव्ना ने दोरोगोमीलोव पर झुककर जल्दी से उसका हाथ दबाया और वही एकमात्र शब्द कहे, जो उसके इस विश्वास को व्यक्त कर सकते थे कि वह अब कभी नहीं उठेगा।

"जैसे ही आप ठीक हो जायेंगे, हमारे घर आना, ज़रूर आना!"

"आप आईं... बहुत अच्छा किया," क्षीण स्वर में उसने कहा और भौंहें सिकोड़कर फड़फड़ाती पलकें ज़ोर से भींचीं।

इसके हफ़्ते भर बाद रात को अपने अजीब से घर में अकेला सोया-सोया वह मर गया। वान्या रागोज़िन जब सुबह आया, तो उसका शरीर ठंडा पड़ चुका था। वान्या मृतकों से नहीं डरता था–अपनी अल्पायु में वह कई मौतें देख चुका था। और फिर दोरोगोमीलोव के चेहरे पर पहले की ही भांति सहृदयता की छाप थी। बस उसके दायें हाथ की मुट्ठी बंधी हुई थी, मानो वह किसी को धमकी दे रहा हो या किसी से हाथ मिला रहा हो। वान्या पल भर को उसके पास खड़ा रहा, और फिर पिता को यह बुरी खबर सुनाने दौड़ा गया।

थी तो यह विचित्र बात, पर इस एकाकी व्यक्ति को दफ़नाने के लिए बहुत से लोग जमा हुए। इनमें छोटे-छोटे लड़कों से लेकर फ़ौजी ओवरकोट और विद्यार्थियों की बदरंग टोपियां पहने नौजवान तक थे। इनमें से ज़्यादातर बचपन के खेलों से एक दूसरे को जानते थे। परन्तु ताबूत के पीछे बड़ी उम्र के भी बहुत से लोग चल रहे थे, जो एक दूसरे को नहीं जानते थे, लेकिन इस घड़ी ने उन्हें कुछ बातें एक समान समझनेवाले लोगों के एक सूत्र में बांध दिया था। बेशक, यहां दोरोगोमी-लोव के चहेतों के रिश्तेदार भी थे–लीज़ा, पाराबुकिन, आनोच्का।

गगोजीन भी था, जो अर्थी के पीछे-पीछे ही चल रहा था। उसने ही दफ़नाने का सारा बंदोबस्त किया था, जो कि इन दिनों खासा झंझट का काम था।

छोटे शहरों में राह चलतों का यह आम सवाल "कौन गुज़र गया?" इन निष्ठुर दिनों में अब कम ही सुनने में आता था। मौतें बहुत हो रही थीं, सबको एक भांति ही दफ़नाया जाता था, अंतर बस इतना ही होता कि कुछ ताबूतों पर लाल रंग किया होता, कुछ ऐसे ही होते।

पर यहां अर्थी के पीछे चल रहे लोगों की संख्या देखकर कुछ कौतूहली रुक जाते, और पूछनेवाले यह समझ ही न पाते कि एक साधारण से व्यक्ति को दफ़नाने इतने लोग क्यों जा रहे हैं।

"कौन था? कोई मास्टर-वास्टर था क्या?"

"नहीं, मास्टर नहीं, ऐसे ही किसी दफ़्तर में काम करता था।"

"तो फिर इतने लड़के क्यों जा रहे हैं?"

हां, कोई-कोई औरत तुरन्त ही समझ जाती:

"दोरोगोमीलोव? अरे, वह झक्की?"

"हां, वही।"

"उस पगले को दफ़ना रहे हैं।"

"अच्छा-आ! तो तेरे दिन भी पूरे हो गये..."

इस तरह इस बात का कारण समझाया जाता कि इतने लोग क्यों हैं, क्योंकि पागल व्यक्ति साधारण व्यक्ति से अधिक ही दिलचस्प माना जाता है।

कब्रिस्तान में सब लोग कब्र के इर्द-गिर्द झुंड बनाकर खड़े हो गये। तेज हवा चल रही थी, जो रेत से चुभते हिमकण उड़ा रही थी, परन्तु फिर भी सब नंगे सिर खड़े थे, यहां तक कि लड़के भी बड़ों का कहना नहीं मान रहे थे, टोपियां नहीं पहन रहे थे। जाने क्यों सबको यह उम्मीद थी कि अंतिम विदाई के क्षण कोई खास बात होनी चाहिए, इसलिए जब गगोजिन ने कब्र के पास मिट्टी के ढेर पर पांव रखा, तो सब चौकन्ने हो गये।

वह क्षण भर को चुपचाप खड़ा रहा। यों ही वह कद में सबसे ऊंचा था, अब ढूह पर खड़ा हो जाने से सब उसे और भी अच्छी तरह

देख पा रहे थे, और उसके सामने से गंजे तथा कनपटियों पर लहराते घुंघराले बालों वाले सिर की ओर सबका ध्यान खिंच रहा था।

"एक ऐसे आदमी का देहांत हो गया है, जिसे हमारे शहर में बहुत से लोग जानते थे," उसने धीमे स्वर में बोलना शुरू किया। "आर्सेनी रोमानोविच को दफ़्तर के साथी जानते थे, जिनके साथ उन्होंने पैंतीस बरस तक काम किया। बच्चे जानते थे, जिनके साथ वह अपना खाली समय बिताते थे। हम उन्हें एक मेहनती, विनम्र व्यक्ति के नाते, बच्चों के मित्र के नाते जानते थे। लेकिन उनके जीवन का एक ऐसा पहलू भी था, जिसके बारे में बहुत कम लोग जानते हैं, हालांकि यह एक सबसे महत्वपूर्ण पहलू था, और अब उसके बारे में बताना चाहिए"।

रागोज़िन ने लाल ताबूत पर नज़र डाली, जिसके ढकने के पास हवा हिमकण उड़ा रही थी, और फिर सिर ऊंचा उठाया।

"आर्सेनी रोमानोविच दोरोगोमीलोव स्वप्नद्रष्टा थे," वह कुछ ज़ोर से बोला। "जीवन भर वह भविष्य का, मानवजाति के महान भविष्य का स्वप्न देखते रहे और इसकी बातें किये बिना बस इस भविष्य के निर्माण के लिए परिश्रम करते रहे, क्योंकि उन्हें इसमें विश्वास था, और इसके लिए काम किये बिना नहीं रह सकते थे।"

"अब तो बहुत सारे लोग यह जानते हैं कि ज़ारशाही के ज़माने में हमारे यहां, सरातोव में 'प्रकाशस्तम्भ' नामक एक समाज स्थापित किया गया था। इसका उद्देश्य था ज्ञान-प्रसार करना और यह खुले आम काम करता था। लेकिन साथ ही क्रांति से कोई पांच साल पहले हमारे नगर में बोल्शेविकों का एक मज़बूत भूमिगत संगठन बना था। इसमें तब दूसरे कामरेडों के साथ-साथ व्लादीमिर इल्यीच लेनिन की बहनें भी काम करती थीं। मज़दूरों और कारीगरों का अपनी पार्टी से लगाव तेज़ी से बढ़ रहा था, और युद्ध के दिनों में हम खुले आम बोल्शेविकों का अखबार छापते थे। वह प्राय: सारे रूस में जाता था। बेलोरूस में भी वह पढ़ा जाता था और मास्को व पेत्रोग्राद में भी। लेकिन पुलिस ने अखबार बंद कर दिया। तब बोल्शेविक जनता तक अपनी बात पहुंचाने के दूसरे रास्ते खोजने लगे। इसके लिए 'प्रकाशस्तम्भ' का भी उपयोग किया गया, इस समाज में पार्टी की एक इकाई गठित हुई। कारखानों,

अध्ययन मण्डलियों और गैरिजन में क्रांतिकारी प्रचार के काम के लिए 'प्रकाशस्तम्भ' एक कानूनी आड़ बन गया। इस काम का नतीजा तब सामने आया, जब क्रांति शुरू हुई। हमारे प्रचार की बदौलत गैरिज़न के साठ हजार सैनिकों ने फ़रवरी और अक्तूबर क्रांतियों के दिनों में बहुत बड़ी भूमिका अदा की। फ़रवरी क्रांति के थोड़े दिन बाद ही 'प्रकाश-स्तम्भ' के कार्यालय में हमारी पार्टी समिति निर्वाचित की गई..."

वीत्या पहले तो बड़े ध्यान से सुनता रहा, पर फिर उसे लगने लगा कि प्योत्र पेत्रोविच की बातें आर्सेनी रोमानोविच से बहुत दूर चली गई हैं। भीड़ की वजह से वह एक कब्र के सलीब से सटा खड़ा था और मुश्किल से गर्दन मोड़कर टीन की पट्टी पर लिखे शब्द पढ़ रहा था।

"यहां अग्रिप्पीना रोदियोनोव्ना कलीन्निकोवा, गांव कोरोच्की, प्रदेश तूला, जिला अलेक्सीन्स्की की अस्थियां दफ़न हैं। हे प्रभु उसकी आत्मा को शांति दो, पुण्यात्माओं के लोक में वास दो।" और आगे, फरिश्ते तले नीले अक्षरों में लिखा था: "अविस्मरणीय बेटी वेरा को मां और पिता की ओर से।"

जिला अलेक्सीन्स्की की अस्थियों पर वीत्या ने ज़्यादा विचार नहीं किया—यह कोई गम्भीर प्रश्न नहीं था: प्रत्यक्षतया इस स्थान की अस्थियां किसी तरह मृतक से सम्बन्धित थीं। परन्तु पुण्यात्माओं के लोक पर वीत्या सोच में पड़ गया। वह यह तय नहीं कर पा रहा था कि आर्सेनी रोमानोविच के लिए कौन से लोक की प्रार्थना करनी चाहिए, कौन-कौन से लोक होते हैं और कहां, और लोक में वास देने की विनती अगर भगवान से नहीं तो और किस से करनी चाहिए। यह एक गम्भीर प्रश्न था, क्योंकि इसका हल करके ही यह तय किया जा सकता था कि आर्सेनी रोमानोविच की कब्र पर क्या लिखा जाये। शायद जिला अलेक्सीन्स्की की अस्थियों की भांति उनके लिए भी पुण्यात्माओं का लोक ठीक रहेगा, पर शायद इससे भी अच्छा कोई लोक हो? प्योत्र पेत्रोविच जब बोलने ही लगे हैं, तो उन्हें इस गम्भीर प्रश्न का उत्तर देना चाहिए। वीत्या फिर से सुनने लगा।

"'प्रकाशस्तम्भ' की स्थापना से पहले भी आर्सेनी रोमानोविच क्रांतिकारियों की मदद करते आये थे," गरोजिन कह रहा था। "लेकिन जब इस समाज में पार्टी की इकाई गठित हुई, तो आर्सेनी

रोमानोविच के साथ स्थायी सम्पर्क बनाया गया। उनका घर गुप्त भेंटों का स्थान बना। वह भूमिगत कार्यकर्ताओं को अपने यहां छिपाते थे। अपनी किताबों में, जिनमें कई उन्होंने जानबूझकर यों ही जमा की थीं, इस रद्दी के ढेर में वह क्रांतिकारी साहित्य छिपाते थे। यह काम वह इतने कमाल से करते थे कि वरसों तक खुफ़िया पुलिस की आंखों में धूल झोंकते रहे और एक भी क्रांतिकारी, जिसे उन्होंने छिपाया, कभी पकड़ा नहीं गया। गोपनीयता की खातिर, वह खुद भी 'प्रकाशस्तम्भ' के सदस्य नहीं बने, उस समाज के, जो अनेक अन्य लोगों की भांति, उन्हें भी प्रकाश दिखाता रहा था। यहां जमा लोगों में बहुत से पुराने पार्टी सदस्य हैं, जिन्हें स्वर्गीय आर्सेनी रोमानोविच का क्रांति से पहले का काम अच्छी तरह याद है।

"कामरेडो! आर्सेनी रोमानोविच के बारे में मैं यह तो नहीं कहूंगा कि वह रात में चमकता एक ऊंचा प्रकाशस्तम्भ थे, जो समुद्र में चल रहे जलपोतों का मार्ग दर्शन करता है। लेकिन वह एक तिरेंदा थे, तिरेंदे की छोटी सी वत्ती, जो निरंतर जलती हुई चौड़ी नदी का मोड़ इंगित करती रहती थी। जो कोई भी इस नदी से होता हुआ भविष्य के महासागर की ओर जाता था, तूफ़ान की घड़ी और घने कुहासे में, वह तिरेंदे की यह उज्ज्वल वत्ती देखता था और इस विश्वास के साथ आगे बढ़ता था कि उसका ख्याल रखा गया है, कि वह अकेला नहीं है।

"अब हम सब इस महासागर में पहुंच गये हैं, और यह भविष्य के साथ-साथ वर्तमान भी वन गया है। इसका विस्तार असीम है और इसमें अभी न जाने कितने झंझावात, कितने तूफ़ान और आयेंगे। किन्तु अव इसमें सवके लिए प्रकाशस्तम्भ चमक रहे हैं, और यह मार्ग सवके लिए खुला है।

"मैंने शुरू में कहा कि आर्सेनी रोमानोविच स्वप्नद्रष्टा थे। यह विल्कुल सच है, और बच्चे ही उनमें यह गुण सवसे अच्छी तरह देखते थे, जो अपने स्वभाव से ही स्वप्नद्रष्टा होते हैं। कहना न होगा कि आर्सेनी रोमानोविच का सपना अस्पष्ट सा था। सभी बच्चे उसमें अपनी-अपनी आकांक्षाएं, यों कहिये कि भविष्य का अपना सपना जोड़ते थे। हम कम्युनिस्ट निराकार, अस्पष्ट सपने नहीं देख सकते, क्योंकि हम उज्ज्वल भविष्य के सपने ही नहीं देखना चाहते, उसका निर्माण भी

करना चाहते हैं। और सुस्पष्ट लक्ष्य के बिना, ठोस कार्यक्रम के बिना तो निर्माण हो नहीं सकता। परन्तु हमारे कार्यक्रम में महासागर का वह विस्तार निहित है, जिसका होना सपनों के लिए आवश्यक है। यह वह विस्तार है, जो बच्चे की निष्कलंक कल्पना को, न्याय, सौंदर्य और सुख के संसार की कामना करनेवाली कल्पना को उड़ान की प्रेरणा देता है। हमें उस उत्साह के साथ, उस लगन के साथ सपने देखने चाहिए, जो बच्चे आर्सेनी रोमानोविच में पाते थे। हमें आर्सेनी रोमानोविच के जीवन से यह सीखना है कि सच्चा उत्साह, सच्ची लगन क्या है। परन्तु साथ ही हमे अपने बच्चों को सपनों को साकार करने का सही रास्ता भी दिखाना है। इस रास्ते पर चलते हुए, इस मार्ग पर बढ़ते हुए वे निश्शंक होकर वह सब नष्ट कर देंगे, जो हमारे लक्ष्य के मार्ग में, भविष्य की हमारी योजनाओं में बाधा बनता है। उन नौजवानों के साथ जो आज सोवियत जनतंत्र के लिए जूझ रहे हैं, हमारे बच्चे कम्युनिज़्म की ओर अग्रसर होंगे।

"विदाई के इन दो शब्दों को मैं एक वचन के साथ खत्म करना चाहता हूं। अभी कुछ दिन पहले हमारे मल्लाहों ने मुझे बताया कि लाल सागर में जा रहे जहाज़ों के इंजनों में कोयला झोंकनेवालों को यह लगता है कि बायलरों के पास इतनी गर्मी नहीं है, जितनी डेक पर। मैं यह कहना चाहता हूं कि हम बोल्शेविकों को यह लगता है कि नए संसार के लिए संघर्ष की कठिनाइयां पुरानी दुनिया की कूपमंडूकी अकर्मण्यता से आसान हैं। हम अपने बायलरों के पास से नहीं हटेंगे, डेक पर आराम करने नहीं जायेंगे – हमें वहां घुटन लगती है। और हम अपने मित्र आर्सेनी रोमानोविच को यह वचन देते हैं कि बायलरों की भट्ठियों के पास खड़े-खड़े भी हम सपने देखना नहीं छोड़ेंगे और अपने बच्चों को भी, जो उन्हें इतने प्यारे थे, सपने देखना सिखायेंगे, उन्हें भविष्य के प्रकाशस्तम्भों को कभी नजरंदाज न करना सिखायेंगे।"

बड़ा सा डग भरकर रागोज़िन ढूह से उतर आया।

उसके बाद दो और लोग बोले। लेकिन वे ज़्यादा नहीं बोले – सब कुछ कहा जा चुका था, और हवा भी तेज़ होती जा रही थी, लोग एक दूसरे से सटे जा रहे थे।

अभी कब्र सपाट भी नहीं की गई थी कि लोग जाने लगे। ट्राम

कब्रिस्तान तक नहीं आती थी, विश्वविद्यालय तक पैदल जाना था। कब्रिस्तान के सामने फैले मैदान में हवा तेज़ी से हिम के रस्से वटती वह रही थी, जो ट्राम के खम्भों के पास वगूलों से उठ रहे थे। कहीं-कहीं हवा ने ज़मीन से सारा हिम उड़ा दिया था और काले-काले चकत्ते उभर आये थे।

लड़के क़ब्र के पास खड़े-खड़े ठंड से अकड़ गये थे, और अव अपने ओवरकोटों के बाज़ुओं में या जेवों में हाथ डाले वड़ों से आगे-आगे जा रहे थे।

"देखो तो, समय कैसे वीतता है," वेरा निकान्द्रोव्ना ने आनोच्का से कहा, "पाव्लिक के वगल में वह लीज़ा का वेटा ही है न?"

"हां, वीत्या है।"

"पाव्लिक कितना वड़ा हो गया है!"

"हां। मुझे तो कभी-कभी विश्वास ही नहीं होता कि मैं इसे गोद में लेकर खिलाया करती थी।"

आनोच्का हंस पड़ी।

"क्या वात है?"

"याद है वह चाकलेट की वात?"

"चाकलेट की वात?"

"हां, लड़ाई से पहले की वात है। याद है, आपने पाव्लिक को जन्म दिन पर वड़ी सी चाकलेट दी थी? मां ने उससे कहा कि मुझे भी दे। वड़ी देर तक वेचारा परेशान होता रहा, फिर वोला: 'अच्छा, मां, मैं आनोच्का को इत्ता छोटा सा टुकड़ा दे देता हूं!' 'छोटा सा क्यों? तेरे पास तो इतनी वड़ी चाकलेट है!' 'वड़ा टुकड़ा अगर आनोच्का के गले में फंस गया, तो?'"

अव वे दोनों एक साथ हंसीं, पर उनकी हंसी सहसा रुक गई, मानो उन्हें यह याद आया कि वे क़ब्रिस्तान से आ रही हैं। वर्फ़ीली हवा के तेज़ झोंकों से वचने के लिए आनोच्का ने चेहरे को वाज़ू से छिपाया और चलते-चलते पूछा:

"किरील निकोलायेविच क्यों नहीं आये?"

"हां, अफ़सोस की वात है। रागोज़िन की वातें सुनकर वह समझ जाता कि उसके पिता जी की दोरोगोमीलोव के साथ दोस्ती क्यों थी..."

किरील आना तो चाहता था, पर फ़ौजी कमिसारियात में कोई जरूरी काम आ पड़ा।"

आनोच्का के माथे पर बल पड़ गये, पर वह कुछ बोली नहीं, बस तेज चलने लगी लड़के बहुत दूर निकल गये थे।

वे सड़क के बीचोंबीच एक झुंड में जल्दी-जल्दी, पर छोटे-छोटे क़दम रखते जा रहे थे। बस कभी कोई एक-दो शब्द कह देता, जिसका दूसरे देर तक जवाब न देते।

"मेरे पिता जी कितना अच्छा बोलते हैं, है न पाश्का?" वान्या ने पूछा।

"हूं," पाव्लिक ने हामी भरी, पर फिर कुछ सोचकर बोला, "वो रद्दी की बात उन्होंने बेकार ही की। मेरा बाप खुश हो गया।"

"क्यों?"

"मुझे टोहका देकर बोला: देखा कामरेड रागोज़िन भी कहते हैं आर्सेनी रोमानोविच के पास रद्दी ही थी।"

"उसके कहने से क्या होता है! बड़ा आया है!"

वीत्या सोच रहा था कि प्योत्र पेत्रोविच ने आर्सेनी रोमानोविच के बारे में सबसे बड़ी बात नहीं कही है। सबसे बड़ी बात यह थी कि आर्सेनी रोमानोविच अब नहीं रहे और उनके जैसा और कोई हो ही नहीं सकता।

"हम आर्सेनी रोमानोविच के बारे में क्या लिखेंगे?"

"कहां क्या लिखेंगे?" वान्या ने जानना चाहा।

"सलीब पर।"

"हां, सच, क्या लिखेंगे?" सहसा पाव्लिक ने भी जिज्ञासा से पूछा।

"हूं, सलीब पर!" वान्या ने मानो खिल्ली उड़ाते हुए कहा।

"क्यों नहीं?" वीत्या ने चुनौती स्वीकार करते हुए कहा।

"आर्सेनी रोमानोविच की क़ब्र पर सलीब नहीं होगा, समाधि पत्थर होगा।"

"हां, बहुत बड़ा पत्थर!" पाव्लिक ने कहा।

तीनों ने बारी-बारी से अपने कान मले ताकि ठंड से बिल्कुल अकड़ न जायें।

"मेरे ख्याल में ऐसे लिखना चाहिए," विचारमग्न सा पाव्लिक बोला, "यहां हमारे आर्सेनी रोमानोविच दफ़न हैं, और फिर नाम।"

"कैसे नाम?" वान्या ने पूछा।

"कैसे नाम? जैसे होते हैं – तेरा, मेरा, वीत्या का, और लोगों के नाम।"

"क्या सोची है! भला कब्र पर भी कभी कोई अपना नाम लिखता है? मैं सारी गर्मियां कब्रिस्तान में रहा हूं, मुझे पता है।"

"रहा है तो क्या हुआ? कोई मनाही है क्या? हमारे जी में आयेगा, तो हम अपने नाम लिखेंगे।"

"यह पुण्यात्माओं का लोक क्या होता है?" वीत्या ने कहा।

"सलीब पर पढ़ा है न? पता है मुझे," वान्या ने कहा।

"सलीब पर?" पाव्लिक ने भी पूछा।

"यह सब पादरियों के दिमाग की उपज है," वान्या ने कहा। "कयामत, पुण्यात्माओं का लोक। विशपी झाड़ते हैं! है कुछ भी नहीं! ज़मीन में गाड़ दिया, तो फिर कौन जी उठेगा!"

"बिल्कुल," पाव्लिक ने हामी भरी, "एक बार जो इस दुनिया से गये, तो गये।"

"और मंगलग्रह पर?" वीत्या ने अविश्वासपूर्वक पूछा।

"मंगलग्रह पर! ज़रा सोचो तो!" पाव्लिक ने कंधे बिचकाये।

"तूने कुछ पढ़ा नहीं, इसीलिए ऐसे कह रहा है।"

"और तूने पढ़ा तो, पर ठीक से नहीं," वान्या ने कहा। "मंगलग्रह पर मुर्दे नहीं, ज़िंदा लोग रहते हैं।"

"हां, हां," पाव्लिक ने हां में हां मिलाई, "और वह मंगलवासी कहलाते हैं।"

"मेरे ख्याल में ऐसे लिखना चाहिए," वीत्या ने सुझाया। "यहां (पल भर को वह इस सोच में पड़ा कि अस्थियों और स्थान की बात कहनी चाहिए कि नहीं) ... सबसे अच्छा व्यक्ति आर्सेनी रोमानोविच दफ़न है!"

अनिश्चय भरी नज़रों से उसने साथियों की ओर देखा। पाव्लिक को उसका सुझाव अच्छा लगा। वान्या को वह बहुत पसन्द नहीं आया था।

29*

"पत्थर पर कुछ खोदना भी चाहिए," उसने कहा।

"तसवीर?"

"हां।"

"कैसी?"

तभी गारोजिन लड़कों तक आ पहुंचा। उसने अपने भारी हाथ, जिनमें वह बग़ैर उंगलियों वाले बड़े से दस्ताने पहने था, लड़कों के कंधों पर रखे।

"अकड़ गये ठंड में?"

"नहीं," तीनों ने एकसाथ कहा, और फिर से हथेलियों से कान मले।

"प्योत्र पेत्रोविच, हम समाधि पत्थर की सोच रहे थे, कि उस पर क्या लिखें।"

"तो क्या फ़ैसला किया?"

फिर से तीनों में बहस होने लगी, नये-नये सुझाव देने लगे, और आखिर उन्होंने गारोज़िन से यह कहलवा ही लिया कि वह खुद क्या लिखता।

"मैं सोचता हूं, सीधे-सादे ढंग से लिखना चाहिए: आर्सेनी रोमानोविच दोरोगोमीलोव, क्रांतिकारी।"

"और बस?" पाव्लिक ने हैरान होते हुए पूछा।

"बस।"

"बस!" वान्या चिल्लाया। "भई, वाह!"

"भई वाह!" पाव्लिक भी चिल्लाया। "आर्सेनी रोमानोविच को भी यह अच्छा लगता, है न?"

अकेला वीत्या ही सोच में पड़ा हुआ चुप रहा। उसे यह सोचकर अफ़सोस हो रहा था कि आर्सेनी रोमानोविच जैसे व्यक्ति के बारे में केवल एक ही शब्द लिखा होगा।

लड़के गारोजिन के साथ-साथ, उसकी भांति ही लंबे-लंबे कदम भरने की कोशिश करते चल रहे थे। शीघ्र ही वे चौराहे तक पहुंच गये, जहां ट्राम के इंतज़ार में भीड़ लगी हुई थी।

ठंड काफ़ी तेज हो गई थी, अंधेरा भी तेज़ी से घिरता आ रहा था, बर्फ़ीली आंधी जोर पकड़ रही थी। लेकिन लड़के धीरज से बड़ों के साथ ट्राम का इंतज़ार कर रहे थे, हां थोड़ी-थोड़ी देर बाद वे अपने कान मल

लेते। तेज़ हवा उनके चारों ओर हिम उड़ा रही थी और वे आंखें सिकोड़-कर विश्वविद्यालय की अस्पष्ट सी इमारतें देख रहे थे।

३७

'छल और प्रेम' के पहले शो के बाद से आनोच्का और किरील हर हफ़्ते मिलते रहे थे, और जिस दिन दोरोगोमीलोव को दफ़नाया गया, उस दिन भी उन्हें मिलना था।

किरील को लगता था कि वे काफ़ी जल्दी-जल्दी मिलते रहे हैं, यानी इससे अधिक जल्दी मिल पाना असम्भव ही है—ऐसे दो-तीन घंटे, जब दोनों खाली हों, ढूंढ़ना इतना मुश्किल था। बेशक, किरील के लिए ही ज़्यादा मुश्किल था। एक बार अगली भेंट का समय तय करते हुए आनोच्का ने पूछा:

"तुम्हारा कोई नेम भी तो होगा?"

"कैसा नेम?"

"कि कब तुम्हें काम करना होता है, कब नहीं।"

"कब नहीं?" वह हंस दिया। "तब अचानक कोई न कोई ऐसी समस्या उठ खड़ी होती है, जिसकी पहले कल्पना तक न की थी।"

उसकी हंसी तुरन्त ही गायब हो गई।

"ये अचानक उठ खड़ी होनेवाली समस्याएं हमारे काम का काफ़ी महत्वपूर्ण अंश हैं। कभी-कभी तो सबसे महत्वपूर्ण। इनसे हम आगे देखना, यह अनुमान लगाना सीखते हैं कि हमारे काम में कैसी बधाएं, कैसी कठिनाइयां आ सकती हैं।"

"तो यह आशा की जा सकती है कि किस दिन मुझसे ढंग से मिल सकते हो, इसका अनुमान लगाना भी सीख जाओगे?"

"ढंग से?"

"हां। ताकि मिलना पल भर का न हो।"

इस बात पर वह इतनी गहरी सोच में पड़ गया कि आनोच्का की हंसी ही फूट पड़ी।

अभी तक किरील ने आनोच्का को मिलने का वायदा करके कभी धोखा नहीं दिया था, अगर किसी वजह से उसका जाना मुमकिन न

होता, तो वह वक्त रहते आनोच्का को इसकी सूचना दे देता था। लेकिन उस दिन अचानक ही उसे छावनी में एक सभा में बोलने को कहा गया।

उसका अनुमान था कि नियत समय तक लौट आयेगा। लेकिन सब कुछ उसके अनुमान के विपरीत होता रहा।

सभा रिसाले में स्वेच्छा से भरती के लिए बुलाई गई थी। टीलों पर दूर-दूर तक फैल गई छावनी की एक मामूली सी इमारत में लोग ठसाठस भरे हुए थे। सब खड़े थे। छावनी के विभिन्न कार्यालयों में काम करनेवाले लोग, लाल सेना के रंगरूट, मठ मोहल्ले के रहनेवाले और आस-पास के इलाके में फैले भट्ठों के मजदूर यहां जमा थे।

इज्वेकोव एक मंच पर खड़ा बोल रहा था, जो उसके पांवों तले डांवाडोल हो रहा था। उसे बोलते समय चलते रहने की आदत थी, इससे उसे एकाग्रचित्त होने में मदद मिलती थी और विचारों का क्रम कदमों की ताल पर चलता रहता था। उसे इस बात का जरा भी अहसास नही था कि कैसे उसके भारी कदमो से मंच और उस पर रखी मेज़ हिल रहे हैं।

वह आसानी से बोलता जा रहा था। जिन घटनाओं की वह चर्चा कर रहा था, वे स्वयं ही इतनी रोचक थीं कि श्रोता कान लगाकर सुनते – दक्षिण में हो रही जीतों की, मुंह की खाकर सफ़ेद गार्डों एस्तोनिया में भाग गये युदेनिच की और साइबेरिया में कोल्चाक के विरुद्ध नये अभियान की चर्चा थी। गृहयुद्ध के सभी मोर्चों पर अभूतपूर्व गति आ गई थी, लेकिन दो-तीन महीने पहले की भांति यह गति प्रतिक्रांतिकारियों की पहलकदमी से नहीं आई थी, बल्कि लाल सेना के एकजुट संकल्प से। लाल सेना अपने ध्वज लहराती आगे बढ़ रही थी, रूस को उसके बाहरी प्रात लौटा रही थी।

सिकुड़ी भौंहों तले से सैकड़ो नजरें किरील पर लगी हुई थीं – अपेक्षा करती और साथ ही सतर्कता भरी, वे मानो उसके धीरज, उसके ज्ञान की परीक्षा ले रही थीं। पर वह हठधर्मी से कदम नापता जा रहा था – मोड़ों पर पल भर को थमता हुआ और बीच-बीच में मानो अपनी बात पर जोर देने के लिए मुट्ठी में हवा को चीरता हुआ। और उसका ज्ञान इतना गहरा था कि जब वह लाल रिसाले की जीतों की

गिनती करने लगा, तो जनता ने मानो तय किया कि वह परीक्षा में खरा उतरा है: भौंहें ढीली हो गईं, लोग हिलने-डुलने लगे, हाल में जहां-तहां गुंजन हुआ, और फिर जैसे एक साथ आतिशबाज़ी छोड़ी गई हो, तालियों की तड़ातड़ गूंज उठी।

किरील ने अपना भाषण इन शब्दों के साथ समाप्त किया कि दुश्मन का मुंह काला कर दिया गया है, उसे धूल चटा दी गई है, वह दुम दबाकर भाग रहा है, लेकिन अभी उसका पूरी तरह सफ़ाया नहीं किया गया है, और उसे सदा के लिए दफ़ना देने के लिए लाल सेना को नई शक्ति की आवश्यकता है। उसने एकत्रित लोगों का आह्वान किया कि वे अश्वारोही सेना में भरती हों, जवान और अधेड़, अनुभवी और अनुभव-हीन उन सब लोगों का उसने आह्वान किया, जिनके बाजुओं में दम है और मन में सफ़ेद गार्डों के लिए नफ़रत तथा मज़दूरों और किसानों की मुक्ति के लिए प्राण न्योछावर करने की ललक।

उसे उम्मीद थी कि यह आह्वान सुनते ही वालंटियर नाम लिखाने लगेंगे। लेकिन लोग सवाल पूछने लगे और कुछेक ने बोलने की इच्छा व्यक्त की।

अस्त्राख़ान का एक मुच्छड़ कज़्ज़ाक, जिसकी सलवार पर दोनों ओर ऊपर से नीचे तक पीली पट्टी लगी हुई थी, मंच पर चढ़ा। शुरू में वह इतना अच्छा तो नहीं बोला, जितना ज़ोर से, और सुननेवाले उसकी बातों पर इतना हैरान नहीं हो रहे थे, जितना उसकी ज़ोरदार आवाज़ पर। वह कहने लगा कि कज़्ज़ाक भी भांति-भांति के होते हैं, जनरलों के तलुवे चाटनेवाले भी और ज़ालिम कुलक भी और डंडी मारनेवाले भी, पर ऐसे भी कज़्ज़ाक होते हैं, जैसा वह खुद है। और वह सच्चा कज़्ज़ाक है – मुसीबत आ पड़े तो चुल्लू से भी प्यास बुझा लेगा, हथेली पर रखकर भी खाना खा लेगा। लोग उसे बड़बोला ही समझ रहे थे, पर आखिर में उसने कुछ ऐसी बात कही कि सब शांत हो गये और वह मंच से उतरकर अपनी जगह को गया, तो सबकी सद्भावना भरी नज़रें उसपर लगी हुई थीं।

उसने कहा: "सच्चे कज़्ज़ाक लाल रिसाले का मान करते हैं। आजकल एक लाल सेना ही है, जो अपनी सौगंध निभाती है। शत्रु से लड़ते हैं, तो सब एक समान सौगंध निभाते हैं, चाहे कोई सबसे आगे

रो गा सबसे पीछे, भांति-भांति से नही। कोई आंख-मिचौनी नही खेलना। पर, हमारे इस खरे सिक्के का दूसरा पहलू भी है। पूछोगे कौन सा? बताता हू। किसने सबसे पहले उराल के सफ़ेद गार्डों के छक्के छुड़ाये थे? वसीली इवानोविच चपायेव ने। अब भले ही वो कज्ज़ाक नही था, पर सबसे तेज-तर्रार कज्ज़ाक को भी पछाड़ता था और अब कहा है हमारा कामरेड चपायेव? उराल नदी के तल पर, वहा ल्वीश्चेन्स्क के पास। अब यह तो बताओ कि क्यों उसे बचाया नही? क्यो अपनी छातियो से उसे छिपाया नही? क्यों उस ल्वीश्चेन्स्क से ले नही गये? वह अपने हाथो सफ़ेद गार्डों को मौत के घाट उतारना चाहता था तो क्या? उसे अपनी आख के तारे की भांति बचाना चाहिए था! तो वह आज सही-सलामत होता। हमारी लाल सेना में ऐसे सरदार अभी थोड़े ही है, वे तो अभी परगट होने ही लगे हैं। सो हमारे नियम ऐसे होने चाहिए कि सेना की सौगंध तो सभी एक समान निभायें, पर रक्षा हर किसी की लाल सेना के लिए उसकी सेवाओं के अनुसार हो। हमें अपने सरदारो की रक्षा करनी चाहिए। तो, कामरेडो, यही मेरा सुझाव है।"

उसके बाद और लोग भाषण देने आये, फिर अपनी जगह खड़े-खड़े ही, इजाजत मांगे बिना ही बोलने लगे। किरील ने देखा कि वे असल काम की बात से दूर ही दूर होते जा रहे है।

तब उसने फिर से बोलने की इजाजत मांगी, सवालों के जवाब दिये, और चपायेव के बारे मे कहा कि हां यह सच है कि न खुद उसने अपनी जान की परवाह की, न साथियों ने उसे बचाया, कि रात-दिन चौकस रहना चाहिए, क्योकि पहले किसी भी लड़ाई में सफ़ेद गार्डों जैसे क्रूर और कपटी शत्रु से सामना नहीं हुआ है।

"चपायेव की वीरगति पर सारा सोवियत रूस आंसू बहा रहा है, और वोल्गा के लिए, जिसके वह सपूत थे, यह सबसे भारी सदमा है। परन्तु उनकी यह वीरगति उन्हें रूसी गाथाओं के शूरवीरों की पांत में खड़ा करती है। वह वसीली बुस्लायेव की भांति मृत्यु की आंखों में झांकते हुए हिचकिचाते नही थे, उनका दिल नही कांपता था। येर्माक तिमोफ़ेयेविच की ही भांति वह जिस नदी की गोद में समाये, उसका नाम उनके पराक्रमो से विख्यात हुआ। उनका स्थान दूसरे सूरमा, दूसरे शूरवीर

लेंगे। और उतनी जल्दी लेंगे, जितने ज़्यादा मेहनतकश लोग हमारी सेना में, हमारे रिसाले में भरती होंगे। जनता के बीच से, जीवन की आंच से तपे आप लोगों के बीच से ही ये शूरवीर आयेंगे।"

किरील मेज़ के पास गया, एक कागज़ लेकर सिर के ऊपर उठाया :

"कामरेडो, कौन हमारी विजयी अश्वारोही सेना की नई स्क्वैड्रन में शामिल होना चाहता है? हम सूची बनाने लगे हैं, सबसे पहले मैं प्रथम अश्वारोही सेना में भरती हो रहा हूं। और कौन नाम लिखवाना चाहता है? आगे आओ, कामरेडो!"

उसने कलम दावत में डाला। मेज़ उसकी कोहनियों के बोझ तले हिल रही थी, लाल मेज़पोश के ऊपर रखा कागज़ निब से फट-फट जाता था। जब तक वह लिखता रहा, सब लोग ज़ोर-ज़ोर से तालियां बजाते रहे, और जब वालंटियर मंच पर चढ़ने लगे और मेज़ के सामने कतार बनाकर खड़े होने लगे, तो तालियों की गड़गड़ाहट और भी तेज़ हो गई।

किरील भरती होनेवालों के नाम ज़ोर से सुनाता और मेज़ के पीछे बैठे सभी लोग वालंटियरों से हाथ मिलाते। वे चेहरे पर गम्भीरता बनाये और गर्व से छाती फुलाये मंच से उतरते और बड़े जोश से दूसरों को भी नाम लिखवाने को मनाने लगते।

सूची में सबसे पहले अपना नाम लिखते हुए किरील जानता था कि उसे हर हालत में मोर्चे पर जाना है, उसमें भी अगले दिन सुबह से ज़्यादा देर नहीं होगी – उसकी जेब में फ़ौजी कमिसारियात का कागज़ पड़ा हुआ था। लेकिन वह महसूस कर रहा था कि दूसरों का आह्वान करते हुए वह स्वयं भी ऐसा किये बिना नहीं रह सकता। हर काम में ही पहल करनेवाले की ज़रूरत होती है, और यहां पर तो यह आवश्यकता अन्य किसी भी काम से अधिक थी। किरील ने सबसे पहले अपना नाम लिखने की घोषणा सोचे-विचारे बिना की थी, केवल अंतःप्रेरणावश, उसके मन ने कहा था कि इससे काम में सफलता मिलेगी।

जब उसने यह कदम उठा लिया, और पाया कि उसने ठीक ही किया है, कि सब कुछ अच्छी तरह चल निकला है, तो उसने चैन की सांस ली मानो सब लोगों ने उसके उस फ़ैसले को खुले आम सही ठहराया

से, जो वह मन ही मन पहले से ही कर चुका था और जिससे वह किसी हालत में पीछे हटनेवाला नहीं था। सारी सभा में एक जोश छाता जा रहा था, जो पहले नहीं था, और न ही इतने भांति-भांति के लोगों के समूह से उसकी आशा ही की जा सकती थी, अब किरील में भी यह जोश उफन रहा था। निस्सन्देह, इस उफान में सबसे बड़ा हाथ रंगरूटों का था, जो प्रायः सबके सब यह मांग कर रहे थे कि उनका पैदल सेना से रिसाले में तबादला कर दिया जाये। उनके उत्साह ने बहुतों को प्रेरित किया।

किरील जब सभा से चला, तो वह उत्तेजित था और अपने आप से सन्तुष्ट, मानो कोई बहुत महत्वपूर्ण अनुष्ठान उसने सम्पन्न कर लिया हो। वह सोच रहा था कि आनोच्का के यहां पहुंचने में उसे ज्यादा देर नहीं होगी, और वह खुशी-खुशी कार में जा बैठा। लेकिन कार अभी शहर के बाहर ही थी कि अगले टायर में पंक्चर हो गया।

तीसरे पहर से ही हिमानी आंधी आने लगी थी, और अब सांझ ढले वह पूरे जोर से चल रही थी। जाड़ा जब बहुत जल्दी ही आ जाता है, तो ऐसी हिमानी आंधियों से ही शुरू होता है, जो धरती पर हर चीज को झकझोरती और फाड़ती जाती हैं, निचाइयों में हिम के ढेर लगा देती है और टीलों पर के घास के आखिरी तिनके तक को उड़ा ले जाती है। हिम के साथ पिसे कांच की सी सख्त धूल उड़ती है। लकड़ी के मकान भी हवा के थपेड़ों से झुक-झुक जाते हैं, कराहते हैं। हर चीज झुकी-दबी होती है, थरथराती है, चारों ओर से असंख्य स्वरों में मनहूस सीटियां बजती हैं।

किरील ने सड़क पर पांव रखा ही था कि तेज झोंके से खुल गया कार का दरवाजा जोर से उससे टकराया और वह गिरते-गिरते बचा। हिम का बवंडर उन्मत्त सा उसके इर्द-गिर्द घूम रहा था, मानो उसके हाथ-पांव बांधकर उसे उड़ा ले जाना चाहता हो। ड्राइवर ने अपने गालियों के भण्डार में से चुनी हुई गाली सुनाई और फिर जैक निकालने लगा।

किरील फिर से कार में जा बैठना चाहता था, पर फिर उसने अपना इरादा बदल दिया और ड्राइवर से कहा कि वह पैदल ही चला जायेगा, ताकि यहां खुले मैदान में ठंड से अकड़ना न पड़े।

उसने ओवरकोट का कालर उठाया, हाथ बाजुओं में डाले और आगे को झुककर सड़क के बीचोंबीच चलने लगा। वह आस-पास के इलाके को पहचान नहीं पा रहा था, और उसके लिए यह अनुमान लगाना कठिन था कि किस रास्ते से वह शहर में घुसेगा – आगे भी उतना ही अंधेरा था, जितना अगल-बगल में। ठंड ओवरकोट तले गहरी ही गहरी समाती जा रही थी, ओवरकोट के पल्ले कभी हवा से ऊपर उठ जाते और कभी टांगों के बीच फंस जाते। चलना मुश्किल होता जा रहा था।

किरील को पता भी न चला कब उसका सारा उत्साह जाता रहा। उसे अपने आप पर खीज आ रही थी कि क्यों उसने पहले से आनोच्का को यह खबर नहीं कर दी कि उसे देर हो सकती है। इस में बेचैनी भी मिली जा रही थी, जो पिछले कुछ दिनों से उसके मन में उठ रही थी, उस दिन से, जब उसे पता चला था कि मोर्चे पर जाना होगा। वह आनोच्का और मां को यह बात बताने में देर करता रहा था – यह सोचते हुए कि विदाई का समय जितना थोड़ा होगा, उतनी ही वह कम पीड़ादायक होगी। परन्तु अब सहसा वह यह समझ गया था कि यह उसकी निष्ठुरता थी, कि आनोच्का अवश्य ही उसे निर्ममता का उलाहना देगी, कहेगी कि किरील को उसकी भावनाओं की कोई परवाह नहीं है, और वह अपनी सफाई में कुछ भी नहीं कह सकेगा।

सुइयों की तरह चुभती हवा के बीच वह उस छोटे से कमरे की गरमाहट भरी रोशनी देख रहा था, जिसमें वह जल्दी से जल्दी घुसना चाहता था और जो अभी इतनी दूर था। हर पल के साथ उसे इस कमरे की कोई न कोई चीज़ याद हो आती और अपने आप पर उसकी खीज बढ़ती जाती।

पीठ पर हवा का धक्का लगा। पल भर को किरील को ऐसे लगा मानो वह ढलान पर उतर रहा हो और उसे आनोच्का के कमरे का ढलुवां फ़र्श याद हो आया: जिस मकान में पारावुकिन परिवार रह रहा था, उसकी एक दीवार ज़मीन में थोड़ी धंस गई थी। सारा कमरा उसे दिखाई दिया: जालीदार मेज़पोश; किसी पत्रिका में से काटकर दीवार पर टांगी गई कुईंजी के चित्र 'भोज कुंज' की प्रतिकृति, सूखी घास के बने कत्थई और पीले फूलों का दस्ता, जो आनोच्का की

मा के फ़ोटो के पीछे रखा हुआ है; गत्ते का बना लैम्प शेड, जो एक ओर से जलकर चाकलेट जैसे रंग का हो गया है, सिलाई की मशीन का बक्सा, जो जतन से तौलिये से ढका हुआ है, और तौलिये पर कढ़े वे शब्द: "सारा परिवार हो अगर संग, मन में बनी रहती है उमंग"–ये सारी चीज़ें उसकी नज़रों के सामने घूम गईं, यह वह घर था जिसे किरील अच्छी तरह पहचानता था और जो उसके मन को प्यारा था, और इसी घर में इन सब चीज़ों के बीच उसने आनोच्का को खाट की पाटी पर बैठे देखा, नीली आंखें ठंड से जमी खिड़की पर लगी हुई: "नहीं आया, नहीं आया"। उसने टोपी माथे पर नीचे खींची, कालर ऊपर खींचकर कान उसमें छिपाये, और नीचे को झुकता हुआ तेज़ चलने लगा।

बेशक, दूर से ही इस मामूली से कमरे के एक-एक कोने की तसवीर दिमाग में उतारने और उसमें आनोच्का की हर गति को देख पाने के लिए असाधारण कल्पना शक्ति नहीं चाहिए थी। हां, वह अपनी खाट की पाटी पर बैठी रही थी (ठीक वैसे ही जैसे किरील ने इसकी कल्पना की थी), यही नहीं, वह बीस बार उठकर इधर-उधर आ जा चुकी थी, कभी दौड़कर दरवाज़े के पास जाती, कभी खिड़की के पास, कान लगाकर हिमानी आंधी की आहों और सीटियों को सुनती कि कहीं उनके पीछे दस्तक न दब जाये।

कब्रिस्तान से घर लौटकर उसने समोवार गरम किया था, ताकि ठंड से ठिठुरे बदन में कुछ गर्माहट आये। बड़ी खुशी से उसने पाव्लिक को वीत्या के घर जाने दिया था। पारावुकिन ने कहा कि उसे दफ़्तर में राजकीय महत्व का काम है (वह कैसे इस पर कोई आपत्ति कर सकती थी, हालांकि उसे इस बात पर रत्ती भर भी विश्वास नहीं था)। वह खुश थी कि अकेली रह गई है।

घंटे भर बाद वह अपना सबसे अच्छा फ़्राक पहने थी, सारे घर की उसने सफ़ाई कर ली थी, और एक बार फिर समोवार गरम कर दिया था, ताकि किरील को भी आते ही गरम चाय मिले। बाहर आंधी बुरी तरह से हुआ रही थी, हवा खिड़की में महीन-महीन झरियां ढूंढ लेती और उनमें सिसकती।

समय था कि बीत ही नहीं रहा था। आनोच्का निराश होने लगी।

उसने मन ही मन वे सब शब्द दोहराये, जो किरील ने कभी अपनी सफ़ाई में या उसे समझाने के लिए कहे थे – कि वह कितना व्यस्त है, उस पर कितना भारी दायित्व है, या और भी कोई बात, जो उन दोनों के बीच के अंतर से जुड़ी हुई थी, लोगों के सम्मुख, क्रांति के सम्मुख, युग के सम्मुख उसके उत्तरदायित्व की बातें – ओफ़, जाने कितनी बातें थीं, जिनके कारण किरील अपना अलग, विशिष्ट जीवन जीने को विवश था, जो आनोच्का के साधारण जीवन से बिल्कुल भिन्न था!

क्यों अभी तक आनोच्का ने उसके उन सब बहानों, उन सब कल्पित संयोगों के मतलब पर गौर नहीं किया, जो सारी गर्मियां और सारी शरद ऋतु में उनकी भेंटों में बाधक बनते रहे थे? अभी तक उसे यह ख्याल क्यों नहीं आया कि आनोच्का की यह प्रतीक्षा, उससे वह जो वायदे लेती है कि वह आये, कि वह अचानक आ टपकनेवाले कामों को नज़रंदाज़ करे – यह सब उसके लिए बोझ है, बंधन है? हां, हां, उसके काम बहुत ज़रूरी हैं। वे सचमुच ही राजकीय महत्व के हो सकते हैं। इज़्वेकोव तो पारावुकिन नहीं है। वह झूठ नहीं बोलेगा। उसे तो बढ़ा-चढ़ाकर कहने की भी ज़रूरत नहीं।

लेकिन अगर यह बात है, तो किरील के बड़े कामों और आनोच्का के छोटे कामों के बीच अंतर कभी खत्म नहीं होगा। यह तो बढ़ ही सकता है, गहरा ही हो सकता है। तो क्या इसका अर्थ यह है कि आनो-च्का किरील के लिए और भी अधिक बोझ बनती जायेगी, कि उसे इन निष्फल प्रतीक्षाओं में और भी अधिक समय काटना होगा कि कब वह अपने अमूल्य समय में से उसके लिए दो क्षण निकाल सकेगा, कब उसकी ओर ध्यान देने की कृपा करेगा।

लेकिन उसे यह सोचने का क्या हक है कि उसकी ऐसी कोई खास अहमियत है? क्या अनोच्का के लिए भी समय उतना ही अमूल्य नहीं है, जितना उसके लिए है? क्या आनोच्का के लिए यह आसान था कि वह किरील के साथ इस कमबख्त मुलाकात की खातिर आज नये नाटक के वाचन के लिए नहीं गई, हालांकि त्स्वेतुख़िन ने इस नाटक में उसे नई भूमिका देने का वायदा किया है? वह थियेटर नहीं गई, जबकि वहां सब उसका इंतज़ार कर रहे थे, जबकि उसने अभी-अभी वह काम शुरू किया था, जिसके बचपन से दिन-रात सपने देखते आई थी! क्या यह

बलिदान नहीं? और किरील क्या करता है? वह उसे धोखा देता है! उसने आनोच्का को धोखा दिया है! वह नहीं आया!

शायद वह आ ही जाये? शायद किसी बहुत ही जरूरी काम से वह रुक गया हो? आखिर आजकल इतनी घटनाएं हो रही हैं और सभी इतनी बड़ी, इतनी महत्वपूर्ण हैं! और वह इतना बड़ा आदमी है! उस पर इतनी बड़ी ज़िम्मेवारियां हैं! उसकी ज़िम्मेवारियों की तुलना भला किसी नाटक के वाचन से कैसे की जा सकती है, जिसमें आनोच्का को शायद कोई भूमिका भी न मिले! उसने त्स्वेतुखिन को इतना नाराज़ कर दिया है, अब वह उसे कोई भूमिका नहीं देगा। उसे तो अपना सौभाग्य मानना चाहिए कि उसे किरील जैसे विलक्षण व्यक्ति से प्रेम है, कि वह उससे प्रेम करता है।

बेशक, वह आनोच्का से प्रेम करता है! उसे तो बस देर हो रही है। आखिर वह उसे धोखा तो नहीं दे सकता! अभी वह आता होगा। आनोच्का उसके लिए क्या करे? हे भगवान, वह उसके लिए सब कुछ करने को तैयार है, बस वह आ जाये! पर वह नहीं आयेगा! उसने पूरे दो घंटे की देरी कर दी है। नहीं, दो घंटे चार मिनट की। चार मिनट! हे भगवान, क्या करूं कि वह आ जाये?! फिर से समोवार गरम कर दूं? ठंडा हो गया है। चिमनी किसी प्रेत की भांति फुंकार रही है, पर समोवार ठंडा हो गया है। किरील इज़्वेकोव ठंडा हो गया है। हे भगवान, क्या बेतुकी बातें दिमाग में आ रही हैं!

उसने कुछ चैलियां छीलकर समोवार में डालीं और खाट पर बैठ गई। कोहनियां घुटनों पर टेककर उसने सिर हाथों में थाम लिया। बिस्तर में लेट जाये? माथा कितना तप रहा है!

सहसा आनोच्का तेज़ी से उछली और सांस रोके खड़ी हो गई। दरवाज़े पर दस्तक हुई। हां, उसे भ्रम नहीं हुआ! ज़ोर से, जल्दी-जल्दी कोई दस्तक दे रहा था!

वह आ गया!

वह लपककर ड्योढ़ी में गई और एक झटके से कुंडा खोल दिया। अंधेरे में कोई ठंडा पड़ा आदमी अंदर घुस आया—हवा के थपेड़ों से बचने के लिए दोहरा मुड़ा हुआ; सिर से पांव तक उसके सारे कपड़ों पर हिम की तहें जमी हुई थीं।

"जल्दी करो, जल्दी!" वह बुदबुदाई; एक हाथ से उसने अंदर का दरवाज़ा खोला और दूसरे हाथ व घुटने से बाहर के दरवाज़े को रोके रही, जिस पर हवा पूरा ज़ोर डाल रही थी। बड़ी मुश्किल से उसने दरवाजा बंद करके कुंडा चढ़ाया, फिर वह अंदर लपकी, कमरे की चौखट के पास रुकी और उसके मुंह से चीख निकलते-निकलते रह गई।

उसके सामने त्स्वेतुख़िन खड़ा था – ओवरकोट के बटन खोलकर एक झटके में ही उसने सारा हिम फ़र्श पर झाड़ दिया था।

"धत् तेरे की! क्या तूफ़ान आया हुआ है! कहो, दोस्त, अकेली हो? बड़ी अच्छी बात है।"

ठंडी चौखट से पीठ सटाये आनोच्का फटी-फटी आंखों से त्स्वेतुख़िन को देखे जा रही थी। घबराहट के मारे उसका चेहरा विकृत हो गया लगता था, उसपर बेबसी और डर की छाप थी।

"अरे, समोवार गरम है!" गीली भौंहों को रूमाल से पोंछते हुए और कनपटियों पर जमी बर्फ़ साफ़ करते हुए त्स्वेतुख़िन कहता जा रहा था। "एक गिलास गरमागरम चाय मिल जाये, तो बस और क्या चाहिए! वाह, कितनी गरमाहट है अंदर! क्या घर वाले आने को हैं?"

उसने आनोच्का का हाथ थपथपाया।

"क्या, तबीयत ठीक नहीं है? आई क्यों नहीं? मैं सीधा थियेटर से आ रहा हूं। सोचा तुम बीमार पड़ गई हो।"

आखिर आनोच्का का आत्मसंयम लौट आया, और उसने सब सवालों का एक साथ जवाब दे डाला – हां, कब्रिस्तान से लौटने पर उसकी तबीयत कुछ खराब हो गई, इसीलिए थियेटर नहीं गई, और अभी पिताजी और पाव्लिक लौटनेवाले हैं।

"अरे हां, दोरोगोमीलोव!" त्स्वेतुख़िन बोला। "बेचारा! मैं भी जाना चाहता था, पर सारा दिन इधर-उधर के कामों में फंसा रहा। हां, न्यारा ही आदमी था! अब ऐसे लोग कम ही कम रहते जा रहे हैं... क्यों, मन उचाट है क्या?"

वह चाय का बन्दोबस्त करने में लग गई – ऐसे काम में जिसके पीछे अतिथिप्रेमी गृहस्वामिनियां बिनबुलाये मेहमान के प्रति अपनी भावनाएं छिपाती हैं।

त्स्वेतुखिन ने उसका हाथ पकड़कर उसे अपने सामने विठाया।

"सुनो आनोच्का। मैं यों ही नहीं आया हूं।"

वह दृढ़ संकल्प के साथ उसकी ओर देख रहा था, पर उसका निचला होंठ यों फड़क रहा था, जैसे उसे भारी ठेस पहुंची हो।

"मुझे तुमसे बात करनी है। जैसी स्थिति बन गई है... जैसी स्थिति तुमने अपने बर्ताव से बना दी है..."

"बर्ताव से? क्या मेरा बर्ताव अच्छा नहीं?"

"मैं सोचता हूं, तुम खुद फ़ैसला कर सकती हो कि यह अच्छा है या बुरा, जब कि तुम अपने बर्ताव से कौतूहल जगा रही हो, सारी मण्डली का बेहूदा कौतूहल..."

"मैं कौतूहल जगा रही हूं? अपने प्रति? सो भी पूरी मण्डली का? और वो भी बेहूदा?"

आनोच्का ने अपनी कुर्सी थोड़ी परे खिसका ली।

"भगवान के वास्ते, ऐसे बात मत करो," त्स्वेतुखिन ने अनुरोध किया। "यह तुम्हारी ज़बान नहीं है। हां, खेद की बात है, पर कौतूहल तुम्हारे प्रति भी है।"

"और किसके प्रति है?"

"तुम ऐसे बन रही हो, जैसे कि मैं हूं ही नही।"

"येगोर पाव्लोविच, मैंने क्या आपका जी दुखाया है?" आनोच्का ने सहसा गम्भीर स्वर में पूछा।

"क्या मतलब जी दुखाया है?" त्स्वेतुखिन चिल्ला पड़ा, और अब उसकी आवाज़ में स्पष्टतया वह ठेस का भाव था, जो पुरुष को कुछ-कुछ हास्यास्पद बनाता है, सो वह और भी खीजता है। "यह जी दुखाना नहीं, यह तो अपमान है जब लोग तुम्हारी पीठ पीछे कानाफूसी करते हैं, और तुम्हारी खिल्ली उड़ाते हैं।"

"येगोर पाव्लोविच!"

"मैं तुम्हारी बात नहीं कर रहा। तुम कानाफूसी नहीं करती हो। पर दूसरे सब कर रहे हैं! मुझे विश्वास है कि तुम यह सब पूरी तरह से नहीं समझती हो। इसीलिए मैं बुरा नहीं मानता। पर माफ़ करना, आखिर मैं तुम्हें यह समझाये बिना भी तो नहीं रह सकता कि

क्या हो रहा है। अगर तुम खुद यह नहीं देख रही हो, या अगर... अगर तुम कुछ-कुछ जानबूझकर ऐसा कर रही हो।"

"मुझे सच में कुछ समझ में नहीं आ रहा," आनोच्का ने कहा।

"पर यह कैसे हो सकता है? महीने भर से तुम मुझसे बिल्कुल औपचारिक ढंग से बर्ताव कर रही हो। माफ़ करना, पर इसमें ओछेपन की बू आती है! नमस्ते, धन्यवाद और बस! क्या है यह सब? आखिर सब यह देखते हैं! अगर कोई दांव-पेच चलनेवाली पुरानी खिलाड़िन ऐसा करती, तो कोई ध्यान भी न देता। पर तुम तो मेरी शिष्या हो? अब सबको कौतूहल होता है – क्या हो रहा है? शायद त्स्वेतुख़िन का उसके साथ कोई किस्सा चल रहा है। शायद कुछ बात बन गई है! या नहीं बनी! अब तुम समझती हो कि ऐसे में मेरी क्या हालत है?"

"मान लिया कि मैं समझती हूं," आनोच्का धीरे-धीरे बोली और साथ ही टकटकी लगाकर त्स्वेतुख़िन की ओर देखने लगी, "और अगर यह कुछ-कुछ जानबूझकर कर रही हूं, तो?"

खड़े होकर उसने बालों में हाथ फेरा और नपे-तुले कदमों से कमरे का चक्कर लगाने लगा।

"नहीं, मैं यह नहीं मान सकता। मैं तुम्हें बहुत अच्छी तरह जानता हूं। तुम केवल एक हालत में जानबूझकर ऐसा कर सकती हो: अगर तुम्हारी छाती में किसी दूसरे का दिल रख दिया जाये तो।"

वह सोच में पड़ गई। वह मानो कान लगाकर यह सुन रही थी कि उसके उत्तेजित हृदय में क्या हो रहा है, और कहीं उसमें सचमुच किसी पराये की भावना का कोई प्रभाव तो नहीं। पर नहीं, नहीं।

"नहीं!" अदम्य उत्तेजना के साथ उसने कहा। "मैं चाहती थी कि मेरा मन सच्चा रहे। उस दिन... नाटक के बाद आपको लेकर मेरा जी बहुत खट्टा हुआ... और... और मैं शर्मिंदा भी थी, आपके लिए।"

"पर मैं भी तो सब सच्चे मन से कर रहा था," त्स्वेतुख़िन याचना के से स्वर में चीखा। "क्या तुम अभी तक यह नहीं देख रही हो..."

वह भी खड़ी हो गई।

"नहीं, नहीं, मैंने देख लिया है! तब सहसा मैंने देखा था और डर गई थी कि कहीं पास्तुख़ोव की ही बात तो सच नहीं। वही, जो उसने गर्मियों में कही थी।"

वह फिर से चिल्लाया, पर यह आवाज़ बिल्कुल उसके जैसी न थी।

"पास्तुखोव! उस नवाबज़ादे ने अपनी सारी ज़िंदगी में एक बार भी सच्चे मन से कोई बात नहीं कही है! वह हमेशा बनता फिरता है, मुखौटा पहने रहता है। याद है, तब बड़ी डींग हांक रहा था कि प्रेरणा होने पर ही लिखता है? अभी उस दिन कुछ एक्टर आये हैं, बता रहे थे, वहां कोज़्लोव में, घोड़ों की उस मण्डी में वह कलम घसीट रहा है। मामोन्तोव के दिनों में मुंह काला करवा लिया था, सो अब नाक रगड़ रहा है, सब कुछ करने को तैयार है। आखिर मुखौटा तो उतारना पड़ा! बक्की कहीं का!"

त्स्वेतुखिन ने अपनी बात बीच में ही काट दी, मानो यों आत्मसंयम खो बैठने पर लज्जित हो गया हो। कोट झटककर और फिर से कमरे का चक्कर काटकर वह धीमे स्वर में, पर पहले की ही भांति खिसियाते हुए बोला:

"अजीब बात है कि तुम भी पास्तुखोव की तरह सोचने लगीं। तुमने खुद ही कहा था कि वह कीचड़ उछाल रहा है।"

"याद है मुझे। मैं तो बस इस ख्याल से डर गई थी कि कहीं उसकी बात सच है, तो?"

"पर क्या उसकी बात सच हो सकती है?"

"येगोर पाव्लोविच, इसमें मेरा क्या कसूर कि मुझे उसकी कही बात याद हो आई?"

उसने आनोच्का की ओर कदम बढ़ाया और उसके हाथों को अपने हाथों में दबाते हुए, उन्हें अपनी ओर खींचते हुए इतने जोश से बोलने लगा कि वह न तो उसे टोक सकती थी, न इशारे से उसकी बातों पर कोई आपत्ति कर सकती थी।

"सुनो, सुनो मेरी बात! किसने तुम्हें अभिनेताओं को ऐसी हेय दृष्टि से देखना सिखाया है, किसने तुम्हारे कान में यह बात फूंकी है? मैं देख रहा हूं मेरे बारे में ये विचार तुम्हारे अपने नहीं हैं! अगर हम कल ही पहली बार मिले होते और तब तुम रुखाई, अविश्वास, यहां तक कि नापसन्दगी भी दिखातीं, तो मैं इसे समझ सकता था, माफ़ कर सकता था। तुम तो मुझे बहुत अच्छी तरह जानती हो! मैं तुम्हारे लिए इतना कुछ करता हूं, आगे भी इतना कुछ करते रहने को तैयार हूं

और करता रहूंगा – केवल तुम्हारे लिए मेरे मन में जो भावना है उसकी खातिर! यह कैसे मुमकिन है कि तुम मुझ पर विश्वास न करो? क्या मैंने कभी किसी बात में धोखा दिया है? मुझे कभी किसी से इतना गहरा, इतना सच्चा लगाव नहीं हुआ है! तुमने मुझे नया जीवन दिया है। समझती हो? नया भविष्य! क्योंकर मैं अपनी आशा तुमसे छिपाऊं?"

"पर मैं क्या करूं, जबकि ..." उसकी बात काटने की कोशिश में आनोच्का चिल्लाई।

लेकिन उसने आनोच्का को बोलने नहीं दिया।

"ठहरो! बस एक सवाल का जवाब दे दो: मेरी ओर देखते हुए, देखो न, इधर देखो! – इस बात पर तो तुम विश्वास करती हो न कि मेरे मन में जितनी पवित्र भावना तुम्हारे लिए है, वैसी कभी किसी के लिए नहीं रही?"

"लेकिन यह तो यंत्रणा है – आप मुझसे वह कहलवाना चाहते हैं, जो मैं नहीं कह सकती!"

"नहीं कह सकतीं? ठीक है, अभी जवाब मत दो। मत दो अभी। मैं इंतज़ार करता रहूंगा। मुझमें धीरज है, बहुत धीरज है," त्स्वेतुखिन ने कटुता के साथ कहा।

"मैं आपके धीरज की परीक्षा नहीं लूंगी," आनोच्का ने हठधर्मी से कहा।

"ठहरो! अभी कोई फ़ैसला नहीं! कोई अंतिम निर्णय नहीं! तुम्हें खुद विश्वास आ जायेगा। तुम खुद देख लोगी कि मेरी भावना कितनी सच्ची है।"

आनोच्का की ठोड़ी कांपी, पर यह नहीं कहा जा सकता था कि वह अपनी हंसी दबा रही है, या अभी रो पड़ेगी।

"भावनाओं का अनुभव पाना ... और फिर अनुभव को दोहराना," उसने मानो अपने आप से कहा।

"नहीं, निश्छल मन में ऐसी निष्ठुरता नहीं हो सकती!" त्स्वेतुखिन ने हताश होकर उसांस छोड़ी और आनोच्का के हाथ और भी ज़ोर से दबाये।

"छोड़िये मुझे। छोड़िये न! सुनते नहीं – कोई दस्तक दे रहा है!" वह चिल्लाई और हाथ छुड़ाकर परे दौड़ी।

30*

उसने ध्यान से सुना और फिर ड्योढ़ी में चली गई।

आंधी की सांय-सांय के बीच अधीरता भरी दस्तक साफ़ सुनाई दे रही थी। उसने अगड़ी हटाई ही थी कि दरवाज़ा अपने आप खुल गया, कोई अंदर घुसा और तत्क्षण आनोच्का भांप गई कि यह किरील है।

"मैं बंद कर दूंगा। जाओ अंदर, ठंड लग जायेगी," उसने कहा। ठंड मे उसका गला बैठ गया था।

आनोच्का कमरे में दौडी गई। त्स्वेतुख़िन खिड़की के सामने फ़ौजियों की तरह सीधा, तना खड़ा था। आनोच्का ने हाथ उठाया, मानो उसे चेताना चाहती थी, पर तुरन्त ही हाथ गिरा लिया। किरील कमरे में घुस रहा था।

ठंड से अकड़ी उंगलियों से बड़ी कठिनाई से उसने ओवरकोट के बटन खोले। उसके बाज़ुओं पर से हिम की परतें गिरीं। बूट पटककर उसने बूटों से बर्फ़ साफ़ की, कोट उतार फेंका, आनोच्का की ओर, फिर त्स्वेतुख़िन की ओर देखा और मुस्कराने की कोशिश की। लेकिन उसका चेहरा ठंड से इतना अकड़ गया था, लाल-सुर्ख हो गया था कि वह जड़वत ही रहा।

"नही, भई, यह तो हद हो गई! बिल्कुल फ़रवरी जैसा मौसम है!"

उसने जल्दी-जल्दी अपना बर्फ़ीला हाथ दोनों की ओर बढ़ाया और फिर बुख़ारी के पास गया, सारा शरीर उससे सटाकर खड़ा हो गया और कुछ सेकंड यों ही खड़े रहने के बाद घूमकर पीठ उससे सटाई।

"आनोच्का, तुम राह देखते थक गई? नाराज़ हो? मैं छावनी गया था। रास्ते में पंक्चर हो गया। कब्रिस्तान से पैदल आ रहा हूं।"

"कब्रिस्तान से यहां तक!" आनोच्का ने कहा और त्स्वेतुख़िन की ओर देखा, मानो उसे भी अपने आश्चर्य और भय में शामिल होने को कह रही हो।

"थका-मांदा, भटका पथिक देता है दस्तक..."* त्स्वेतुख़िन ने कहा और चुपके से अपनी पीठ पीछे खिड़की के शीशे पर दस्तक देकर ऐसे कान लगाया, मानो कोई रहस्यमयी आवाज़ सुन रहा हो।

---

* पुश्किन की एक कविता की पंक्ति। – सं०

"आपने दस्तक दी?" आनोच्का ने हौले से पूछा।

"मैंने," भयभीत से स्वर में बुदबुदाते हुए उसने जवाब दिया। "तुम्हें क्या किसी और पथिक की भी प्रतीक्षा है?"

किरील हंस दिया। जल्दी से वह समोवार पर झुका, फूंक मारकर ढकने से राख उड़ा दी और फिर समोवार उठाकर मेज़ पर रख दिया।

"कुछ खातिर करो, आनोच्का!"

"बहुत ठंड लगी?" आनोच्का ने पूछा, और फिर से त्स्वेतुख़िन की ओर नज़र दौड़ाई, जो मानो यह कह रही थी कि देखा, हमारे बीच कितना अपनापन है!

किरील ने त्स्वेतुख़िन से बैठने को कहा, पर उसने इन्कार कर दिया: उसे जाना चाहिए था, वह तो दो मिनट के लिए ही आया था, यह देखने कि आनोच्का बीमार तो नहीं।

"बीमार?"

"हां, आज नये नाटक का वाचन था, पर आनोच्का आई नहीं। पहले इसने ऐसा कभी नहीं किया।

"तुमने बताया क्यों नहीं?" किरील ने कहा। "हम कोई और समय रख लेते।"

तीनों ने एक दूसरे की ओर, देखा, अचानक आनोच्का दूसरे कमरे में दौड़ गई और खिलखिलाकर हंसने लगी, जैसे शरारत करते पकड़ा गया बच्चा।

त्स्वेतुख़िन के चेहरे पर फिर नाराज़गी का भाव आ गया – ऐसे क्षणों में वह निचला होंठ आगे निकाल लेता था, और उसे ऊपरी होंठ से चिपका देता था।

किरील ने अपनी मुस्कान दबाते हुए कहा:

"आप आनोच्का को ज़्यादा छूट मत दीजिये, नहीं तो वह अपनी मनमर्ज़ी ही करने लगेगी। उसका स्वभाव ऐसा ही है।"

"हां, अभी इसमें कुछ बचकानापन है," त्स्वेतुख़िन ने सख्ती से कहा। "बेशक, सहज स्वाभाविक होना बहुत बड़ा गुण है, लेकिन कला के सृजन के लिए अकेला यह गुण ही काफ़ी नहीं। कला का अर्थ है परिश्रम, परिश्रम, परिश्रम (तीसरी बार उसने बड़े गुस्से में कहा – परिश्रम!)। इसमें इन्सान को अपना

सर्वस्व न्योछावर करना होता है। अगर कला की सेवा करनी है, तो कला पहले आनी चाहिए, बाद में व्यक्तिगत जीवन, जीवन कला को अर्पित होना चाहिए (आखिरी शब्द उसने बहुत ज़ोर देकर कहे)। इसे एक नियम की भांति स्वीकार किया जाना चाहिए।"

"मैं आप से बिल्कुल सहमत हूं," किरील ने गम्भीरतापूर्वक, पर साथ ही मानो व्यंग्य के पुट के साथ कहा। "और मेरी आपसे अर्ज़ है कि आनोच्का से इस नियम का सख्ती से पालन करवायें।"

वह थम गया। उसकी भौंहें सिकुड़ गईं, पर आंखें अभी भी त्स्वेतुखिन पर ही लगी हुई थीं।

"मैं नहीं चाहता कि आनोच्का के व्यक्तिगत जीवन की कोई भी बात उसके काम में बाधक बने। खास तौर पर मेरी अनुपस्थिति में। अगर मैं चला गया।"

आनोच्का दूसरे कमरे में से निकल आई थी। उसके हाथ में एक कागज़ था, और यह हाथ हर कदम के साथ नीचे गिरता जा रहा था।

"अगर तुम चले गये?" उसने हौले से पूछा।

किरील तुरन्त ही उसे सच्ची बात बताने का साहस नहीं कर पाया और उसने मजाक में कहा:

"हां, अगर मुझे कहीं जाना पड़ा, तो तुम्हें और किसके हवाले कर सकता हूं?"

आनोच्का ताड़ गई कि वह बात गोल कर गया है, और मुस्कराई पर पहले की ही भांति चौकन्नी थी।

"देखिये, आप लोग मुझे डांट रहे हैं। पर मेरी जब तारीफ़ की जाती है तो मैं ज़्यादा अच्छा काम करती हूं। येगोर पाव्लोविच, मैं थोड़ी शेखी बघार लूं?"

उसने किरील को कागज़ दिया।

यह लाल, पीले और नीले अक्षरों में बड़े जतन से लिखा गया आभार पत्र था, जो लुईज़ा मिल्लर को रिसाले की टुकड़ी के सैनिकों ने भेंट किया था (आनोच्का पूरे सात बार क्लब में अपनी एकमात्र भूमिका अदा कर चुकी थी)। आभार पत्र लिखनेवालों ने अपनी प्रिय अभिनेत्री के लिए उसी तरह के शब्द इस्तेमाल किये थे, जैसे मृतकों के लिए इस्तेमाल करने की परम्परा है – उन्होंने इस तरह उसकी प्रशंसा के

पुल बांधे थे, जैसे कि वह अब कभी भी अपने प्रशंसकों को निराश न कर सकती हो। उन्होंने लिखा था कि उसके अभिनय की बदौलत वे समझ गये हैं कि कैसे गरीब लोग राजाओं-महाराजाओं के अत्याचार सहते थे। उन्होंने यह विश्वास दिलाया था कि 'छल और प्रेम' जैसे शानदार नाटकों से बुर्जुआओं को पूरी तरह हरा देने का उनका संकल्प सुदृढ़ होता है। उन्होंने कामरेड अ० पाराबुकिना को अद्वितीय अभिनेत्री, रंगमंच का उज्ज्वल सितारा कहा था और लिखा था कि उनके कुछ साथी दो-दो बार यह नाटक देख चुके हैं, पर फिर भी और कई बार देखने को तैयार हैं। और उन्होंने अ० पाराबुकिना तथा दूसरे अभिनेताओं को मोर्चे पर चलने का निमंत्रण दिया था। "आप हमें अपनी सर्वहारा कला दिखायेंगे, और हम नीच देनीकिन का सफ़ाया करेंगे!" आनोच्का की प्रतिभा के प्रायः हर प्रशंसक ने अपने हस्ताक्षर के साथ कुछ लिखा भी था: "फिर मिलेंगे", "मोर्चे पर आना", और एक ने तो लिखा: "रोस्तोव चलो!"

किरील हैरान सा कागज़ पर आड़े-तिरछे हस्ताक्षरों को गौर से देख रहा था और इन हार्दिक, गम्भीर, सच्चे मन से लिखे गये शब्दों के विशेष महत्व को समझने की कोशिश कर रहा था। फिर उसने जेब में से पेंसिल निकाली।

"यह क्या कर रहे हो?" आनोच्का चिल्लाई और उसके हाथ से कागज़ छीनने को लपकी।

"मैं भी हस्ताक्षर करना चाहता हूं।"

"नहीं! ऐसा मत करो! यह मेरी यादगार है... इसे खराब मत करो! मैं इसे संभालकर रखूंगी।"

आनोच्का से बचते हुए वह उठा, उसकी ओर पीठ कर ली और कागज़ दीवार पर टिकाकर उसके ऊपर कोने में बड़े-बड़े अक्षरों में अपने हस्ताक्षर किये।

"यह तुमने क्यों किया!" आनोच्का चीखी, लगा वह अभी रो पड़ेगी।

"पहली बात, मैं भी चाहता हूं कि तुम्हारा थियेटर मोर्चे पर जाये," जहां तक बन पाया शांत स्वर में उसने उत्तर दिया, "दूसरे, मुझे भी इन सैनिकों के साथ हस्ताक्षर करने का अधिकार है।"

"कोई अधिकार नहीं है। तुमने नाटक भी वस एक वार देखा है! और अव मजाक उड़ा रहे हो।"

"यह मेरी रिसाले की टुकड़ी है। मुझे इसका ज़िम्मा सौंपा गया है, मुझे इसे मोर्चे पर ले जाना है। कल सुवह हम रवाना हो रहे हैं।"

आनोच्का वुत वनी उसकी ओर देखती जा रही थी। क्षण भर पहले ठंड से लाल किरील का चेहरा तेज़ी से पीला पड़ता जा रहा था। वह यह देखकर हक्का-वक्का रह गया था कि उसके शब्दों का आनोच्का पर क्या प्रभाव पड़ा है। उसने आनोच्का की ओर कुर्सी वढ़ाई।

त्स्वेतुखिन ने खखारकर ज़ोर से सांस ली।

"हां! कितना अच्छा रहे यह! हम भी मोर्चे पर जाने का सपना देख रहे हैं। इससे अच्छी वात और क्या हो सकती? पर हमारे पास केवल एक ही नाटक तैयार है। और उसकी भी मंच सज्जा इतनी भारी-भरकम है। वैसे तो उसे कम किया जा सकता है..."

वह उत्सुकता से प्रतीक्षा करता रहा – क्या उत्तर मिलेगा। उसकी मखमली आवाज़ इस छोटे से कमरे के लिए वहुत अधिक ज़ोरदार थी।

"पर हम कोशिश करेंगे! है न आनोच्का?"

"हम कोशिश करेंगे," आनोच्का ने यंत्रवत दोहरा दिया।

"सो आप कल जा रहे हैं?" अभी भी वह ख़्वामख़्वाह ज़ोर से वोल रहा था। "देनीकिन से लड़ने? अच्छा, तो सफलता की मेरी शुभकामनाएं। अपनी ओर से वस इतना वायदा कर सकता हूं: हम काम करेंगे, तन-मन लगाकर काम करेंगे।"

उसने ज़ोर से किरील का हाथ हिलाया और फिर ओवरकोट पहनने लगा।

"आनोच्का की ओर से आप निश्चिंत रहिये। मैं इसके गुणों को भी जानता हूं और कमियों को भी, और सदा सख्ती से इससे काम लूंगा। खूव सख्ती से। अच्छा तो नमस्ते। अगर हमें आपके समर्थन की ज़रूरत पड़ी, तो इन्कार मत कीजियेगा। मेरा मतलव हमारे थियेटर से है। आखिर तो हमारा लक्ष्य एक ही है!"

"मैं दरवाज़ा वंद कर लूंगा," किरील ने कहा।

किरील को दरवाज़े की ओर जाते देखकर आनोच्का जैसे होश में आई। वह जल्दी से उठी, किरील को रोका और खुद त्स्वेतुखिन के

पीछे गई। वह अंधेरे में निराशाभरे कुछ शब्द कह पाया:

"अच्छा, मेरी दोस्त, सब समझ गया! ठीक है! तुम मेरे लिए पहले जैसी ही हो! सुखी रहो! बस..."

जैसे ही उसने दहलीज़ के बाहर पांव रखा तेज़ हवा उसके अंतिम शब्द उड़ा ले गई।

आनोच्का ने धड़ाम से दरवाजा बंद किया, दौड़ी-दौड़ी कमरे में लौट आई और किरील के सामने खड़ी हो गई। साफ़ दिखाई दे रहा था कि जो कुछ हुआ था, उस पर वह अपने मन को समझा-बुझा लेना चाहती है, पर ऐसा कर नहीं पा रही।

"मैं और कुछ नहीं मांगती, बस इतना ही कि यों अचानक मत जाया करो," दुखी स्वर में उसने कहा।

किरील ने हाथ उसकी ओर बढ़ाये, पर उसने मानो संकोच भरी गति देखी ही नहीं।

"आखिर क्यों तुम हर बार मुझे ऐन आखिरी घड़ी पर बताते हो?"

"मैं सोचता हूं – ऐसे ज़्यादा अच्छा है।"

"ताकि मेरे साथ एक घंटा और न बिताना पड़े?"

"ताकि उस बात की चर्चा न करनी पड़े, जो शब्दों के बिना ही स्पष्ट है।"

"ताकि जुदाई की वेदना अधिक गहरी हो?"

"ताकि वेदना कम हो।"

"तुम्हें ऐसा नहीं लगता कि यह निर्ममता है?"

"अक्सर साहस को ही निर्ममता कहा जाता है। पर तुम ऐसा क्यों कहती हो? इस वक्त हम दोनों के सुख के लिए बस साहस की ही आवश्यकता है।"

आनोच्का ने उत्तर में आंखें उठाकर उसकी ओर देखा और उसकी इस दृष्टि में किरील ने ऐसी नारीसुलभ कोमलता देखी, जैसी उसने पहले कभी न देखी थी। और एक विचित्र बात यह थी कि उसकी इस कोमलता को ही किरील ने साहस की उसकी तत्परता माना, जिसकी उसे आनोच्का से प्रतीक्षा थी। वे दोनों खाट की पाटी पर बैठ गये। किरील ने उसके हाथ अपने हाथों में ले रखे थे और उसकी आंखें आनोच्का के चेहरे पर लगी हुई थीं।

खिड़की के बाहर हिमानी आंधी की सांय-सांय के बीच कमरे की नीरवता आश्चर्यजनक लग रही थी। वे दोनों एक दूसरे के सांस की आवाज़ सुन रहे थे, लैम्प की बत्ती कभी-कभार हल्के से चटचटाती, खिडकी की महीन झरियों में हवा सिसकार रही थी, दीवार पर घड़ी की सुखद टिक-टिक हो रही थी। किरील को लगा आनोच्का का मन शांत हो रहा है, जो कि क्षण भर पहले असम्भव प्रतीत होता था।

"मैं एक बात कहना चाहता हूं। मैं जो कुछ करता हूं, उसके बारे में कुछ सोचते हुए अपनी उम्र से थोड़ी बड़ी होने की कोशिश किया करो।"

"मुझे लगता है मैं सदा अपनी उम्र से बड़ी रही हूं। पर अब इसकी चर्चा क्यों?"

"मुझे केवल वैसा करने का हक नहीं जैसा मुझे या मेरे किसी निकट सम्बन्धी को अच्छा लगता है। मैं अपने हर काम के लिए जवाब-देह हूं, समझीं? हर काम के लिए जवाबदेह हूं।"

"मैं समझती हूं। इसमें न समझने की बात ही क्या है! तुम सबके सामने तो जवाबदेह हो। पर मेरे सामने?"

"तुम्हारे सामने भी, जहां तक मुमकिन हो," उसने जवाब दिया और फिर मुस्कराया। "पता है, यहां आते हुए मुझे अचानक अफ़सोस हुआ कि मैंने तुम्हें अपनी रवानगी की बात पहले क्यों नहीं बताई।"

आनोच्का ने उसकी उंगलियां दबाई।

"अच्छा, तो तुम्हें पछतावा हुआ?"

"मैंने शायद इस बात पर अच्छी तरह विचार नहीं किया था।"

"पर क्या तुम्हें अपने हर काम पर सदा ही सोचना-विचारना चाहिए?!"

किरील ने कुछ जवाब नहीं दिया, बस झुककर अपना गाल आनोच्का की हथेली पर रख दिया। वह दूसरे हाथ से उसके रूखे-रूखे, बढ़े हुए बाल सहलाने लगी। किरील ने सिर उठाया और फिर से उसकी ओर देखने लगा।

"ओह, कैसे हो तुम..." आनोच्का बुदबुदाई।

किरील ने उसका चुम्बन लिया। वह बड़ी देर तक चुप रही, फिर उसके होंठों पर खोई-खोई सी बिल्कुल नई मुस्कान आ गई।

"तुमने सोच लिया अच्छी तरह क्या कर रहे हो?" उसने हौले से पूछा।

किरील ने और भी ज़ोर से उसका चुम्बन लिया। पीछे हटते हुए उसने अपनी हल्की, कोमल ठोड़ी से खिड़की की ओर इशारा किया।

किरील उछलकर खड़ा हुआ, मेज़ के पास गया और ज़ोर से फूंक मारकर लैम्प बुझा दिया।

३८

रात को आंधी थम गई।

दिसम्बर के दिन की पौ फट ही रही थी कि आनोच्का घर से बाहर निकली। बाहर विचित्र शांति थी। पटरियां हिम झालर से सजी लगती थीं, इस झालर पर हवा ने छोटी-छोटी लहरें बना दी थीं, जैसी बालुई टीलों पर होती हैं। सड़कें बीचोंबीच साफ़ थीं, बस उनके किनारे कहीं-कहीं नुकीले, चमकते शिखरों वाले हिमानी ढूह खड़े थे। स्याह पेड़ों पर कौए चुपचाप बैठे थे।

हिमानी आंधी के पश्चात नगर पर छाई शांति आनोच्का की व्याकुलता कम नहीं कर रही थी, उलटे बढ़ा ही रही थी। वह बेहद जल्दी में थी।

स्टेशन पर उनींदे, उतावले लोग न जाने कहां से अंदर आते, और न जाने कहां गायब हो जाते, सहसा फिर उनके झुंड जमा हो जाते और फिर बिखर जाते। चरमराते, धड़-धड़ करते दरवाज़े झूलों से आगे-पीछे डोल रहे थे। इंजनों की फुफकार कभी दूर से आती, कभी इतनी पास से कि लगता अभी अंदर ही घुस आयेंगे।

आनोच्का बड़े हाल में प्लेटफ़ार्म की ओर सबसे दूर वाली खिड़की के पास खड़ी थी – जैसा कि उसने किरील के साथ पिछली शाम को तय किया था। बड़ी देर तक आनोच्का उसका इंतज़ार करती रही। एक दरवाज़े से दूसरे दरवाज़े की ओर आते-जाते लोगों को देखते-देखते उसकी आंखें थक गईं।

आखिर जब किरील दिखाई दिया, तो वह उसे तुरन्त ही पहचान नहीं सकी। वह घुटनों तक लंबा भेड़ की खाल का ओवरकोट पहने था,

घुटनों से नीचे पांवों में नमदे के सफ़ेद जूते थे और सिर पर फ़र की ऊंची टोपी। आनोच्का को लगा जैसे वह चलता हुआ नहीं, बल्कि लुढ़कता हुआ आ रहा है।

"चलो, अब तुम्हें ठंड नहीं लगेगी," उसने मुस्कराते हुए कहा।

किरील ने फ़र के दस्ताने उतारकर सैनिकों की भांति उन्हें बगल में दबाया।

"अगर तुमने पहले से बता दिया होता कि कब जा रहे हो, तो मैं खाली हाथ न आती।"

किरील ने उसके हाथ अपने हाथों में लिये, और एक-एक उंगली को सहलाते हुए बोला:

"ये हाथ मेरे लिए कभी खाली नहीं।"

कुछ देर तक वे आंखों में आंखें डाले देखते रहे।

"सैनिक गाड़ी पर सवार हो गये हैं। गाड़ी प्लेटफ़ार्म पर है। थोड़ी देर में छूटनेवाली है।"

"इतनी जल्दी?" आनोच्का ने कहा और नजरें झुका लीं।

"चलो, चलें," किरील ने कहा।

आनोच्का की कोहनी पकड़कर वह उसे प्लेटफ़ार्म पर ले गया और वे गाड़ी के पास-पास चलने लगे। डिब्बों के दरवाज़ों में से भाप निकल रही थी, पानी के जमने से बनी बर्फ़ की छोटी बड़ी गुल्लियां सी छतों पर से लटक रही थीं। माल-डिब्बों से घोड़ों की गंध आ रही थी।

"दूर है?" आनोच्का ने पूछा।

"आख़िरी डिब्बा है।"

"थोड़ी धीरे चलो।"

सभी डिब्बों में से एक दूसरी से होड़ लगाती चीखने-चिल्लाने और गाने की आवाज़ें आ रही थीं, कहीं-कहीं अकार्डियन पूरे जोश से बजाया जा रहा था। वे दोनों चलते जा रहे थे, और अनचाहे ही उनके कदम धीमे होते जा रहे थे।

आख़िर उन्हें रागोज़िन और उसके पास ही खड़ी वेरा निकान्द्रोव्ना दिखाई दिये। चारों इधर-उधर की बातें करते खड़े रहे। इंजन सीटी देने लगा। उसकी निडर आवाज़ की लहरें अधिकाधिक ज़ोर से उठ रही थीं, हवा भी उनसे थरथराती लगती थी।

"अच्छा," मां की ओर देखते हुए किरील ने अस्फुट से स्वर में कहा और उससे गले मिला।

फिर उसकी आंखें आनोच्का पर गड़ गईं। उसे बांहों में भरकर सहसा उसने कई बार उसके होंठ चूमे, इतने ज़ोर से कि वे दुखने लगे।

उससे अलग होकर फिर से मां की ओर देखा। वेरा निकान्द्रोव्ना मुस्कराते हुए सिर हिला रही थी। किरील ने मां की ओर कदम बढ़ाया, मां ने उसका सिर छाती से लगा लिया, और उसी क्षण, जब इंजन की सीटी थमी, फुसफुसाकर कहा:

"मैं इसका ख्याल रखूंगी। बेफ़िक्र रहो!"

वह सिर हिलाये जा रही थी। बेटे को भेजने की तैयारियों की इस रात के बाद उसके चेहरे पर ढलती उम्र की रेखाएं स्पष्टतया उभर आई थीं। सहसा यह दिखाई देने लगा था कि वह बूढ़ी हो रही है।

किरील जल्दी से रागोज़िन की ओर मुड़ा। गाड़ी चल पड़ी थी। वे दोनों डिब्बे के पीछे दौड़ने लगे, जो सैनिकों से खचाखच भरा हुआ था। किरील उछलकर पायदान पर चढ़ गया।

"मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे आ रहा हूं!" रागोज़िन टोपी उतारते हुए चिल्लाया।

"पहले अपना इलाज कराओ, प्योत्र पेत्रोविच! भले-चंगे हो जाओ! नमस्ते," किरील इतना ही कह पाया और फिर उसने रागोज़िन के गंजे सिर के ऊपर नज़र दौड़ाई।

आनोच्का हाथ ऊपर उठाये खड़ी थी। किरील दस्ताने हिलाने लगा। अब कहीं जाकर उन दोनों को यह अहसास हुआ कि छोड़नेवालों की कितनी भीड़ है: पलक झपकते ही हिलते हाथों, टोपियों और रूमालों के पीछे दोनों एक दूसरे की नज़रों से ओझल हो गये।

गाड़ी का शोर पहले तो लोगों की आवाज़ों में डूब गया था, पर अब ये आवाज़ें धीमी पड़ गई थीं और तेज़ होते जा रहे पहियों की ठकाठक मंद होती हुई दूर से आनोच्का के कानों में पड़ रही थी।

प्रियजन से विदाई का यह क्षण ही सबसे कठिन होता है – जब गाड़ी चली जाती है, उसका आखिरी डिब्बा आंखों से ओझल हो जाता है, जब सहसा अपने हृदय के टुकड़े को खोने की तीव्र अनुभूति होती है, उस व्यक्ति को खोने की, जो तुम्हारा अपना था, जिसे क्षण भर पहले

छुआ जा सकता था, पर जो अब एकदम ही पहुंच से बाहर हो गया है।

रागोज़िन और वेरा निकान्द्रोव्ना ने एक दूसरे के चेहरे पर भी और आनोच्का के चेहरे पर भी इस क्षण की वेदना की छाप देखी। परन्तु साथ ही आनोच्का के चेहरे पर भावनाओं की तीव्र उथल-पुथल भी स्पष्टतया नज़र आई मानो वह इस विदाई से ही व्यथित नहीं, बल्कि किसी दूसरी अग्नि-परीक्षा से भी गुज़र रही है। उसके चेहरे का रंग उड़ गया था और लगता था, बस अभी गिरी कि गिरी।

"आओ भई, इधर आओ," बड़ा अदब और उत्साह दिखाते हुए रागोज़िन ने आनोच्का की ओर बांह बढ़ाई।

"थोड़ी देर कहीं बैठ न लें? और फिर सब मेरे यहां चलें," चिंतित वेरा निकान्द्रोव्ना ने कहा।

"शुक्रिया, पर मैं नही चल सकती," आनोच्का ने कहा, "मुझे एक जगह जाना है ... वेरा निकान्द्रोव्ना अगर आप मेरे साथ चल सकें ..."

"चलूंगी, बिटिया, क्यों नहीं। पर यह अचानक कहां की ज़रूरत पड़ गई?"

"अस्पताल।"

"अस्पताल? तुम बीमार तो नहीं?"

"नहीं, नहीं। पिता जी को देखने जाना है। उन्हें कल अस्पताल भरती किया गया है।"

"क्यों? क्या हुआ उन्हें?"

वे प्लेटफ़ार्म के बीचोंबीच रुक गये। भीड़ अब नहीं रही थी। आनोच्का ने जल्दी-जल्दी वह सब बताया, जो उसे पिछली शाम को पता चला था।

किरील जब उसके यहां से गया, तो उसके थोड़ी देर बाद ही पाव्लिक घर लौटा। वह अकेला नहीं था। उसके साथ एक आदमी आया था, जो पाराबुकिन के साथ काम करता है। यह आदमी काम पर देर तक रुका रहा था, और अब आंधी-झक्कड़ की परवाह न करते हुए पाराबुकिन का घर ढूंढ रहा था। अहाते में पाव्लिक उसे मिला था। वह यह बताने आया था कि तीख़ोन प्लातोनोविच मुसीबत में पड़ गया है।

पता चला कि दोरोगोमीलोव को दफ़नाकर पाराबुकिन जब काम पर लौटा, तो वह और उसका दोस्त मेफ़ोदी कोठरी का दरवाज़ा बंद

करके वहां मातमी दावत करने लगे। थोड़ी देर बाद दोनों वहां से निकले, तो नशे में थे, पर मेफ़ोदी ने कहा कि आर्सेनी रोमानोविच दोरोगोमीलोव जैसी पुण्यात्मा के निधन पर दोनों मित्रों को जितना शोक है, उनकी दावत उसके अनुपात में छोटी रही है। इसके बाद दोनों चले गये, प्रत्यक्षतया अनुपात पूरा करने। और कोई तीन घंटे बाद, जब यह आदमी अपना काम खत्म कर चुका था और घर जाने ही वाला था, तभी अस्पताल से फ़ोन आया। फ़ोन करनेवाले ने बताया कि पाराबु-किन और मेफ़ोदी को सड़क पर पाया गया है और अस्पताल में भरती किया गया है – लगता है उन्होंने कोई ज़हरीली चीज़ खा-पी ली है।

आनोच्का को जब यह खबर मिली तो रात हो गई थी और हिमानी आंधी में अस्पताल जाना मुमकिन नहीं था। इसलिए उसने सुबह जाने का फ़ैसला किया था।

अंत में आनोच्का ने यह कहा कि सारी रात उसकी आंख नहीं लगी। बेशक किसी को भी यह जानने की कोई ज़रूरत नहीं थी कि पिता की चिंता के साथ-साथ उसके हृदय में परस्पर विरोधी भावनाओं का भी मंथन होता रहा था। उस शाम की कुछ घड़ियों में ही उसे कितने भांति-भांति के अनुभव हुए थे – पहले अपना एकाकीपन उसे काटने को दौड़ता रहा, फिर येगोर पाव्लोविच के साथ वह हृदयवेधी बातचीत हुई, फिर किरील के जाने की बात सुनकर उसका कलेजा बैठ गया और अंततः वे सुखद क्षण भी आये, जिन्होंने आनोच्का और किरील को सदा के लिए एक दूसरे का बना दिया।

रागोज़िन ने सारी बात सुनकर कहा :

"मेरे पास यहां घोड़ागाड़ी है। आप उसे ले जाइये। और अगर मेरी मदद की ज़रूरत पड़ी, तो मुझे खबर कर देना।"

दोनों औरतें तुरन्त अस्पताल चल दीं। रास्ते में वेरा निकान्द्रोव्ना ने बस एक सवाल पूछा – क्या आनोच्का ने पिता की विपदा के बारे में किरील को बताया है?

"नहीं, क्या ज़रूरत थी? कुछ करने का वक्त तो उसके पास था नहीं, बस मन में एक चिंता और बनी रहती।"

वेरा निकान्द्रोव्ना ने पुरुषों की भांति आनोच्का की कमर में हाथ डालकर उसे पकड़ा हुआ था। उसने आनोच्का को अपने पास खींच

लिया और वे सारे रास्ते यों ही बैठी रहीं – घोड़ागाड़ी कभी हिम के ढेरों मे फंसती, कभी सड़क के गड्ढों पर धचके खाती चलती रही।

आनोच्का अपने आप को संभाले हुए थी, चुप्पी में ही वह मनोबल पा रही थी। अस्पताल में एक जगह से दूसरी जगह चक्कर लगाने की सारी यातनाएं वह चुपचाप सहती रही – उसके सारे शरीर में तनावपूर्ण संयम था, चेहरा पीला और जड़ सा।

हर जगह उन्हें देर तक इंतज़ार करना पड़ता था, क्योंकि जिस किसी से भी वे कुछ पूछतीं, वह एक साथ ही कई कामों में लगा होता.। नर्से और डाक्टर इधर-उधर आ जा रहे थे। उन्हें कोई रोक लेता या वे खुद रुक जाते और अपने निजी मामलों की बातें करने लगते। अस्पताल में रहना इन लोगों का व्यवसाय था, काम था, जो वे सारी ज़िंदगी, दिन-रात करते आये थे। उन लोगों के लिए, जो अपने सगे-सम्बन्धियों की बीमारी या मौत के कारण अस्पताल में आते थे यह एक असाधारण घटना थी, कठोर परीक्षा और प्राय: घोर विपदा थी। अस्पताल में काम करनेवाले यह मानते थे कि रोगियों के लिए सब कुछ किया जाता है, और उनसे मिलने आनेवाले नाहक इतना घबराते हैं और उन्हें तंग करते हैं। मिलने आनेवालों का यह दृढ़ विश्वास था कि रोगियों के लिए सब कुछ नहीं किया जाता, और अस्पताल में काम करनेवालों की निश्चिंतता पर उन्हें परेशानी होती थी और गुस्सा आता था। अदालत की ही भांति यहां अपने और पराये दुख के प्रति इन्सान के रुख में अंतर अत्यंत स्पष्ट था।

रोगियों की भरती के काउंटर पर सिर पर रूमाल बांधी बैठी युवती ने रजिस्टर देखकर बताया कि हां पाराबुकिन और मेफ़ोदी को भरती किया गया था और उन्हें अमुक वार्ड में रखा गया है, रोगियों की हालत के बारे में वे सूचना कार्यालय से पता कर सकती हैं। सूचना कार्यालय में रात की ड्यूटी का रजिस्टर देखकर उन्हें बताया गया कि दोनों रोगियों को अमुक वार्ड में रखा गया है, कि रात को उनकी स्थिति गम्भीर थी और उनका तापमान इतना था। सुबह की सूचना अभी नहीं थी, इसके लिए वार्ड से नर्स को बुलाने की ज़रूरत थी, ताकि वह डाक्टर से यह पता लगाये कि अब रोगियों की हालत कैसी है। नर्स को ढूंढने में आधा घंटा लग गया। आखिर वह आई तो उसने बताया कि सुबह जब

वह ड्यूटी पर आई थी, तो रात की नर्स ने उसे कोई नये रोगी नहीं सौंपे थे। उसने कहा कि वह बड़ी नर्स या डाक्टरों से पूछ सकती है, शायद कोई जानता हो, लेकिन जाते-जाते वह सूचना कार्यालय के दरवाज़े में रुक गई, आनोच्का और वेरा निकान्द्रोव्ना देख रही थीं कि कैसे वह बड़ी देर तक दूसरी नर्स से बातें करती रही और उसे अपना नमदे का घिसा स्लीपर दिखाती रही। और आधा घंटा बीतने पर एक नर्स आई, जिसके एप्रन पर छोटा सा लाल क्रास बना हुआ था। उसने बताया कि दोनों रोगियों को रात को ही जनरल वार्ड से ले जाकर अलग वार्ड में रखा गया था, लेकिन उस वार्ड में जाना मना है। सुबह की जानकारी सूचना कार्यालय को अभी देर से मिलेगी, इससे पहले रोगियों की हालत के बारे में पता लगाने के लिए उन्हें उस विभाग के बड़े डाक्टर से इजाज़त लेनी होगी, पर अभी ऐसा नहीं किया जा सकता, क्योंकि डाक्टर रोगियों को देखने निकल गया है। अस्पताल का चीफ़ डाक्टर भी इजाज़त दे सकता था, पर वह इस वक्त आपरेशन वार्ड में था।

नर्स उस दरवाज़े की ओर चल दी, जहां से सफ़ेद गाउन पहने लोग लगातार आ जा रहे थे, पर दरवाज़े तक पहुंचने से पहले ही लौट आई और एक दुबले-पतले आदमी की ओर इशारा करते हुए बोली:

"वह रहे इग्नाती इवानोविच, उनसे पूछ लीजिये। वह विभाग के बड़े डाक्टर हैं।"

वह खुद उसके पास गई और उससे कुछ कहने लगी। डाक्टर ने वेरा निकान्द्रोव्ना और आनोच्का की ओर देखा, सिर हिलाया और उस औरत से आगे बात करने लगा, जो बार-बार सवाल पूछकर उसकी बात काट रही थी और अपनी उंगलियां मरोड़ रही थी। फिर सूचना कार्यालय की लड़की उसके पास गई और ज़ोर-ज़ोर से कहने लगी कि उसने किसी से वह किताब नहीं ली थी। फिर वे दोनों सूचना कार्यालय में चले गये। पूछ-ताछ की खिड़की से उनकी आवाज़ें आ रही थीं और स्पष्ट था कि उसी किताब को लेकर बहस हो रही है, जो लड़की ने किसी से नहीं ली थी।

"मैं क्या झूठ बोल रही हूं?" खिड़की में से आवाज़ आ रही थी।

आखिर इग्नाती इवानोविच बाहर निकला और सीधा दरवाज़े

की ओर बढ़ा, लेकिन उसकी नज़र आनोच्का और वेरा निकान्द्रोव्ना पर पड़ी और वह उनकी ओर मुड़ा।

"आप पारावुकिन का पता करने आई हैं?" उसने दबे स्वर में पूछा। "कौन लगती हैं आप उनकी?.. अच्छा, आप के पिता जी..."

उसने धीरे-धीरे नज़र उस दरवाज़े की ओर घुमाई, जिधर वह जाने लगा था, और क्षण भर को चुप रहा।

"हां, हां," वह कुछ ऐसे लहजे में बोला, जैसे कि आनोच्का और वेरा निकान्द्रोव्ना पहले से ही वह बात जानती हों, जो वह बताने जा रहा है। "हां, सुबह सात बजे। गुज़र गये।"

"क्या... यों एकदम?" मानो अपने इन शब्दों में ही कुछ अर्थ ढूंढते हुए वेरा निकान्द्रोव्ना ने कहा, और आनोच्का की बांह कुछ ऐसे पकड़ी जिससे यह कहना मुश्किल था कि वह उसको आसरा देना चाहती है, या खुद आसरा ढूंढ रही है।

"नहीं, एकदम तो नहीं। कोई दस घंटे ज़िंदा रहे। हृदय काफ़ी शक्तिशाली था। हालांकि काफ़ी अरसे से पीते लगते थे। हां, काठी मज़बूत थी।"

"पर वह अकेले नहीं थे?" वेरा निकान्द्रोव्ना अभी भी उपयुक्त शब्द ढूंढ रही थी।

"हां, वह भी। वह कमज़ोर थे। डेढ़-दो घंटे पहले ही। वह भी आपके रिश्तेदार थे? नहीं?"

आनोच्का की ओर गौर से देखते हुए उसने सांत्वना दी:

"आप ज़्यादा दुखी मत होइये। यह तो अच्छा ही हुआ। अगर बच रहते, तो दोनों अंधे हो जाते। मेथिलेटिड स्पिरिट थी।"

उसने एक बार फिर दरवाज़े की ओर नज़र डाली।

"अब कहां हैं वह?" आनोच्का ने बुझी आवाज़ में पूछा।

"पोस्ट मार्टम के बाद आप देख सकती हैं," डाक्टर ने कहा। कलई को पेट से दबाते हुए वह गाउन की डोरी बांधने लगा। "माफ़ कीजिये, मुझे वार्डों का चक्कर लगाना है। आप बैठ जाइये। मैं किसी को भेजे देता हूं आपके पास।"

उसने दोनों के सामने बारी-बारी सिर झुकाया और हलके-फुलके आदमी के उछलते कदमों से उस दरवाज़े की ओर चल दिया, जो सारा समय उसे अपनी ओर खींचता रहा था।

आनोच्का और वेरा निकान्द्रोव्ना बेंच पर बैठ गईं। वे एक दूसरी की ओर नहीं देख रही थीं, लेकिन जिस तरह वे एक दूसरी से सटी बैठी थीं, उससे स्पष्ट था कि यह निकटता उन्हें संबल प्रदान कर रही है, और इस समय यह निकटता ही उनका एकमात्र सहारा है।

वही छोटे से क्रास वाली नर्स उनके पास आई, जिसने कहा था कि वार्ड में जाना मना है। उसने आनोच्का की ओर पतली सी गिलासी बढ़ाई, जो तेज़ गंध वाली पीली सी दवाई से आधी भरी हुई थी।

"यह पी लीजिये। आपको पीनी चाहिए," उसने आग्रहपूर्वक कहा। वह इतनी शांत, धीर थी, मानो उसने पहले जो कुछ कहा था और अब जो कह रही है, उसमें लेशमात्र भी असंगति नहीं है।

वेरा निकान्द्रोव्ना ने गिलासी लेकर आनोच्का के मुंह से लगाई। आनोच्का ने कहना मानते हुए सारी दवाई पी ली।

उसका चेहरा पहले की ही भांति जड़ और पीला था। उसके इर्द-गिर्द जो कुछ हो रहा था, उसकी ओर से वह बेसुध तो नहीं थी, हां पूर्णतया उदासीन थी। उसके लिए इस बात में कोई अंतर नहीं रह गया लगता था कि क्या आवश्यक है और क्या निरावश्यक, क्या महत्व-पूर्ण है और क्या गौण। विचारमग्न सी वह सूचना कार्यालय की लड़की की ओर देख रही थी, जो फिर खिड़की में से किसी से चिल्लाकर कह रही थी:

"कहा न, मैंने देखी तक नहीं! मैं क्या झूठ बोल रही हूं?"

और वैसे ही विचारमग्न सी आनोच्का सुन रही थी कि कैसे वेरा निकान्द्रोव्ना उसे ढाढस बंधा रही है, यह कोशिश करते हुए कि उसमें अपने दुख को सहने, कुछ करने की शक्ति जागे:

"तुम डरो नहीं, मैं तुम्हारे साथ हूं। और हमारे मित्र हैं। हम अकेली नहीं हैं।"

आनोच्का के अंग-अंग से जो पूर्ण विरक्ति और उदासीनता व्यक्त हो रही थी, उसके बावजूद उसकी दृष्टि में, उसकी आंखों की गहराई में एक ऐसी झलक थी, जिसमें प्रायः पूर्ण बुद्धिभ्रंश के साथ-साथ विवेक पाने की उत्कट कामना व्यक्त होती थी, जैसा कि केवल मानसिक रोगों से पीड़ित व्यक्तियों के साथ होता है। इस क्षण आनोच्का या तो अपनी दुर्बलता के वशीभूत होकर बीमार पड़ सकती थी, या अपनी चेतना में

ऐसा संबल पा सकती थी कि जीवन भर के लिए उसे अपने आत्मबल में विश्वास हो जाता।

अपनी दृष्टि की इस झलक से वह बीते दिन के सबसे मार्मिक क्षण देख रही थी, उसे पहियों की ठकाठक कानों में पड़ती प्रतीत होती थी, उसे लग रहा था कि वह गाड़ी का आखिरी डिब्बा देख रही है, जो दूर होता जा रहा है, कि कोई कह रहा है: "अपनी उम्र से बड़ी बनो", और एक दूसरा स्वर: "काठी मज़बूत थी"। इन असम्बद्ध बातों में निश्चित सम्बन्ध था, हालांकि एक के होते दूसरे का होना असम्भव था। आनोच्का का हृदय मानो दो टुकड़ों में बंटा जा रहा था, और एक टुकड़ा गाड़ी के आखिरी डिब्बे के साथ जा रहा था, बरसों तक जीने के लिए, और दूसरा टुकड़ा यहां अस्पताल में रह गया था और सदा के लिए इस संसार से नाता तोड़ रहा था।

अथाह उदासी के साथ आनोच्का मुस्कराई। मानो सहसा मन में प्रकट हुई बात पर विस्मित होते हुए उसने कहा:

"पता है, किरील सचमुच पिता जी को बहुत चाहता था!"

वेरा निकान्द्रोव्ना ने उमड़ती ममता के साथ आनोच्का का हाथ अपने सीने से दबाया।

"कितनी सच बात है! तुम्हें पता भी नहीं, रानी, कितनी सच बात है यह!"

"पिता जी बड़े ही स्नेही स्वभाव के थे," आनोच्का पहले जैसे ही उदास स्वर में कहा, "बस वह अभागे थे।"

"तुम पा लोगी वह सौभाग्य, जो उन्हें नहीं मिल पाया। तुम पा लोगी!"

"हम बैठी क्यों हैं?" आनोच्का ने कहा और ऐसे आह भरी, मानो आंसुओं से मन हल्का कर लिया हो। "कुछ करना चाहिए। रागोज़िन के पास चलें। फिर येगोर पाव्लोविच के पास। मेफ़ोदी सीलिच ने आज उनकी सारी खुशियां छीन लीं।"

"हां, चलो। हम अकेली नही, अकेली नहीं," वेरा निकान्द्रोव्ना कहे जा रही थी।

बाहर ठंड में आने पर मानो उनकी इंद्रियां फिर से यथार्थ में लौटीं। एक बार फिर से घोड़ागाड़ी सड़क के खड़ंजों पर खड़खड़ करती

और हिम पर चरमराती दौड़ चली। नगर में अभी भी हिम झंझावात के वाद की शांति व्याप्त थी। हर मकान के साथ, हर मोहल्ले के साथ घोड़ागाड़ी ज्यों-ज्यों अस्पताल से दूर जाती जा रही थी, त्यों-त्यों आनोच्का को वह डिव्वा स्पष्टतया दिखाई दे रहा था, जो असीम हिम धवल मैदानों के वीच दौड़ा जा रहा था, और जिसमें वह स्वयं मानो किरील के सामने वैठी थी, उसकी पांडुर आंखों में उसके विचार पढ़ रही थी।

बेशक विचार आनोच्का के वारे में ही थे। वह उसे अकेली नहीं छोड़ सकता था, वह उसे अपने साथ ले आया था, इस डिव्वे में, रूस के असीम मैदान को पार करती इस विशाल रेलगाड़ी में अपने साथ ले जा रहा था।

दूर कहीं एक सिगनल पर गाड़ी रुकी और किरील डिव्वे में से निकला, धूप में चमकती हिमाच्छादित स्तेपी से उसकी आंखें चुंधिया रही थीं। सहसा उसे याद आया कि तोलस्तोय ने पथिकों के वारे में क्या कहा है: शुरू के आधे रास्ते में आदमी उस सवके वारे में सोचता रहता है, जो पीछे छोड़कर आया है, और वाद के आधे रास्ते में उस सब के वारे में, जो वहां होगा, जहां वह जा रहा है।

गाड़ी ज्यों-ज्यों आगे जाती जा रही थी, त्यों-त्यों किरील के अपने हमसफ़रों के साथ नये-नये सम्वन्ध वनते जा रहे थे। यह कोई आम गाड़ी नहीं थी, जिसकी सवारियां संयोगवश ही इकट्ठी होती हैं और गंतव्य स्थल पर पहुंचते ही अलग-अलग हो जाती हैं।

यह फ़ौजी गाड़ी पहियों पर वने चहल-पहल भरे नगर के समान थी। और जैसे कि नगर के निवासी सवके लिए सामान्य सड़कों, स्रोतों और उपजाऊ धरती से एक समुदाय में गठित होते हैं, वैसे ही इस गाड़ी की सवारियां सवके लिए एक सामान्य ध्येय से एक सूत्र में वंधी हुई थीं, उस ध्येय से, जो इस गाड़ी की सीमा से परे था। सुवह-शाम रसद और चारे की सोचना, ताश और चेकर्स खेलना, तम्वाकू पीना और गाना, लाइन खाली न होने से गाड़ी के रुकने पर नीचे उतरना – ये सव वातें ही उन्हें एक दूसरे से इतना नहीं जोड़ती थीं, जितना कि वह लड़ाई, जो वे अपने भविष्य के लिए लड़ने जा रहे थे।

किरील के मन में इस वात की चेतना वढ़ रही थी कि वह रेलगाड़ी की इस नगरी का निवासी है। वह अक्सर यह सोचता कि मोर्चे पर

उसका काम कैसा होगा, कैसे चलेगा और जिस सरातोव को वह पीछे छोड़ आया था, उसकी ओर उसका ध्यान कम ही कम जाता। यही कारण था कि उसे तोलस्तोय का कथन याद आया और उसे अपने पर लागू करके देखा तो हैरान हुआ – सचमुच ही पिछले सारे दिन में आनोच्का की याद भी उसे इतनी नहीं आई थी, जितनी कि यात्रा के आरम्भ में। लेकिन इस बात पर वह परेशान नहीं हुआ। आनोच्का उसके हृदय के सबसे गहरे कोने में जा बसी थी, और वह जानता था कि जब तक यह हृदय धड़कता रहेगा, तब तक आनोच्का उसमें बसी रहेगी।

गाड़ी बलाशोव और पोवोरिनो से होती हुई जा रही थी। मोर्चे के पास का ही इलाका होने के कारण यहां पर कई-कई बार रुके बिना गाड़ी का बढ़ना असम्भव था। तीसरे दिन जाकर कहीं उन्होंने वे स्थान – वोरोनेज और कस्तोर्नाया पार किये, जहां हाल ही में घमासान युद्ध हुए थे। जाड़ा यहां भी पूरी तरह आ चुका था, लगातार चलती रही हिमानी आंधियों के कारण रणक्षेत्रों में हुए रक्तपात की निशानियां हिम की चादर तले दब गई थी, बस स्टेशनों पर, सड़कों के आस-पास, गांवों मे अधजली काली इमारतें और मलबे के ढेर मातम कर रहे थे।

आखिर यह टुकड़ी नई गठित की जा रही कैवेलरी ब्रिगेड में शामिल हो गई और इसके साथ टुकड़ी को गंतव्य स्थल तक पहुंचाने का किरील का प्रमुख कार्यभार पूरा हो गया। उसने वोल्गा के साथियों से विदा ली और आगे दक्षिण की ओर चल दिया, जहां प्रथम अश्वारोही सेना कार्यरत थी।

किरील जब नोवी ओस्कोल पहुंचा, तो वहां चारों ओर खूब धूम-धाम थी: मकानों पर झंडे लहरा रहे थे, घुड़सवार इधर-उधर आ-जा रहे थे, खुले फाटकों में से अहातों में ज़ीन कसे घोड़े और उनके पास खड़े सैनिक दिखाई दे रहे थे। गरम कपड़ों में अच्छी तरह लिपटे बच्चे सड़कों पर भागे जा रहे थे और उनके पीछे-पीछे बड़े भी, सब एक ही दिशा में – शहर के बाहर जा रहे थे।

किरील ने कई लोगों से रास्ता पूछा, पर कोई उसे ठीक से जवाब नहीं दे सका। आखिर उसे एक नौजवान कमांडर मिला, जिसके कुछ सैनिक एक बहुत बड़ी मेज़ मकान में ले जा रहे थे। दरवाज़े तंग थे, कभी वे मेज़ को लिटाकर पाये आगे करके अंदर ले जाने की कोशिश करते, कभी खड़ी करके।

"चलो, पाये निकालो," एक सैनिक ने चिल्लाकर कहा। "अंदर ले जाकर फिर लगा देंगे।"

"अच्छा, निकाल लो," कमांडर ने हाथ झटकाते हुए कहा और दूसरी ओर मुंह मोड़ लिया।

उसने त्योरियां चढ़ाकर किरील की ओर देखा, मानो यह उसी का कसूर हो कि मेज़ दरवाज़े में नहीं घुस रही।

"क्या चाहिए आपको, कामरेड?"

किरील ने उसे अपनी समस्या बताई और इससे कमांडर और भी अधिक नाराज़ हो गया।

"दिखाओ अपने कागज़!"

उसके लहजे से ही किरील समझ गया कि वह अगर सही पते पर नहीं, तो उसके पास ही पहुंच गया है। उसने अपने कागज़ात निकाले। मोटे-मोटे दस्ताने उतारे बिना ही कमांडर ने अपनी मुट्ठियों में कागज़ दबा लिये और बड़ी गम्भीरता से, एकाग्रचित्त होकर उन्हें पढ़ने लगा। उधर मेज़ ऐसे चरमरा रही थी, जैसे कोई भीमकाय अखरोट तोड़ा जा रहा हो। आखिर जब कमांडर मुड़ा, तो देखा कि सड़क पर न मेज़ है, न सैनिक, और तुरन्त ही उसने खुशी-खुशी कागज़ लौटा दिये।

"अच्छा, तो सरातोव से आये हैं? सरातोव तो नहीं गया, हां त्सरीत्सिन जाने का मौका मिला था, कामरेड वोरोशीलोव के साथ ही... चलिये, अंदर चलें।"

पता चला कि वह वोरोशीलोव का एड्जुटेंट है और उसे यहां पड़ाव का प्रबन्ध करने भेजा गया है। उसने किरील को बताया कि पास के गांव में दक्षिणी मोर्चे और प्रथम अश्वारोही सेना की क्रांतिकारी सैनिक परिषदों की संयुक्त बैठक हुई थी। सेर्पुखोव से, जहां दक्षिणी मोर्चे का हेडक्वार्टर था, कामरेड स्तालिन आये थे और उन्होंने बैठक में देनीकिन को हराने की योजना को पूरा करने में प्रथम अश्वारोही सेना के कार्य-भारों के बारे में बताया था। यहां आस-पास के इलाके में अश्वारोही सेना की कई टुकड़ियां जमा थीं और नोवी ओस्कोल के पास उनकी परेड होनेवाली थी (मोर्चे पर हर डिविज़न की एक-एक ब्रिगेड लड़ रही थी)।

"चलेंगे देखने? घंटे भर बाद मेरी स्लेज तैयार होगी," एड्जुटेंट ने कहा।

बातें करते हुए वह अधिकाधिक सत्कारशील होता जा रहा था। शायद मेज़ के झंझट से वह सचमुच ही खीजा हुआ था। अब सब कुछ ठीक-ठाक हो रहा था, और वह सैनिकों को यह बता रहा था कि फ़र्नीचर कैसे लगायें, गमले बाहर ले जा रहा था, तसवीरें एक जगह से हटाकर दूसरी जगह टांग रहा था – इस सब काम का वह आदी लगता था, सो अधिक मिलनसार हो रहा था।

"चले चलिये! हर हालत में कामरेड वोरोशीलोव ही आपकी नियुक्ति अनुमोदित करेंगे। और अपनी टुकड़ी के बारे में आपको रिपोर्ट भी उन्हें ही देनी है। सो, अभी वक्त है। आप देखेंगे कैसी हैं हमारी डिविज़नें अब! बस देखते ही रह जायेंगे!"

वह कुछ सोच में पड़ गया।

"क्या ख्याल है, लगी रहने दूं? या हटा दूं?"

उसने असमंजस के साथ सिर से दीवार की ओर इशारा किया, जहां प्राचीन रूसी वेश-भूषा पहने महिला का धुएं से काला पड़ गया चित्र टंगा हुआ था।

"क्यों क्या परेशानी है?"

"भई, यहां कमांडरों और कमिसारों को क्रांतिकारी सैनिक परिषद के सामने पेश किया जायेगा।"

"तो क्या हुआ? यह तो माकोव्स्की* का चित्र है।"

"शैतान जाने इस कला को! कभी कुछ कहा नहीं जा सकता।"

दोनों हंस पड़े – अपने-अपने मन की बात पर। उनमें वह आत्मीयता आ रही थी, जो मोर्चे पर इतनी आसानी से लोगों के सम्बन्धों में आ जाती है, और प्रायः इतनी ही जल्दी भुला भी दी जाती है, परन्तु कभी-कभी सैनिकों की जीवन भर की मित्रता बन जाती है।

किरील और एड्जुटेंट जब परेड देखने निकले, तब तक दोनों दोस्त बन चुके थे। स्लेज की पट्टियां हिम पर चलती लगातार एक सुर में चरमराती जा रही थीं, सड़क के गड्ढों में स्लेज सहज ही गोता लगाती और फिर धीरे-धीरे ऊपर उठ आती, इसके साथ ही सवार पहले आगे को

---

* माकोव्स्की – १९ वीं सदी का सुविख्यात चित्रकार। – सं०

गिरते और फिर पीछे को, यों गिरते हुए उनकी वातचीत भी पहले तेज़ हो जाती और फिर धीमी पड़ जाती।

नगर के बाहर पहुंचते ही उन्हें असीम स्तेपी दिखाई दी, जिसमें कहीं-कहीं टीलों की शृंखलाएं थीं। स्तेपी के दूधिया विस्तार में बल खाते लंबे-लंबे हिम-सर्प तेज़ी से बढ़ रहे थे। जाड़े के दिन का यह सबसे उजला पहर था, लेकिन हिमानी वादलों की सीसे की चादर सारे आसमान पर नीची छाई हुई थी।

दूर से ही किरील को परेड के लिए खड़े अश्वारोही सैनिकों की कटी-कटी रेखाएं दिखने लगीं। उनकी टुकड़ियां रेल लाइन के स्लीपरों की भांति विशाल क्षेत्र में फैली हुई थीं। कुछ पास को लोगों की काली लाइन दिख रही थी, उसके निकट पहुंचते हुए स्लेज गाड़ी अपने पीछे वहुत से लोगों को छोड़ती जा रही थी, जो देर हो जाने के डर से तेज़-तेज़ चल रहे थे।

भीड़ के पास पहुंचकर जब वे स्लेज से उतरे, तो पाया कि दर्शकों के उस बिचले भाग तक आगे घुस पाना मुमकिन नहीं है, जहां लाल झंडे लहरा रहे थे और उन लोगों के लिए जगह बनी हुई थी, जिन्हें सलामी लेनी थी। किरील और एड्जुटेंट फिर से स्लेज में बैठ गये और भीड़ की पीठ पीछे बढ़ते हुए ऐसी जगह ढूंढने लगे, जहां कुछ कम लोग खड़े हों।

दूर से "हुर्रा" की गूंज आ रही थी, हवा के झोंके कभी-कभी संगीत के स्वरों को यहां तक ले आते, कभी वे बीच में ही खो जाते। निरीक्षण आरम्भ हो गया था—क्रांतिकारी सैनिक परिषदों के सदस्य डिविज़नों का चक्कर लगाते हुए सैनिकों का अभिवादन कर रहे थे।

आखिर उन्हें उपयुक्त स्थान मिल गया। किरील भीड़ में घुसकर आगे पहुंच गया और वहां उसने स्तेपी पर नज़र दौड़ाई। उसके बिल्कुल सामने और दाईं ओर को स्तेपी क्षितिज तक चली गई थी, और वहां कोई धब्बा तक नहीं दिखाई दे रहा था, वस दूर कहीं पेंसिलों जितने ऊंचे तार के खंभे धरती पर वल खाते उड़ रहे हिम के पीछे से धुंधले से दिख रहे थे। बाईं ओर रिसाला था, टकटकी लगाने पर वहां अगली कतार में घोड़ों की लाइन और उसके ऊपर घुड़सवारों की पतली सी रेखा तथा कहीं-कहीं हवा में प्रकट हो उठते ध्वज देखे जा सकते थे।

संगीत और जय-जयकार बंद हो गया, बाहों पर लाल क्रॉस की पट्टियां बांधे तथा कंधों पर झोले लटकाये अरदली प्रकट हुए, परेड मैदान में ड्यूटी के लिए नियुक्त सैनिक दौड़कर अपनी-अपनी जगह खड़े होने लगे। यह क्षणिक हलचल खत्म हो गई, तो किरील ने देखा कि बाईं ओर से भीड़ के समानांतर कुछ घुड़सवार और उनके पीछे स्लेज गाड़ी भीड़ के केन्द्र की ओर आ रही है।

"आ रहे हैं, आ रहे हैं," एड्जुटेंट ने किरील को बगल में टहोका देते हुए कहा।

परन्तु तभी घुड़सवारों का दल भीड़ की अगली पंक्ति के इतने पास आ गया कि उसमें घुल-मिल सा गया, और किरील को वहां कुछ दिखाई नहीं दे रहा था, हालांकि वह अगली कतार से एक कदम आगे बढ़ गया था।

इसके तुरन्त बाद ही बिगुलों के ताम्र स्वर गूंजे और दूर कहीं आदेश दिये जाने लगे, जो यहां प्रायः सुनाई नहीं दे रहे थे। लेकिन यह सब किरील के बाईं ओर काफ़ी दूर हो रहा था, और अब उसे यह ख्याल आया कि वह घटनाओं के केन्द्र से कितनी दूर खड़ा है। उसे इस बात पर अफ़सोस हो रहा था कि वह यहां एक ओर को खड़ा है, जबकि उसका मन बीच में खड़े होने का था, किन्तु यह अफ़सोस उसके हर्षोल्लास को नहीं दबा सकता था, जो सैनिकों की अभेद्य दीवार को देखकर उसके मन में प्रतिपल बढ़ रहा था। इतनी दूर से यह स्पष्ट आभास होता था कि किसी भी क्षण चल पड़ने की तत्परता में अश्वारोही भी और अश्व भी एकदम तने खड़े हैं; असीम हिमाच्छादित विस्तार भी इसी तनाव से भरा लगता था।

आदेशों के स्वर आने बंद हो गये, स्तेपी की निस्तब्धता में हवा के धरती से टकराने की आवाज़ और उस पर बढ़ते हिमकणों की सरसर सुनाई पड़ रही थी।

और फिर पास ही कहीं बैंड बजने लगा। यह कैवेलरी की उत्साह-वर्द्धक मार्च-धुन थी, जिसमें वीरता के साथ ज़िंदादिली का पुट था, और जिसकी ताल सधे घोड़े की इठलाती चाल पर आधारित थी। संगीत के इन स्वरों में शनैः-शनैः भूगर्भ से उठती दबी-दबी गड़गड़ाहट मिल रही थी: रिसाला चल दिया, परेड शुरू हो गई।

परन्तु यह एक विशिष्ट गति थी, जिसमें सैनिकों के मार्च के साथ उतनी ही कम समानता थी, जितनी कबूतरों की उड़ान और मनुष्य की चाल के बीच है।

डिविज़नें नम्बरों के क्रम में आ रही थीं, और परेड का उद्घाटन चौथी डिवीज़न कर रही थी। इसकी सबसे अगली स्क्वैड्रन दुलकी चाल से चली, पर तुरन्त ही घोड़ों को सरपट दौड़ाने लगी। सैनिकों ने तलवारें सिरों के ऊपर उठाईं। काठी पर झुका और लाल ध्वज की अग्नि-जिह्वाओं में लिपटा ध्वजवान दंड को भाले की भांति नीचे झुकाये बर्फ़ीली हवा को चीरता बढ़ रहा था और उसके पीछे विस्तार के खुले सिंहद्वार में स्क्वैड्रन उफनती आ रही थी।

भारी गड़गड़ाहट में ठंड से जकड़ी ज़मीन की टंकार भी मिल गई – नालें हिम आवरण को भेद रही थीं और धरती सहस्रों घंटियों सी टंकार कर रही थी। अश्वारोहियों ने जयनाद किया। घोड़े पूरी रफ़्तार से दौड़ रहे थे। उनके सुमों तले से हिमकण उमड़-घुमड़ रहे थे और धार से दायें-बायें उड़ रहे थे।

तूफ़ानी वेग से यह लहर उस स्थान तक बढ़ आई, जहां से पल भर पहले मार्च-धुन सुनाई दे रही थी। धरती की गड़गड़ाहट, सैनिकों के जयनाद तथा सैकड़ों घोड़ों की टाप में संगीत के स्वर पूरी तरह खो गये। इस उफान पर क्षण भर को अवाक रह गये दर्शकों ने भी हर्षनाद किया और सभी स्वर एक अनवरत गर्जन में मिल गये।

सरपट दौड़ती गई स्क्वैड्रन की कुछ झलकें ही किरील की नज़रों में पड़ीं : एक दमकता ताम्रवर्णी चेहरा और उस पर चमकते दांत ; लाल-पीली सी फ़र की टोपी ; मुश्की घोड़े का ऊंचा उठा थूथना और दहाने को ज़ोरों से चबाते जबड़े ; और फिर भांजी जा रही तलवारों की चमक ; और सहसा एड़ लगाता विशाल काला बूट, और फिर सुरंग अयाल से सटा नौजवान का फक चेहरा। उमड़ते-घुमड़ते हिम में किरील ने ये सब झलकें पाई ही थीं कि स्क्वैड्रन दाईं ओर को दूर निकल गई। बाईं ओर से नई स्क्वैड्रन हर्षनाद और हुंकार के साथ बढ़ती आ रही थी।

इस तरह एक के बाद दूसरी स्क्वैड्रनें उफनती नदी सी चली आ रही थीं। सैनिकों में कोई घुटनों तक लंबा भेड़ की खाल का कोट पहने था, कोई साधारण फ़ौजी ओवरकोट, कोई कमर से सटे कज़्ज़ाक कोट,

कोई पतले नमदे का काकेशियाई कोट, कोई मज़दूरों वाली मिरज़ई और कोई लड़ाई में हाथ लगी अंग्रेज़ी वर्दी। उनके कंधों पर बंदूकें थीं और सिरों पर कपड़े और फ़र की भांति-भांति की टोपियां। घोड़े भी अलग-अलग रंग और नस्ल के थे। बस सभी की तलवारें एक समान चमक रही थीं और उनके अच्छे रूसी फ़ौलाद की खनक एक जैसी थी।

"छठी डिविज़न आ रही है! छठी!" इज़्वेकोव के नये साथी ने उसके कान में चिल्लाकर कहा।

किरील ने दंड के नुकीले सिरे से हवा को चीरते आ रहे ध्वजवान की ओर नज़र घुमा ही ली थी, तभी चौथी डिवीज़न की आखिरी स्क्वैड्रन में से काला सा गोला गिरा और हिम-धूल में लोटने लगा।

"गिर गया! गिर गया!" लोग चिल्लाये। "कुचला जायेगा!" गिर पड़ा घुड़सवार भीड़ से कोई दस कदम दूर चित पड़ा हुआ था और उससे थोड़ी दूर बगल से उठकर खड़े होने की कोशिश में घोड़ा टांगें फेंक रहा था।

किरील लपककर सैनिक के पास पहुंच गया, उसकी बांह पकड़कर उसे हिम पर घसीटने लगा। लेकिन सैनिक का दूसरा हाथ तेगवन्द में फंसा हुआ था, तलवार ज़मीन में गड़ गई थी और मानो अपने स्वामी को छोड़ना नहीं चाहती थी। किरील ने तलवार ज़मीन में से निकाली और फिर से सैनिक को घसीटने लगा। पास ही से ध्वजवान के गुज़रने की आवाज़ आई, छठी डिवीज़न के हरावल दस्ते की टापों की गड़गड़ाहट भी बढ़ती आ रही थी। तभी अरदली आ गया और वे दोनों मिलकर सैनिक को मैदान से निकाल ले गये। भयभीत घोड़ी खड़ी हो गई थी, ड्यूटी का सैनिक उसकी ओर लपका, लगाम खींचकर आखिरी क्षण में उसे परे ले गया, जब दस्ता वहां पहुंच ही गया था। दाईं कतार के घोड़े की छाती रास्ता पार करती घोड़ी के पुट्ठे से इतनी ज़ोर से टकराई कि वह लोगों पर गिरने-गिरने को हुई।

इस सब में कुछ सेकंड लग गये, चूंकि किरील और अरदली परेड देखने को उतावले थे, इसलिए उन्होंने सैनिक को मैदान से हटाकर हिम पर रख दिया।

ज़मीन पर गिरते ही सैनिक होश में आ गया। उसके सिर पर घुंघराले सुनहरे बालों का प्रकृतिदत्त टोप था, और उनके ऊपर जो

शिरस्त्र उसने धारण कर रखा था, वह अब मैदान में घुड़सवार दस्तों द्वारा रौंदा जा रहा था। सैनिक ने सिर उठाकर लोगों पर नज़र डाली, अपनी तलवार की मूठ टटोली (किरील ने तलवार म्यान में डाल दी थी), स्प्रिंग की तरह उछलकर खड़ा हो गया, अपनी लटों में हाथ डाले और गला फाड़कर चिल्लाया:

"माश्का! कहां है माश्का, हरामज़ादी?!"

तभी लोगों के कंधों के पीछे उसने अपनी घोड़ी देख ली, जो पेशानी पर अबलक सितारे वाला थूथना ज़ोर-ज़ोर से झटक रही थी। वह लपककर उसके पास गया और पूरी बांह घुमाकर उसकी आंखों के बीचोंबीच करारी चोट रसीद की। फिर बाग पकड़कर और उसे इधर-उधर झटकाते हुए चिल्लाने लगा:

"तेरा सत्यानास जाये, हरामज़ादी! दगा दे गई! काम तमाम कर दूंगा, मुई का!"

पर शीघ्र ही लोग परेड देखने में मग्न हो गये और इस घटना को भूल गये।

"ग्यारहवीं डिविज़न!" बुद्योन्नी टोप पहने एक से एक बढ़कर दिलेर घुड़सवारों को आते देखकर एड्जुटेंट बड़े जोश से चिल्लाया। इस बिल्कुल नई ही किस्म के शिरस्त्र और वर्दी की समानता से उनका तूफ़ानी वेग और भी अधिक प्रचण्ड लगता था, उनका हुंकारा और भी अधिक ज़ोरदार—वे मानो अपने प्राण हथेली पर लिये रणक्षेत्र को जा रहे थे।

जिस क्षण से किरील घोड़े से गिर पड़े सैनिक की मदद को लपका था, उस क्षण से परेड के दर्शक का उसका उल्लास और उत्साह परेड में भाग लेनेवाले की तीव्र अनुभूति में परिवर्तित हो गया था। वह मानो हवा से बातें करते अश्वारोहियों को देख नहीं रहा था, बल्कि स्वयं भी अदृश्य घोड़े पर सवार हो उनके साथ उड़ा जा रहा था। अंतर केवल इतना ही था कि प्रत्येक सैनिक लोगों के सामने से अपने दस्ते के साथ केवल एक बार गुज़रता था, और किरील हर दस्ते, हर सैनिक के साथ गुज़र रहा था। उसका अंग-अंग फड़क रहा था।

सारा मार्च देखते-देखते पूरा हो गया। प्रायः पंद्रह मिनट में ही प्रथम अश्वारोही सेना के लगभग दो-तिहाई सैनिक अपने कमांडरों के सामने से सलामी देते हुए गुज़रे।

लोग तुरन्त ही सारी व्यवस्था भूल-भालकर सलामी मंच की ओर लपके। फिर से संगीत सुनाई देने लगा। झंडे फड़फड़ा रहे थे। अलग-अलग घुड़सवार भीड़ में इधर-उधर आने-जाने लगे।

"सामने देखिये," किरील के साथी ने कहा, जो अभी तक उससे एक कदम भी दूर नहीं हटा था। "नुकरा घोड़ा देख रहे हैं? वो घुड़सवारों के बीच, हमारी ओर आ रहे हैं। देखा?"

भीड़ की वजह से किरील कुछ देख नहीं पा रहा था। एक झंडा सामने से ले जाया गया, फिर एक और।

"दायें देखिये, दायें! जल्दी से!"

किरील को कुछ घुड़सवार दिखे, जो दुलकी चाल से उधर जा रहे थे, जिधर डिवीज़नें गई थीं। वह उनकी शक्लें देखने की कोशिश कर रहा था, लेकिन घुड़सवार पास-पास चल रहे थे और वह उनमें से किसी को भी अच्छी तरह नहीं देख पा रहा था। उसे लोगों की आवाज़ें सुनाई दीं:

"वृद्योन्नी! वृद्योन्नी!"

एड्जुटेंट ने किरील की बांह खींची।

"स्लेज देखी? स्तालिन है उसमें, स्तालिन!"

पल भर को किरील ने सैनिकों जैसा ओवरकोट तथा शिरस्त्र सा फ़र का कनटोप पहने व्यक्ति को स्पष्टतया देखा। कनटोप का कानों को ढकनेवाला हिस्सा नीचे लटका हुआ था, इसलिए चेहरा दिखाई नहीं दिया।

स्लेज गाड़ी जल्दी से मोड़ के पीछे ओझल हो गई, किरील को बस उसकी मखमली पीठ ही दिखाई दी।

वह अभी गायब होती स्लेज की ओर देख ही रहा था कि एड्जुटेंट ने उससे कुछ कहा। लेकिन जब किरील ने मुड़कर देखा तो वहां कोई नहीं था, न एड्जुटेंट और न उसकी स्लेज गाड़ी – जितनी तत्परता से वह किरील को अपने साथ यहां लाया था, उससे भी अधिक आसानी से वह उसे छोड़कर चला गया था।

किरील हंस पड़ा और प्रसन्नचित्त चल दिया – भीड़ के पीछे-पीछे नगर की ओर।

उमंग के क्षणों में किरील के लिए चिंतन-मनन भी ऐंद्रिय अनुभव

हो जाता था। जीवन का ऐंद्रिय बोध मस्तिष्क में उठते विचारों और छापों के अनवरत क्रम के साथ एकाकार हो जाता था। स्तेपी का एकरूप दृश्य तथा समान गति से निर्बाध बढ़ते कदम इस समय उसके विचारों एवं भावनाओं के ऐकात्म्य को और भी अधिक सुदृढ़ कर रहे थे। चलने में उसे आनन्द आ रहा था।

किरील हृदय पर गहरी पड़ी छाप के अलग-अलग ब्योरों पर विचार नहीं कर रहा था। वह इस समग्र छाप को ही हृदय में समेटे लिये जा रहा था।

स्तेपी में सहर्ष चलते हुए किरील के स्मृति-पटल पर कई बार वह अंतिम छाप सजीव हो उठी थी। यह छाप यों तो साधारण सी ही थी: मोड़ पर मखमली स्लेज की झलक, उसमें बैठा व्यक्ति, सैनिकों के ओवरकोट में उसके कंधे, फ़र का कनटोप।

किरील जब शहर पहुंचा, तो झुटपुटा हो चला था। उसे यह नहीं पता था कि रात कहां काटनी होगी। लेकिन इस चिंता से वह परेशान नहीं था। उसके मन में सैनिकों का यह विश्वास था कि वह सेना में है तो सब कुछ ठीक ही होगा।

चौराहे पर किसी ने ज़ोर से उसे पुकारा। दौड़ता घोड़ा सड़क के बीचोंबीच रुका। छोटी सी स्लेज में एक दूसरे की गोद में चार कमांडर बैठे थे। उनमें से एक उछलकर नीचे उतरा। किरील एड्जुटेंट को पहचान गया। किरील की ओर दौड़ते हुए वह चिल्लाया:

"आप सीधे उस मकान को जाइये, जहां हम मिले थे। पर आपको वहां अंदर नहीं जाने देंगे। उसके आगे एक और छोटा मकान है... अभी मैं भी पहुंचता हूं वहीं!"

किरील तक आये बिना ही वह वापस मुड़ गया। स्लेज चल ही पड़ी थी, जब वह उछलकर अपने कामरेड की गोद में बैठ गया।

शीघ्र ही किरील उस जाने-पहचाने मकान तक पहुंच गया। अंधेरा घिर आया था। तंग सी खिड़कियों में से पीली रोशनी आ रही थी। बाड़ से कुछ घोड़े बंधे खड़े थे, जिन पर साज़ कसे हुए थे। मकान के दरवाज़े के पास किरील को दंड और ध्वज दिखे, ध्वज शायद लाल था, लेकिन अंधेरे में काला ही लग रहा था। रिसाले का पुराना सैनिक तुरन्त समझ जाता कि यहां हेडक्वार्टर के दस्ते का पड़ाव है। दरवाज़े पर दो संतरी खड़े थे। इधर-उधर लोग आ जा रहे थे, अंधेरे में सब

एक जैसे लग रहे थे और उनके पांवों तले हिम की चर्र-चर्र हो रही थी।

कोई पचास कदम आगे जाने पर किरील को छोटे मकान की खिड़कियों से आती रोशनी दिखाई दी। सैनिक ज़ोर-ज़ोर से बातें करते हुए बाहर निकल रहे थे। वह उनसे कुछ पूछने ही लगा था कि पीछे से स्लेज आ पहुंची।

"आप पहुंच भी गये? चलिये, कुछ खा-पी लें!" एड्जुटेंट ने स्लेज से कूदकर किरील की बांह पकड़ते हुए कहा।

बड़े कमरे में बहुत से कमांडर जमा थे। गोल मेज़ पर सादी डबलरोटी, उक्राइनी चर्बी और भूना गोश्त काटे जा रहे थे। नमकीन खीरे और बंदगोभी रखे हुए थे। एक गिलास बारी-बारी सबको दिया जा रहा था। बिना बटनों वाला भेड़ की खाल का कोट पहने चौड़े कंधों वाला मुच्छड़ ढाई लीटर की बोतल में से चासनी जैसी गाढ़ी, आलू-बुखारे के रंग की शराब गिलास में उंडेल रहा था।

"ज़रा जगह दो, कामरेडो! बोल्गा वाले को भी दो घूंट भर लेने दो," एड्जुटेंट ने कहा।

किरील को गिलास थमा दिया गया। खाने की गंध से उसे भूख का अहसास हुआ। किसी ने उसे शिकारियों का भारी सा चाकू पकड़ा दिया। उसने डबलरोटी का एक सिरा काटा। किसी ने पूछा वह कहां से आया है। किरील एक घूंट में सारा गिलास पी गया, फिर सांस लेकर उसने जवाब दिया। बातचीत शुरू हो गई।

खाना खाने के बाद किरील ने इस छोटे मकान के कमरों का चक्कर लगाया। एड्जुटेंट एक बार फिर गायब होने से पहले उसे कहता गया था कि वह रात यहीं काट सकता है, और सुबह ठीक तरह से इंतज़ाम हो जायेगा। लेकिन सारे मकान में सोने के लिए कोई जगह खाली नहीं थी।

किरील फिर से बड़े कमरे में लौट आया। यहां किसी स्टेशन की ही भांति नये-नये लोग आकर खाना खाते और चले जाते। एक कोने में उसे आरामकुर्सी दिखी, जिसके स्प्रिंग ढीले पड़े हुए थे। किरील ओवरकोट के बटन खोलकर कुर्सी में बैठ गया। गर्माहट और थकावट के कारण जल्दी ही वह ऊंघने लगा।

आंखें मूंदते हुए किरील सोच रहा था कि आराम करके फ़ौरन ही पत्र लिखेगा। वह अपने विचारों और छापों में से उनको अलग कर रहा

था, जिन्हें वह अच्छी तरह याद रखना चाहता था और इसके लिए लिख लेना चाहता था, ताकि नये अनुभव इन पहली छापों पर हावी न हो जायें। सबसे पहले मन ही मन वह केवल आनोच्का को चिट्ठी लिखने लगा, फिर मां को भी। कई बार उसने चिट्ठी इन शब्दों से शुरू की कि उसे यहां बहुत अच्छा लग रहा है, कि वह यह बता भी नहीं सकता कि क्यों उसे इतना अच्छा लग रहा है। वह बस यही चाहता था कि वे उसकी बात पर विश्वास कर लें। परन्तु फिर भी वह मन में इसका कारण खोज रहा था कि क्यों उसे इतना अच्छा लग रहा है। उसने सोचा वह लिखेगा कि कैसे स्तेपी में अश्वारोही दस्तों की टापों से धरती के गर्भ से उठती गड़गड़ाहट पर वह स्तब्ध रह गया था और कैसे वह उसे अपने साथ बहा ले चली थी; कि यह गड़गड़ाहट सारे संसार में गूंज रही है; कि ये इतिहास के बढ़ते कदम हैं; कि इस वक्त उसका, किरील इज़्वेकोव का हृदय इसीलिए उमंग से ओत-प्रोत है कि उसने इन गरजते कदमों में अपना छोटा सा, किन्तु दृढ़ कदम मिलाया है। जैसे ही उसने मन में इतिहास के कदमों की यह बात कही, वैसे ही वह समझ गया कि वह न आनोच्का को लिख रहा है, न मां को, बल्कि रागोज़िन को लिख रहा है। तीनों पत्र उसके विचारों में मिलकर एक हो गये। परन्तु फिर भी उसने नींद से जूझते आदमी की भांति जतन करके तीनों के नाम पत्रों में से आनोच्का के लिए पत्र अलग कर लिया। और तब उसने सोचा कि वह आनोच्का को वह पुरानी बातचीत याद दिलायेगा, जब वे मां के कमरे में पहली बार मिले थे। और उसके मन में वह दृश्य बिल्कुल साफ़-साफ़ उभर आया – कैसे मां ने आनोच्का की बिखरी लट ठीक की थी और मुस्कराई थी। किरील आनोच्का को कला पर हुई उनकी बातचीत याद दिलायेगा और यह लिखेगा कि उसे कला से अनुराग है। और वह यह भी लिखेगा कि उसे यहां बहुत अच्छा लग रहा है क्योंकि केवल यहां पर ही, जहां अब वह है, उसके लिए जीवन का संगीत पूरी तरह से ध्वनित हो रहा है, केवल यहां पर तथा इस क्षण ही – और कहीं भी नहीं। इसके बाद उसके विचार धुंधले से पड़ने लगे, हालांकि वह इसी ख्याल में था कि वह एकाग्रचित्त होकर सोच रहा है और चिट्ठी लिख रहा है, उसे बस एक बात का ख्याल नहीं था: कि वह चित्त को शांत करनेवाली गहरी नींद में सो गया है।

शायद सन्नाटे के कारण ही उसकी आंख खुली। मेज़ के पास एक सैनिक बैठा इतमीनान से कुछ खा रहा था। दूसरा सैनिक फ़र्श पर अपनी लम्बी फैली बांह पर सिर रखे सो रहा था। लैम्प की बत्ती बुझने से पहले तड़तड़ कर रही थी।

ओवरकोट के बटन बंद करके किरील बाहर निकल आया। हवा अब नहीं चल रही थी, ठंड काफ़ी बढ़ गई थी, आकाश निरभ्र था, शुक्ल पक्ष का अर्द्ध चन्द्र निकला हुआ था। धरती पर बरसती ज्योत्स्ना में हिम झिलमिला रहा था और हिमाच्छादित रास्ता ऊपर ही ऊपर जाता हुआ उस पर बढ़ते जाने का आह्वान करता लगता था।

और दो-तीन लोग भी बाहर निकल आये थे, तथा किरील की ही भांति शीतकालीन रात्रि के सौंदर्य का रसपान कर रहे थे। पूर्ण नीरवता थी, बस कभी-कभार ही कहीं सोते-सोते कोई घोड़ा फुफकार उठता।

जिस मकान पर संतरी पहरा दे रहे थे, उसमें से एक सैनिक बाहर आया और दौड़ चला। उसके नमदे के बूटों तले हिम की चरमराहट हो रही थी। वह छोटे मकान में चला गया और फिर तुरन्त ही बाहर निकल आया।

"अरे भई, कामरेडो!" वह ज़ोर से पुकारने लगा। "इज़्वेकोव नाम का है कोई यहां?"

किरील ने जवाब दिया।

"मेरे साथ चलिये, आपका बुलावा है!"

वह किरील को अंदर ले गया।

उस बड़े कमरे में, जहां किरील दिन को एड्जुटेंट के साथ आया था, काफ़ी भीड़ थी। कमांडर और कमिसार दीवारों के पास खड़े थे, खिड़कियों के दासों पर और मेज़ के पास बैठे थे। किरील दरवाज़े में खड़ा हो गया। भांति-भांति के कुछ लैम्प इस दृश्य पर रोशनी डाल रहे थे। मेज़ के पीछे दीवार पर टंगे दक्षिणी रूस के बड़े से नक्शे की ओर किरील का ध्यान गया। नक्शे पर पिनों से लगी छोटी-छोटी झंडियां तथा लाल और नीली पेंसिलों से बने तीर, कोष्ठक आदि स्पष्टतया यह इंगित करते थे कि नक्शा कैसा है। मेज़ पर समोवार रखा हुआ था, और खाने-पीने की वे ही साधारण चीज़ें जो बगल के छोटे

मकान में किरील ने देखी थीं। रंग-विरंगी वोतलें खाली हो चुकी थीं। तश्तरियां वगैरह मेज़ के एक सिरे पर हटा दी गई थीं। खाना खत्म हो चुका था।

खिड़कियों और दीवारों के पास जमा लोग दवी-दवी आवाज़ों में वातें कर रहे थे, और मेज़ के पास वैठे लोग उन थोड़े से लोगों की हौले-हौले हो रही वातचीत सुन रहे थे, जिन्हें किरील लैम्प के कारण देख नहीं पा रहा था। धुएं के वादल उमड़-घुमड़ रहे थे। किरील दरवाज़े से आगे बढ़ा, ताकि मेज़ के पास बातें कर रहे लोगों को देख सके। तभी सहसा एड्जुटेंट उसके पास आ पहुंचा और काफ़ी ऊंची आवाज़ में वोलते हुए, पर न जाने क्यों किरील के कान में उसने कहा:

“चलिये, मिलवाता हूं।”

मेज़ के पास पहुंचते ही उसने किरील की वांह खींची और उनकी ओर पीठ किये खड़े व्यक्ति को संवोधित किया:

“कामरेड वोरोशीलोव, वह सरातोव वाला आ गया, जिसके बारे में मैंने आपको बताया था।”

वोरोशीलोव मुड़ा, जल्दी से इज़्वेकोव को निहारा और कहा:

“नमस्ते, कामरेड कमिसार।”

“कामरेड वोरोशीलोव, मैं कमिसार नहीं,” किरील ने कहा।

“कमिसार कैसे नहीं? मुझे आपके बारे में ऐसी-ऐसी बातें बताई गई हैं कि आपको बस अभी पूरी ब्रिगेड सौंपी जा सकती है।”

किरील चुप रहा। अभिवादन का उत्तर देते हुए उसने ज़ोर से एड़ियां बजाई थीं, पर यह भूल गया था कि वह चमड़े के नहीं, नमदे के बूट पहने है, सो पांवों की गति भोंडी सी रही और किरील सकपका गया।

“कभी काठी में तो वैठे हैं?” वोरोशीलोव ने पूछा।

“जी हां।”

“कैसा रहा था? टिके रहे थे?”

“जी हां, टिका रहा था।”

वोरोशीलोव ने मुस्कराते हुए सिर हिलाया।

“अच्छा, चलिये।”

वे मेज़ के परले सिरे पर उन लोगों के पास गये, जो बातचीत रहे थे। यहां कमांडर एक दूसरे से सटे खड़े थे और एक फ़ौजी

धीरे कुछ सुना रहा था। वोरोशीलोव खड़े लोगों का घेरा तोड़कर अंदर घुसा, किरील भी उसके पीछे बढ़ा।

घेरे के बीच में स्तालिन और बुद्योन्नी बैठे थे। सुनानेवाला उनकी ओर झुका घुटनों पर कोहनियां टिकाये बैठा था और हाथ हिलाये-डुलाये बिना इतमीनान से कुछ सुना रहा था, प्रत्यक्षतया वह इस बात का आदी था कि लोग उसकी बातें ध्यान से सुनते हैं।

स्तालिन घनी मूंछों तले से धुआं छोड़ते हुए बीच-बीच में अपनी पैनी नज़र उस पर डाल रहा था।

फ़ौजी कह रहा था: "वोरोनेज के फ़ौरन बाद मैंने मिरोनेन्को को सफ़ेद गार्डो के पीछे भेजा। वह पुरानी फ़ौज में हवलदार था। दोनबास का खनिक है। मैंने उसे हुक्म दिया कि वह अपनी ब्रिगेड के साथ हमला करते हुए यह टोह ले कि सफ़ेद गार्ड किन-किन गांवों में हैं, कितने दिनों से ठहरे हुए हैं, किस तरह की उनकी फ़ौजें हैं, वगैरा-वगैरा। काम पूरा होते ही उसे फ़ौरन रपट देने को कहा। सो मैं इंतज़ार करने लगा – घंटा बीता, दो घंटे, तीन घंटे। आधी रात हो गई। कोई खबर नही। आखिर बहुत रात गये हरकारा लिफ़ाफ़ा लाया। लिफ़ाफ़ा खोला, देखा – बस दो पंक्तियां लिखी हैं: 'दुश्मन सिर पर पैर रखके भाग रहा है – रोस्तोव नगर की ओर'। और रोस्तोव था पूरे पांच सौ मील दूर!"

स्तालिन हंसा। एक सिगरेट से दूसरी सिगरेट जलाते हुए उसने हर्षमय स्वर में कहा:

"जब सोते-जागते रोस्तोव दिखता हो, तो फिर टोह क्या ली जायेगी!"

कुछ और लोग बातचीत में शामिल हुए। एक बोला:

"फ़ौजी नियमों का पालन करना मुश्किल हो रहा। अभी उस दिन मैंने नियम के अनुसार सैनिकों को पड़ाव डालकर आराम करने का आदेश दिया। तभी रपट मिली: सिपाही नाराज़ हो रहे हैं, कहते हैं आराम करने में वक्त बेकार जाता है, आगे बढ़ना चाहिए, दुश्मन को खदेड़ना चाहिए।"

दूसरे ने कहा:

"घर पहुंचने की जल्दी में हैं।"

"घर?" स्तालिन ने सहज भाव से पूछा।

"मेरी यूनिट में ज़्यादातर सैनिक दोन और कुबान इलाके के हैं। जल्दी-जल्दी वहां पहुंचना चाहते हैं।"

स्तालिन ने चालाकी भरी मुस्कान के साथ धीरे-धीरे आस-पास जमा लोगों पर नज़र डाली।

"वैसे तो नियमों का पालन होना चाहिए। पर सच पूछें तो मैं इस बात के खिलाफ़ हूं कि पड़ाव ज़्यादा लंबे हों। लगता है, कामरेडो, हमारी बातचीत कुछ ज़्यादा ही खिंच गई।"

वह उठ खड़ा हुआ। जो लोग बैठे हुए थे, वे सब उठने लगे, अपनी जेबों से घड़ियां निकालने लगे। स्तालिन ने एक बार फिर से, पर अब गम्भीरतापूर्वक इर्द-गिर्द खड़े लोगों पर नज़र डाली और पहले की ही भांति मंद स्वर में बोला:

"मैं दुबारा कहता हूं: हमें जल्दी करनी चाहिए। अच्छा, कामरेड कमिसारो और कमांडरो, एक बार फिर आपकी सफलता की कामना करता हूं। उस सफलता की, जो देनीकिन की फ़ौजों का नामोनिशान मिटा देगी। आज बुद्योन्नी का जो रिसाला हमने देखा है, उससे इसमें शक की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती।"

स्तालिन ने बुद्योन्नी से हाथ मिलाया और जाने के लिए मुड़ा। वोरोशीलोव ने उसकी ओर कदम बढ़ाया।

"कामरेड स्तालिन, यह सरातोव से कामरेड आये हैं। हमारी नई टुकड़ियों के लिए घुड़सवार दस्ता लाये हैं।"

स्तालिन ने किरील से हाथ मिलाया और सहसा सवालों की झड़ी लगा दी: दस्ता कितना बड़ा है, कैसे लोग हैं उसमें, उन्हें अच्छा प्रशिक्षण मिला है कि नहीं, सफ़र कितने दिन का था, कहां गाड़ी से उतरे, और फिर यह कि किरील का पूरा नाम क्या है, ज़ारशाही फ़ौज में था कि नहीं, कहां काम किया था, सरातोव में लोगों का हौसला कैसा है।

"कैवेलरी में वालंटियरों की भरती जारी है, लोग खुशी-खुशी भरती हो रहे हैं," छावनी में हुई सभा याद करते हुए किरील ने कहा।

"बड़ी अच्छी बात है। वोल्गा वाले जोशीले होते हैं, और रिसाले में जोशीलों की कद्र होती है," स्तालिन ने कहा। "मैं सोचता हूं

अगर सरातोव वाले दोनबास में देनीकिन का सफ़ाया करने में मदद देंगे, तो इस तरह वे अपनी वोल्गा से भी खतरा टाल सकेंगे।"

उसने वोरोशीलोव की ओर देखा।

"अच्छा, तो अब कामरेड को बुद्योन्नी के रिसाले में जगह देनी चाहिए।"

"मैं इन्हें ब्रिगेड सौंपने की सोच रहा हूं," वोरोशीलोव ने कहा।

"ब्रिगेड काफ़ी होगी? कामरेड देखने में तो नौजवान है, पर मुझे लगता है तपा-मंजा है।"

स्तालिन ने मुस्कराते हुए किरील की ओर हाथ बढ़ाया।

सब लोग दरवाज़े की ओर बढ़े। मानव-कंठों का गुंजन अधिक ज़ोरदार हो गया। ड्योढ़ी के फ़र्श के पुराने पटरे लोगों के भारी कदमों तले चरमराने लगे।

वोरोशीलोव ने पीछे मुड़कर देखा, दीवार पर टंगे लैम्प की टिमटिमाती रोशनी में किरील का चेहरा देखकर बोला:

"अच्छा तो तुम सुबह मेरे पास आना। तड़के ही!"

सहसा यह 'तुम' का संबोधन सुनकर किरील रोमांचित हो उठा, और उसे मन की वह विचित्र स्थिति याद हो आई, जब किशोरावस्था मे सरातोव के टीलों पर एक बूढ़े मज़दूर ने जीवन में पहली वार उसे 'कामरेड' कहा था और वह अपने मन के आवेग को दबाने के लिए टीलों पर दौड़ चला था।

दरवाज़े में से निकलते और ठंड में विलीन होते भाप के बादल के साथ किरील बाहर आया। अपने नये कामरेडों के साथ वह सैनिकों के रैनबसेरे को चल दिया, वहां आराम करके नये प्रभात का स्वागत करने। उसके सामने सीधा हिमाच्छादित रास्ता था, जो ऊपर ही ऊपर जाता प्रतीत होता था।

१९४५ – १९४८

पाठकों से

प्रगति प्रकाशन को इस पुस्तक के अनुवाद और डिज़ाइन के संबंध में आपकी राय जानकर और आपके अन्य सुझाव प्राप्त कर बड़ी प्रसन्नता होगी। अपने सुझाव हमें इस पते पर भेजें:

प्रगति प्रकाशन,
१७, ज़ूबोव्स्की बुलवार,
मास्को, सोवियत संघ।

सोवियत संघ में कोन्स्तान्तिन फ़ेदिन की रचनाएं पंद्रह भाषाओं में प्रकाशित हुई हैं, इनकी कुल प्रति-संख्या लगभग ७०,००,००० है। यूरोप, एशिया और अफ़्रीका में तीस भाषाओं में फ़ेदिन की पुस्तकें अनूदित हुई तथा १३७ बार प्रकाशित हुई हैं।